पुरुषोत्तम

(प्रथम खण्ड)

लेखक

जगदीश नारायण

प्रकाशक :
श्रीयुक्त अमरेन्द्रनाथ चक्रवर्त्ती
सत्संग पब्लिशिंग हाऊस
पो० सत्संग, देवघर एस० पी० बिहार

प्रथम संस्करण १९५४
द्वितीय संस्सकरण १९६८

प्रूफरीडर :
श्रीसुधीररंजन चौधुरी

मुद्रक :
श्रीओंकारनाथ मिश्र
मूक-बधिर विद्यालय,
वाराणसी ।

मूल्य : पाँच रुपया पचहत्तर पैसा

भूमिका

इस आर्त्त, पीड़ित संसारमें, इस अविश्वास-संक्षुब्ध शताब्दि में, इस विनाशोन्मुख सभ्यताके लग्न-मुहूर्त्तमें पुरुषोत्तम प्रेम वितरण करने आये हैं। भारतवर्षकी पवित्र धरापर पुनः प्रेमके आदान-प्रदानकी पुनीत लीला प्रारम्भ हुई है। प्रेमकी मधुर वंशी पुनः बज उठी है। जाति-धर्म-सम्प्रदाय निर्विशेष के निमित्त ठाकुर अनादि और अनन्त प्रेमका स्पर्श प्रदान करनेके निमित्त विराजित हैं।। जो तृष्णार्त्त हों, जो आर्त्त किंवा प्रपीड़ित हों, जो स्नेहके-भिखारी हों वह अपने अतृप्त,क्षुधित, तृषित, दुःख वेदनामय जीवनमें उनका स्नेह-स्पर्श पाकर तृप्त,स्वस्थ नवजीवनके अधिकारी बन सकते हैं।

अविश्वास-वादके इस युगमें आपका आविर्भाव सर्वोत्तम घटना है। झाड़-जंगल परिपूर्ण नगण्य ग्राममें अवतीर्ण होकर और विश्वविद्यालयके डिप्लोमा और प्रमाणपत्रसे सर्वथाहीन होकर भी विश्व-जीवनके साथ आपका घनिष्ठतम परिचय है।

विज्ञान-प्रदत्त प्रत्यक्षवादके पीछे जीवन-सम्बन्धी समस्त प्रश्नोंके समाधानकी आशामें जगत दौड़ रहा है। फिर भी वह अपने आपको जीवन सम्बन्धी अन्धकारकी आशंकासे बचानेमें असमर्थ है। अन्धकारके घोर आवर्त्तसे निकालनेमें विज्ञान अब-तक असफल रहा है। विज्ञान जहाँपर मूक है, विज्ञान जहाँपर पंगु है आपने भारतीय साधना-विधिके अनुसार वहींसे उसको आगे बढ़नेका पथ-प्रदर्शन करना आरम्भ किया है। भारतकी शाश्वत वाणी और भारतीय आध्यात्मिक साधना-धाराको आपने पुनरु-

जीवित किया है। विज्ञान के सम्मुख जीवन और जीवनातीतका दिव्य मूर्त्ति प्रकटित कर उसको आगे बढ़नेका नवीन पथ उन्मुक्त किया है।

इतने दिनों तक आध्यात्मिक साधना धारा जीवनके अभिज्ञता के क्षेत्रसे दूर हट गई थी। कुसंस्कार और अलौकिकत्वके प्रस्तरके नीचे दबकर प्रहेलिका बनी थी। जीवन और वृद्धिके साथका उसका नित्तनैमित्तिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया था। विज्ञान उस प्रस्तरको हटानेके स्थानपर अवज्ञा और अविश्वासका प्रस्तर-पर प्रस्तर रखता गया। सब हुआ किन्तु जीवन-सम्बन्धी प्रकाश प्रदान करनेमें वह भी असमर्थ रहा। श्रीश्रीठाकुरने आध्यात्मिक कुसंस्कार और अलौकिकत्व, वैज्ञानिक अवज्ञा और अविश्वासके चतुर्विध प्रस्तरोंके नीचेसे निकालकर भारतीय साधना-धाराको उन्मुक्त किया है। एक ओर आध्यात्मिकताको जीवन-वृद्धिकी दिशामें बढ़नेका पथ खोला है तो दूसरी ओर विज्ञानको अमृतत्व प्राप्तिकी दिशामें लगनेका नवीन अमृत संकेत प्रदान किया है।

अपने अपरूप जीवनमें प्रतिदिनके संसारके अत्यन्त साधारण मनुष्यके निमित्त भी वह अमृत संचय करके रखते जा रहे हैं। उस सर्वस्व त्यागीने किसी चीजका त्याग नहींकिया,सबका जीवन-वृद्धि के निमित्त उपयोग करनेकी विधि बतलाई है। वैज्ञानिक अन्वेषण और आविष्कारसे बढ़कर वैज्ञानिकके अन्तर स्थित प्राण सम्पद्का मान-दण्ड ऊँचा गिना है। जिस मस्तिष्कमें आविष्कार करनेकी प्रतिभा और शक्ति है उसके पूजा करनेकी बात बतलायी है। इतना ही नहीं। आपने विज्ञानको मानव जीवन और मानव कर्मके इह-कालिक क्षणभंगुर अस्तित्वको मृत्युहीन अमरत्वसे विमण्डित करनेका अमृत संकेत भी प्रदान किया है। वैज्ञानिकको युगपद साधक बनकर जीवन-प्रवाहकी गति, विगति और प्रगतिकी तरङ्ग

का अन्वेषण करने और विश्वसे मृत्युको अवलुप्त करनेका आवाहन करते हैं आप। 'मां म्रियस्य मा जाहि: शक्यते चेत मृत्यु अवलोपयेत' की पुकार सुनाते हैं आप।

अमृतत्व प्राप्तिके विषयमें पुकार करके ही आप चुप नहीं बैठे। आपने रोग, वेदनामें मुमुर्षु व्यक्तियोंपर मन्त्र-शक्तिका प्रयोग और उपयोग करनेकी विशेष साधना-प्रणाली निकालकर आध्यात्मिक जगतमें विप्लव लाया है। उसी प्रकार साधकोंकी साधना-कालीन उत्पन्न होनेवाली महाशक्तिको यन्त्र द्वारा संग्रह करके मृत्यु-मुखीन मनुष्यपर प्रयोग करनेकी नवीन विधि सम्प्रदान कर विज्ञानको आध्यात्मिकताकी अनन्त-शक्ति और अनन्त-जीवनकी दिशामें फिरनेका पथ दिखलाया है। अबतक विज्ञान ब्लड बैङ्कके जरिये मनुष्यको मृत्युके मुखसे बचानेका प्रयप्न करता रहा है। किन्तु जिस समय उसका परिचय मन्त्र-शक्ति और उसके अन्तर्निहित अमृतत्वके साथ होगा उस दिन यह क्षण-भंगुर संसार अमरलोकमें परिणत हो जायगा।

जीवन और वृद्धि प्राप्तिको धर्म्म कहकर आपने स्त्री-पुरुष निर्विशेषको उसका अधिकारी बना दिया है। जीवन-वृद्धि-सम्पन्न व्यक्तित्व, जीवन-वृद्धिप्रद विवाह, जीवन-वृद्धिकामी परिवार, जीवन-वृद्धि-परिपोषक समाज और राष्ट्रका आन्दोलन आरम्भ किया है आपने।

जीवन और वृद्धिकी प्रत्यक्ष साधनामें नर-नारीका सम्पर्क अनन्त माधुर्य्य और अविनाशी पवित्रतासे पूर्ण होना चाहिये। जगतके इतिहासमें नर और नारीका यह सम्पर्क कितना महान, कितना गम्भीर और अपरिहार्य्य है इसका स्वयं आचरण करके आप दिखला रहे हैं। उन्होंने उपेक्षित, लांछित और निकृष्ट समझे जानेवाले गार्हस्थ जीवनको समाज और राष्ट्र-निर्माणका

मूल उद्‌गम मानकर उसको सुगठित, सुन्दर और परिपुष्ट बनाने-का आन्दोलन आरम्भ किया है। इस प्रकार ग्रार्हस्थ्य जीवनको पुनः गौरव मण्डित किया है आपने।

जीवन-वृद्धिके आधारपर पारिवारिक जीवनमें आन्दोलन करने का जो संकेत उन्होंने सम्प्रदान किया है उसका सम्बन्ध भविष्य राष्ट्रीय निर्माणसे है। स्त्रीयोंको पति-निर्वाचनका समस्त अधिकार देकर जहाँ उन्होंने नारीत्वकी मर्य्यादाको श्रेष्ठ किया है वहींपर बीज वपणकी विधि बताकर श्रेष्ठ और उर्वर मस्तिष्क-सम्पन्न व्यक्ति-निर्माणका वैज्ञानिक कौशल भी बतलाया है। इस गार्हस्थ्य-जीवनको पक्का बनानेके निमित्त डिम्ब, सूक्रकीट, जेनी, क्रोमोजोम आदि यौन विज्ञान-सम्बन्धी समस्त बातोंको खुलकर बताया है। इतना ही नहीं जीवनको स्वथ्य, सुस्थ और दीर्घ कैसे किया जाय तत्सम्बन्धी बातें भी सिखलाई हैं।

शून्यसे आरम्भ कर आज उन्होंने जीवन और वृद्धिकी कामना करनेवाले मानवोंका एक ऐसा दल सृजन किया है जो आजके अविश्वास, अप्रेम, द्रोह और विनाशकी दुनियामें विश्वास, प्रेम, मिलन, सत्यता और भ्रातृत्वका स्वर्ग-राज्य निर्माण कर रहा है। आज देश-विदेशके आर्त्त, पीड़ित मनुष्य मनुष्य-रचित उर्णनाभसे मुक्ति पानेके निमित्त इस जीवन-वृद्धिके महा उत्सके निकट आ रहे हैं।

प्रेमके इस महा उद्‌गाताका पुण्य नाम जहाँपर उच्चारित होता है, वहाँपर प्रेमका स्वर्गीय राज्य प्रगटित होता है। विनाशके इस एटौमिक, हाइड्रोजनिक और उद्‌जनिक युगमें उन्होंने प्रेमका महास्त्र चलाना आरम्भ किया है। प्रेम-बन्धनका एक नूतन संसार सृजित होना आरम्भ हुआ है। प्रेमका यह अणु

सुदूर अफ्रिका, बर्मा, अमेरिका, जर्मनी, रूस न्युजीलैण्ड तक पहुंच चुका है।

पुरुषोत्तमने अपनी प्रेम-लीलाका अभिनय करना आरम्भ किया है। उनके प्रेमके पवित्र बन्धनमें प्रेममय-परिवार और प्रेममय समाज-केन्द्रोंका निर्माण आरम्भ हो गया है। उनकी प्रेम-पुकारको भय त्रस्त संसार यदि सुने तो प्रेममय राष्ट्र और प्रेममय विश्व प्रकटित हो सकता है। यह पृथ्वी स्वर्गीय राज्यमें परिवर्त्तित हो सकती है।

पुरुषोत्तमके प्रेममय नरलीलाका वर्णन कर सकनेका मेरे पास शब्द कहाँ ? मैं न तो साधक हूँ और न शास्त्रका ज्ञाता ही हूँ। साहित्यिक ज्ञान भी नहीं मुझमें। साहित्यकी कौन कहे शुद्ध लिखने-पढ़नेका ज्ञान भी नहीं। उसपर लिखने बैठा हूँ पुरुषोत्तम की विराट जीवन-लीला ! यह लिखना नहीं अर्चना-वन्दना है। प्रेमरचित इस पुष्प-माल्यकी अर्चना—वन्दना प्रभु स्वीकार करेंगे, यही एकमात्र आशा है।

सिरिसियाँ
रिविलगंज,
सारन
२०-३-५४

विनीत—
ग्रन्थकार

निवेदन

श्रीश्रीठाकुरके हिन्दी जीवनीकी मांग वहुत दिनोंसे थी। इसका अभाव मुझे भी न खटका हो, ऐसी बात नहीं, यहाँ तक कि एक बार इसके चलते आचार्य सुधांशु कुमार मैत्र एम० एस-सी० और श्रीप्रफुल्लो कुमार दासजीके साथ पावनामें दो झड़प हो भी गई थी।

दुमकासे प्रत्यागमन करनेके उपरान्त ठाकुरके जीवनीकी मांग तो अत्याधिक बढ़ गई। यहाँ तक कि हमारे ऋत्विक देवताने तंग आकर लिखनेकी आज्ञा दे डाली।

बार- बारके तकाजापर कलम उठानेको बाध्य हुआ। उसके फलस्वरूप जो कुछ हो सका आपके सामने है। इसके गुण-दोषका विवेचन करना आपपर निर्भर करता है।

इसके लिखनेमें भयानक कठिनाइयोंमें पड़ना पड़ा। बंग भाषामें ठाकुरकी जीवन-लीला सम्बन्धी पुस्तकें तो बहुत हैं, किन्तु सब अधूरी। क्रमबद्ध जीवनी लिखनेके निमित्त श्रीब्रजगोपालजी दत्त राय एम० ए० बी० एल०, श्री कृष्णप्रसन्न भट्टाचार्य एम० ए, डाक्टर सतीशचन्द्रजी, श्री योगेश चक्रवर्ती बी० ए०, श्री अनिल-कुमार गांगुली श्रीत्रैलक्यो चक्रवर्ती, श्रीसावर्णी आदि बहुलेखक और साहित्यिोंके ग्रंथों को ढूँढ़ना पड़ा। इसके अतिरिक्त पुराने भक्तोंके निकट भी संग्रह करनेके निमित्त दौड़ना पड़ा।

इस बीच मेरी पुत्री सुधाका अकस्मात न्युमोनियासे मरनेका सम्बाद मिला। जिस देवताके चित्र-पटके सम्मुख वह नित्य प्रणाम करती उसीके जीवनीके लिखते समय वह चली गई। उस अम्लान पुष्पको देवताने अपने पवित्र चरणोंमें बुला लिया।

इस धक्केसे स्त्री उद्भ्रान्तवत् हो गई, उसका स्वास्थ्य खराब हो गया इसके साथ छोटे लड़केको मूर्च्छा आने लगी।

इतनी कठिनाइयोंके बीच जो कुछ तैयार कर सका वह आज आपके सामने रख रहा हूँ।

इसके लिखनेमें श्री सावर्णीजीके पुस्तकसे मैंने बहुत सहायता पाई है, तदर्थ उन्हें धन्यवाद है। अन्यान्य लेखकोंके पुस्तकोंसे भी तथ्य ग्रहण किया है उसके लिए उनका आभारी हूँ।

इनके अतिरिक्त श्रीचित्रनारायणलाल बी०ए० और श्रीबजरंग-बली राय बी०ए०ने पण्डुलिपिको पढ़ने, और परिशुद्धिमें सहायता की है तदर्थ उनका आभारी हूँ।

सबसे कठिन परिश्रम किया है साहित्यशास्त्री श्री शिवशंकर झा 'रेणु' ने। दो सप्ताह पर्यन्त अपना अमूल्य समय सम्प्रदानकर परिमार्जन और परिशुद्धिमें लगे रहे। उनके इस कृपाके निमित्त मैं आभारी हूँ।

सच पूछा जाय तो हमारे ऋत्विक देवता श्रीअमरेन्द्रनाथजी-का यदि प्रोत्साहन प्राप्त न होता तो यह पुस्तक न लिखी जाती। उन्होंने बहुतसे नये तत्व और तथ्योंको देने-दिलानेका भी प्रबन्ध किया है। इतना ही नहीं इसके प्रकाशनका समस्त भार भी उन्होंने ले लिया है। मैं इसके निमित्त धन्यवाद किस मुँहसे दूँ। मेरा रोम-रोम उनका आभारी है।

समयके अभाववश फिर भी कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, पाठक उनका सुधार कर लें।

इनके अतिरिक्त भी कुछ भूल-त्रुटियाँ रह गई हैं, पाठकोंकी दृष्टिमें कहीं कुछ दीख पड़ें तो कृपया सूचित करेंगे। आगामी संस्करणमें सब ठीक कर दी जाँयगी।

काशी
१४-४-५४

विनीत—
जगदीश नारायण

प्रथम अध्याय

"भगवान मदनमोहनकी मैं भी पूजा करूँगी !"

"जरूर करो, मन लगाकर भगवत् पूजन करो।"

"किन्तु नानी जो नहीं करने देतीं।"

"क्या कहती हैं ?"

"मंत्र नहीं लिया, मूर्त्तिको छूनेका अधिकार नहीं।"

"तब क्या होगा ?"

"मंत्र लेनेको मैं तो प्रस्तुत हूँ, किन्तु देगा कौन ?"—उत्कण्ठा भरी थी बालिकाकी वाणी में।

इस बार रामेन्द्र नारायणजीने खाता-पत्रसे आँख हटाकर बालिकाकी ओर फेरी। उनकी दुलारी बेटी मनमोहिनीकी आँखें अश्रुसिक्त थीं।

बालिका नित्य पुष्प-चयन करके लाती, तदनन्तर एकाग्रमनसे मालामुकुट तैयार करती। उसके प्रेमरचित माल्यसे मातामही जब राधागोविन्दकी युगल-मूर्त्तिको विभूषित करती वह विमुग्ध दृष्टिसे मूर्त्तिको निहारती रहती। अवशेषमें आरती-वन्दनाके समय उन्हीं के दिये हुए छोटे ढोलकको बजाती हुई सुरीले स्वरसे राधा-कृष्णकी वन्दना करती।—इन समस्त बातोंको रामेन्द्रजी देखते आते थे और मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। किन्तु आज ?

वहीं पर कुल-पुरोहित पण्डित चन्द्रशिरोमणिजी उपस्थित थे। आपने उनसे कहा—मेरी इस दुलारी बिटियाको कोई मंत्र दे दें।

नन्हीं बालिकाको एकान्तमें ले जाकर पण्डितजीने शिव-मंत्र दे दिया। सरलहृदया बालिका दूसरे दिनसे शिव-पूजन करने लगी। शुद्ध स्थानसे मिट्टी लाती, पवित्र भावसे पिण्डिका बनाती और अक्षत-चन्दन, धूप-दीप, बिल्वपत्र और धतूरेसे अर्चना-वन्दना करती। अन्तमें हरहर बम-बम करती हुई आरती उतार कर पूजा समाप्त करती।

कसक वह मन-ही-मन अनुभव कर रहा था। गाना-बजाना, खेल-कूद सब बन्द हो गया था उसका। बहनकी उस मूक, उद्भ्रान्त अवस्थाको देख-देख उसका हृदय छटपटा रहा था। उसने शय्याशायित भगवान्‌की नींद तोड़नेका मन-ही-मन निश्चय कर लिया।

सन्ध्या होनेके साथ-ही-साथ वह मन्दिरके चतुर्दिक चक्कर देने लगा। ऊपरसे देखनेमें तो वह खेलमें मस्त-सा दीख रहा था, किन्तु उसकी आँखें कृपामयीके मन्दिरसे निकालनेकी राह जोह रही थीं। भगवान्‌को शयन करानेके उपरान्त जैसे ही वह बाहर निकलीं वैसे ही वह दीवालसे सटा हुआ धीरे-धीरे अन्दर घुस गया और युगल मूर्त्तिको खड़ा करके निकल आया।

रात बीतनेपर बहनके कानोंमें बोला—"दिदिआ, आज रोनेका काम नहीं। ठाकुरजीको बैठा आया हूँ मैं, मन्त्र आज निश्चय ही मिलेगा। देख, तुझे मिल जाय तो मुझे बताना और मुझे मिला तो तुझे बतलाऊँगा।"

इतना कहकर वह निश्चिन्त हो टाँग-पसार कर सो गया। किन्तु बालिकाकी आँखोंमें नींद कहाँ? उसके अन्तस्तलको चीर-कर आकुल क्रन्दन-ध्वनि निकल पड़ी—"प्रभो, दीनबन्धो! आज तो जगे हो, आज दीक्षा दो नाथ!"

गुरु उसके थे नहीं। किसी साधु किंवा सिद्ध पुरुषने प्रभुके आवाहन करनेकी विधि उसे सिखलायी नहीं। स्वजन-बन्धुगण भी अपने मन्त्रप्राप्तिकी अभिज्ञताको बात नहीं बतलाते। शास्त्रादि धर्म-ग्रन्थकी बात छः वर्षकी बालिका क्या जाने? कोई सहायता प्राप्तिका सम्बल बालिकाको नहीं। एकमात्र पिताजीकी बतलाई बातपर ही है निश्चल दृढ़ विश्वास। उसी विश्वास के बलपर वह राधा-कृष्णके सम्मुख आँसू ढाल रही है।

पल-पल बीतते-बीतते अर्द्ध रात्रि हो गई—बालिका मन-मोहिनी माँ राधाके शब्दो-च्चारण सुननेकी आशामें प्रतिक्षा करती रही।

—माँ! मेरी बिनती तुम क्यों नहीं सुनतीं? मैं छोटी बालिका हूँ इससे क्या आपके स्नेहप्राप्तिके भी अयोग्य हूँ? मैं विनती-प्रार्थना करना नहीं जानती, इसलिए क्या तुम्हारी दया से भी वंचित रह जाऊँगी?

फिर भी प्रभु न आये! मातेश्वरीने न सुना!

—न सुनोगे प्रभु? मेरी करुण पुकारपर ध्यान न दोगे तुम? इतने निष्ठुर हो गये हो? सामने देखते न हो वह पोखरा। आज यदि मन्त्र न मिला तो कल पोखरेमें डूबकर तुम्हारी निष्ठुरताका प्रतिशोध लूँगी।

यह बाल-रुदन और जीवन-पात करनेकी प्रतिज्ञा किसी पाषाणके सम्मुख तो की न जा रही थी। वह तो जाग्रत चैतन्य प्रभुके कानोंमें सुनायी जा रही थी। वह पुकार क्या उनके कानों तक न पहुंचती? व्याकुल आवाहनपर वह क्या आये बिना रह सकते थे? अपलक दृष्टिके उस आकुल आवाहन एवं निर्मल प्राणके करुण आकर्षणपर खिंच न आवें, ऐसी शक्ति उनमें नहीं।

अर्द्ध रात्रि पर्यन्त वह मन्दिर-पटके सम्मुख रोती गिड़गिड़ाती रही। नन्हा शरीर रुदन करते-करते अवश हो पड़ा। थोड़ी देरके लिए उसकी पलकें मुँदसी गयीं। किन्तु उस अवस्था में भी प्रार्थना के कातर अस्फुट स्वर कण्ठ से निकल रहे थे उसके।

हठात् विद्युत रश्मि कौंध गयी। इसके साथ ही साथ आंखें खुल गयीं। आंख खुलनेपर देखती है मन्दिर-पट, उसका दीवाल-छत-दरीची कहीं कुछ भी नहीं, जिधर देखती है उधर आलोक-तरंग उठ रहा है।

कुछ क्षणके उपरान्त उस प्रकाश-तरंगके मध्य सिंहासनपर एक उज्ज्वल ज्योतिमूर्ति विराजित दीख पड़ी। सुन्दर गौर वदन, पकी दाढ़ी, सिरपर ऊँची टोपी धारण किये बैठे हैं। टोपीसे नाना प्रकारके लाल-पीले-नीले प्रकाश झकझक करते हुए विकीर्ण हो रहे हैं। चतुर्दिक प्रकाश-रश्मि विक्षुरित हो रही है उनके दिव्य शरीरके।

—मनु, बोल, तुझे क्या चाहिये ? दिव्य मूर्तिका कण्ठ-स्वर सुन पड़ा।

मन्त्र, मुझे मन्त्र चाहिए।—बालिकाने उत्तरमें कहा।

—तब मैं जो मन्त्र कहता जाता हूँ उसको तू दुहराती जा।

इसके साथ ही साथ धीर, उदात्त स्पष्ट कण्ठस्वरसे मंत्रका एक-एक अक्षर निकलने लगा उनके। उस शब्दके श्रवणमात्रसे बालिकाकी एक-एक स्नायु झंकृत होने लगी। मुखसे स्वतः अक्षरों की पुनरावृत्ति होने लगी। सर्वशेषमें राधायुक्त वही चतुष्क्ष्य मंत्राक्षर उस दिव्य पुरुषके चरणोंके निम्नप्रदेशमें दृष्टिगोचर होने लगे।

कुछ देर-पर्यन्त बालिकाकी ओर अनिमेष दृष्टिसे देखती हुई वह दिव्य मूर्ति पीछेकी ओर हटने लगी और शनैः शनैः छोटी छोटी आकृति धारण करती हुई अन्तमें प्रकाश सहित विलुप्त हो गयी।

—लोहा, लोहा ! अरे भाई, उठ, उठ। मन्त्र मिल गया।— आनन्दोल्लाससे वाणी काँप रही थी उसकी।

आंख मलता हुआ लोहा उठ बैठा।

एक-एक करके दीदीने समस्त बातें उसको सुनायीं। तदनन्तर शेष रात्रि दोनों बैठे-बैठे मन्त्र जपते रहे।

उषाके आगमनके साथ रामेन्द्रनारायणका आंगन आनन्द और कलहास्यसे मुखरित हो उठा। दोनों, घर-बाहर सर्वत्र आनन्द-सम्बाद सुनाते फिरे

यही मनमोहिनी देवी ! श्रद्धा, भक्ति विश्वास और दृढ़ताकी प्रतिमूर्ति।
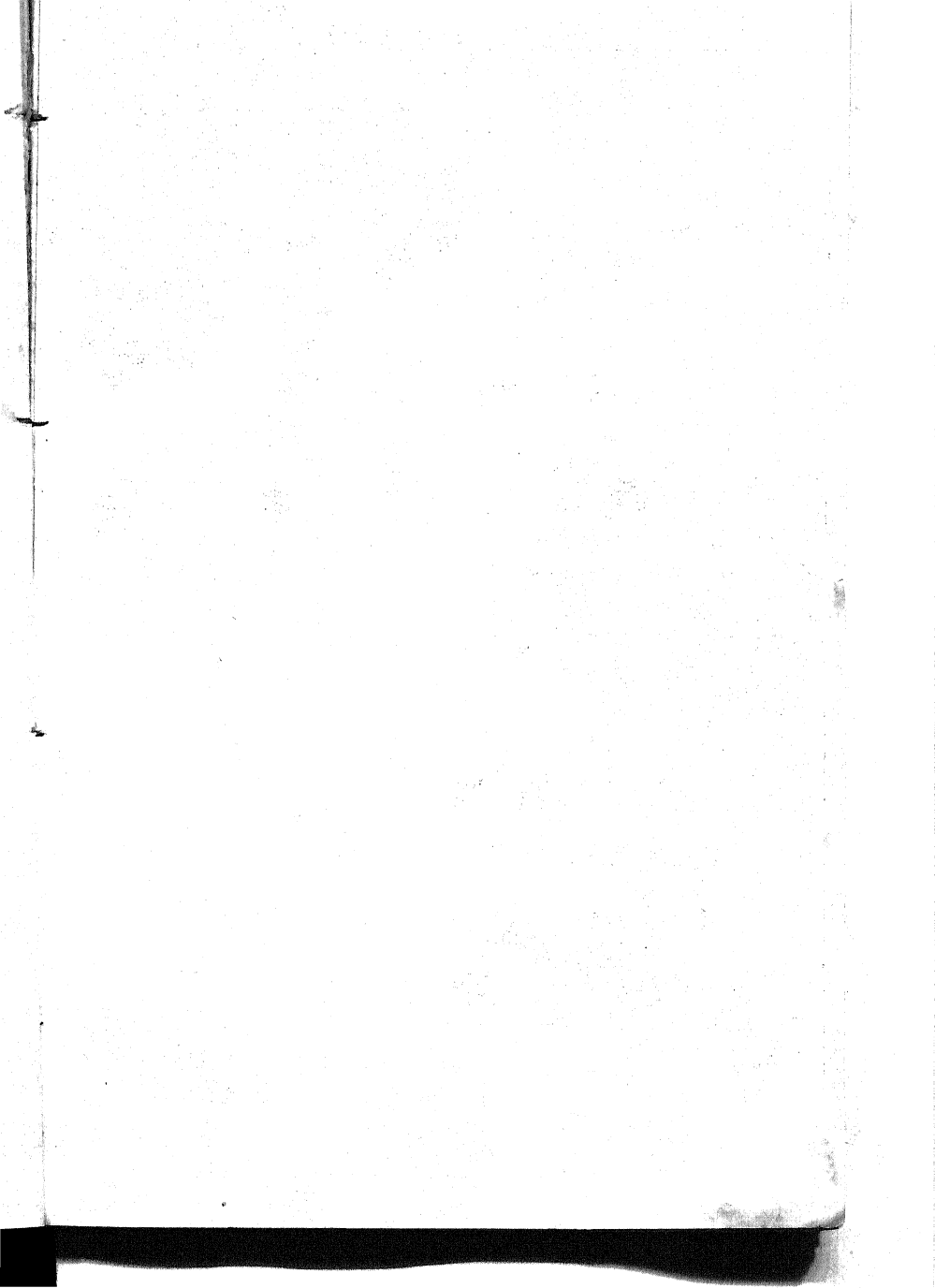
पूज्यपिता पण्डित शिवचन्द्र चक्रवर्त्ती

द्वितीय अध्याय

सन् अट्ठारहसौ उन्नासी ईस्वीमें बालिका मनमोहिनीका विवाह हुआ पावना जिलान्तर्गत गुआखाड़ा ग्रामनिवासी शाण्डिल्य गोत्रीय पण्डित ईश्वरचन्द्र चक्रवर्त्तीके कनिष्ठ पुत्र श्री शिवचन्द्र चक्रवर्त्तीजीके साथ।

विवाहोपरान्त अपनी दिव्य गुणसम्पन्न रूपवती और कुलवती वधूके साथ शिवचन्द्रजी अपने कर्मस्थल पावना शहरमें रहने लगे। शहरके निकट ही मनमोहिनी देवीका मायका पड़ता था। माता-पिता, भाई-बहन और अन्यान्य सम्बन्धियोंसे मिलने-जुलनेका अवसर मिलता ही रहता।

शिवचन्द्रजी एक आदर्श गृहस्थ थे और गार्हस्थ धर्मका मुख्य व्रत अतिथि-सेवा उन्हें प्राणोंसे भी प्रिय थी। भोजन देकर उनको सन्तोष न होता, बल्कि अभ्यागतको साक्षात् नारायण समझकर उसकी सब प्रकारसे परिचर्य्या करने तथा उसकी सुख-सुविधाकी प्रत्येक बातपर पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। किसी अतिथिके आगमनपर वे अपनी धर्मपत्नीसे कहते—'देखो, आज स्वयं नारायण इस वेशमें हमारे घर पधारे हैं; इनकी पूजा-अर्चना सुन्दर विधिसे करो एवं इनकी सन्तुष्टि लाभ करो।'

प्रत्यक्षकी पूजा करना ही उन्होंने अपना धर्म बना रखा था। प्रत्यक्षकी अवहेलना कर परोक्षके पीछे भटकना उनकी दृष्टिमें भगवान्‌का अनादर करना था। आप कहते—'प्रभु हमारे द्वारपर किस-किस रूपमें और वेषमें आते हैं कहा नहीं जा सकता। किन्तु परोक्षकी आसमें हम प्रत्यक्षको नहीं पहचानते,आदर नहीं करते। हमारी उपेक्षा, अवहेलना और तिरस्कार प्राप्त कर वे फिर तो जाते हैं, किन्तु ऊबते नहीं। वे आते हैं, बार-बार आते हैं और हमारे

बन्द हृदय-कपाटकी जंजीर खटखटाते रहते हैं। कभी चिथड़ोंमें लिपटे हुए दीखते हैं तो कभी नयनहीन करुणमूर्त्ति बनाये हमारी अपेक्षा करते रहते हैं। वे नाना वेश-भूषा और विभिन्न रूपोंमें हमारे आन्तरिक मानवीय गुणोंको जगानेमें रत रहते हैं। हमारे हृदय-द्वारपर मृदु कराघात करते हुए जगाते हैं—ओ, खोल खोल अपने हृदयके दया-भण्डारका मुख खोल, अपनी ममताकी-स्रोतस्विनीका बाँध उन्मुक्त कर, अपनी हृदय-कलिकाको खिलने दे।'

'उफ, हमारे हृदय-कमलको खिलाने, अन्तस्तलमें स्नेह-सरिताको बहाने, शुष्क हृदयमें अन्त:फल्गुको प्रवहमान करने, सेवा कराकर निष्क्रिय मानवीय शक्तिको सक्रिय बनानेके लिए प्रभु कितना कष्ट वहन करते हुए अपेक्षारत रहते हैं हमारे।'

'भगवान् भूखे जीवका रूप धारण कर हमसे पूजा लेने आते हैं। उनकी दयासे आज हमारे गृहमें अन्न-धन सब कुछ मौजूद है। कण्ट्राक्टरीका कार्य जिलाभरमें चमका हुआ है। इसको हम सौभाग्य समझते हैं। इस समय भूखे, प्यासे, नंगे, अन्धे किंवा किसी भी रूपमें प्रभु जब कृपा करके पूजा करनेका सुअवसर प्रदान करने आवें तो इस क्षणको व्यर्थ न जाने देना। मीठीवाणीसे सत्कार करते हुए जीवन्त भगवान्को उत्तमसे उत्तम उपकरण देकर तृप्त करना। इन चलते-फिरते भगवानोंको चतुर्विध सुस्वाद भोजन कराकर परितृप्त करते रहना चाहिए।'

शिवचन्द्रजीका आदर्श, अतिथि-प्रेम और सत्कार प्राप्तकर समागत व्यक्तियोंके रोम-रोम पुलकित हो जाते। भोजन कराते समय आप यथासम्भव स्वयं उपस्थित रहकर अतिथि देवताको विभिन्न प्रकारके सुस्वादु भोजन कराते थे। तब कहीं वे अस्वस्थ हो पाते।

शिवचन्द्रजीके चारित्रिक गुणमें द्वितीय विशेषता थी शिशु-प्रेम।

आप बालक-बालिकाओंको पवित्रताकी प्रतिमूर्त्ति समझते थे। जहाँ कहीं भी आप रहते बाल-गोपालोंकी मण्डली इकट्ठी रहती। हो हल्ला तथा आनन्द किल्लोलसे उनका निवास-स्थल मुखरित रहता। मनमोहिनी देवीको यह कभी-कभी सह्य न होता। वे डाँट-फटकार कर बैठतीं। इसके विपरीत शिवचन्द्रजी बच्चोंके कोमल भावपर तनिक भी आघात सहन न कर पाते।

उनके इस मधुर स्वभाववश मुहल्ले-टोलेके बच्चोंका क्रीड़ा-केन्द्र बन गया था उनका घर। दल बाँधे बच्चे उनके घरमें घुस जाते और घरकी तमाम चीजोंको उलट-पुलट और तितर-बितर करके बिखेड़ देते। कभी-कभी इस धमाचौकड़ीमें घरकी बहुमूल्य वस्तु भी नष्ट हो जाती। फिर भी आप कभी रंज न होते। उन्हें तो बच्चोंकी भोली आंखों और सरल मुखछबिमें स्वर्गीय आभा दिखती। आनन्दमें तन्मय होकर जब बाल-गोपालगण नृत्य करने लगते उस समय शिवचन्द्र बाबू विभोर दृष्टिसे देखते रहते।

आप कहा करते—बालकोंके भीतर एक दिव्य शक्ति रहती है जो सबको अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। उस दिव्य-शक्तिके दर्शनसे मन पवित्र हो जाता है, हृदय शान्त हो जाता है। उनकी भोली दिव्य आंखोंके प्रति नित्य कुछ समयतक ध्यान किया जाय तो आत्मा सहजावस्था प्राप्त करने में समर्थ होती है। बालकावस्थाकी भोली आंखोंमें विराजित उस निर्मल सहजावस्थाकी दिव्य-शक्तिका प्रभाव हिंसक क्रूर व्यक्तिपर भी पड़ता है। बालकोंके इस अन्तर्निहित पवित्र ईश्वरीय शक्तिकी पूजा ध्यान कर अपनेको धन्य बनाना चाहिये। योग साधनादि कठिन क्रिया इस सहज बालक-अवस्थाकी प्राप्तिके निमित्त ही की जाती है। माँ होती हैं इस सहजावस्थाका एक मात्र केन्द्र। मातृ-मूर्त्तिको अन्तरमें धारण किये हुए बच्चेका मन, प्राण और इन्द्रियाँ सब कुछ विभोर रहती हैं। यह स्वर्गीय सहजावस्था मातृकेन्द्रिक बनी

रहती है। इस सहजावस्थाके कारण बालक स्त्री-पुरुष, मेरा-तेरा, स्वकीय-परकीय भावसे परे रहता है। इस अवस्थामें ईश्वरीय शक्तिकी निर्मल झाँकी प्राप्त होती है। इसलिये स्वर्गीय सहजावस्थाके मूर्त्त प्रतीक बाल भगवान्‌का दर्शन करते रहना चाहिये।

स्वर्गीय उद्यानके विचरण करनेवाले देवदूत हैं ये बालक। मानसपटपर मातृ-मुखकी पवित्र छबि अंकित किये ये सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। हिंसा-द्वन्द्व, छल-कपट परिपूर्ण पृथ्वीपर ये स्वर्गीय आनन्द, स्वर्गीय पुष्प-सौरभका पराग वितरण करने आते हैं।

उनके इस स्वर्गीय रूपके माधुर्यके आकर्षणसे क्या मातृ-हृदय भी अछूता बचता है? कार्य-व्यस्त माता-का मन-प्राण भी उस आकर्षणके प्रति उद्ग्रीव बना रहता है। उसकी मुख-छबि आँखोंके सामने सर्वथा विराजित रहती है। हृदय सर्वदा कोमल शिशुके प्रति खिंचा रहता है। बालककी दिव्य-शक्ति और दिव्य-आकर्षण माताके मन-हृदय और समस्त इन्द्रियोंको अपने प्रति खींचे रहते हैं। इसके फलस्वरूप उसके कर्णेन्द्रियमें विशेष परिवर्त्तन आता है। कर्णेन्द्रिय क्रियाशील हो पड़ती है। शिशुकी किलकारी वा रुदन-स्वर सुनने और पहचाननेकी शक्ति अत्यन्त तीव्र हो जाती है। सैकड़ों बच्चोंके रुदन वा होहल्ला के बीच भी वह अपने बच्चे का स्वर पहचाननेमें समर्थ होती है। बच्चेका रुदनस्वर सुनते ही उसका प्राण बेचैन हो जाता है, पैर उखड़ जाते हैं और सब कामोंको छोड़कर वह अपने बाल-भगवान्‌के निकट दौड़ पड़ती है।

बड़े भाग्यसे गृहमें बालकरूपी भगवान् अपना चरण रखते हैं। ये नन्हें भगवान् गृह-काननको आनन्द-भवन बनाने तभी आते हैं जब विश्वात्मा उनके अवतार लेनेकी योजना बनाते हैं। परमात्मा यदि भेजनेकी अनुकूल व्यवस्था न करें तो ये कभी आते ही नहीं।

परमात्मा रूपी अग्नि-स्फुलिंगसे जो दिव्य-शक्ति बहिर्गत होती है उसीके मूर्त्त प्रतीक होते हैं ये बालक। यही कारण है कि बालकों के सुकोमल आनन, भोली आंखें, मुग्ध और मधुर मुस्कानमें ईश्वरीय दिव्य-शक्तिका आकर्षण खेला करता है।

बालककी ओर देखते ही योगी चकित हो जाते हैं। बालकके समान अपना मनोलय बनानेकी कामना करते रहते हैं, सहस्रों वर्षतक तपस्या करनेके उपरान्त भी स्त्रीको देखते ही ऋषि-मुनिका चित्त चंचल हो जाता है। पर बालक अपने सहजात ईश्वरीय बलके कारण स्त्रियोंका मन अपने प्रति आकर्षित कर लेता है, स्वयं चंचल नहीं होता। उसका मन कभी सम वा ब्रह्मावस्थासे विचलित नहीं होता। स्त्रियोंका सौंदर्य बालकको प्रलोभनमें नहीं फँसा पाता। किन्तु वे ही उसके रूप-लावण्यपर न्योछावर हो जाती हैं। यही कारण है कि साधक-योगी अपने भीतर बालकावस्थाका सहज भाव लानेका प्रयत्न करते हैं। जो सिद्ध महापुरुष होते हैं उनमें यह बालकावस्थाका सहज भाव पूर्ण मात्रामें प्रस्फुटित रहता है।

बालकोंके अन्तर्निहित इस दिव्य-शक्तिका दर्शन करने ही योग्य होता है। इस दिव्य सहजात सहजावस्थामें परमात्माका अंश पूर्णमात्रामें विराजित रहता है। उसके निजानन्द स्वरूपमें देवत्वकी बाँकी झाँकी रहती है। इसका साक्षात् करो। उस दिव्य-तेजका दर्शन करो। क्षुद्र वस्तुके पीछे उनके दिव्यानन्दको न मसलो—उनके मनोलयपर ठेस न पहुंचाओ। ऐसा करनेसे उनका प्राकृतिक विकास संकुचित और विकारग्रस्त हो पड़ेगा।

बालकोंके उद्धतपनपर जब कभी मनमोहिनी देवी क्रुद्ध हो जातीं शिवचन्द्रजी बालकोंके दिव्य रूपको पहचानने और दिव्य शक्तिको मनोनुसार खेलने देनेकी शिक्षा प्रदान करते रहते।

सहायता करनेमें भी आप वैसे ही मुक्त-हस्त थे। किन्तु आपका समस्त सहाय्यदान सम्पूर्णतः गुप्त होता। परिवार-परिजनवाले भी उसका पता न पाते। उनके अजस्र गुप्तदानका ठीक पता आज तक न लग सका। लगे भी तो कैसे? वह तो दानकी दृष्टिसे दान करते न थे, करते थे स्वात्म अनुभूतिकी भावनासे। सत्पात्र और सत्कर्मके आवाहनपर उनका हाथ रुक ही न पाता। नारायण समझकर आप पूजा चढ़ाया करते थे। इसलिये उनका समस्त दान प्रत्याशारहित दान होता था।

उनके दान-कार्यमें पात्रापात्र-विभेद अवश्य रहता। आप कहा करते थे कि दान तो करना ही चाहिये, किन्तु दान ग्रहण करनेवाला हमारा दान ग्रहण कर असद् चरित्र, क्लीब किंवा अकर्मण्य न हो जाय इस बातपर पूर्ण दृष्टि रखनी चाहिये। उस अवस्थामें सहायता और दानके नामपर हम करते हैं पाप। हमारे उपार्जन कार्यमें जैसी धार्मिक दृष्टि रहनी चाहिये उसी प्रकारकी धार्मिक दृष्टि दानके व्यापारमें भी होनी चाहिये। हमारे धर्मने दान करनेमें पात्रापात्रके विषयपर जो विशेष दृष्टि रखनेकी बात बतलायी है उसपर ध्यान न देना पाप करना है। ऐसे दानसे मनुष्यकी अन्तर्निहित कर्म-शक्तिका उत्सही विकृत हो जाता है। फलतः समाजका वह अंग अकर्मण्य, परमुखापेक्षी, भोगलिप्सु और क्षति-ग्रस्त हो जाता है। इसीलिये धर्म-ग्रन्थोंने पात्रापात्र-विभेद करनेपर इतना अधिक जोर दिया है।

इस प्रकारका कितना गुप्तदान शिवचन्द्रजीने किया था उसका वर्णन किया जाय तो एक मोटा पोथा ही बन जाय। किन्तु इन बातोंका पता चला है तब जब उपकृत व्यक्तियोंने उनके महत् गुणका वर्णन स्वयं किया है। अभी हालहीमें एक व्यक्तिका पत्र आया है। शिवचन्द्रजीने उस व्यक्तिका जो उपकार किया था उसका वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—'कभी मेरे भी दिन

अच्छे थे। मान था, ऐश्वर्य था, घर धन-धान्यसे परिपूर्ण था, कुलीन होनेका गौरव भी प्राप्त था। किन्तु समयके साथ सब जाता रहा। घोर दुर्दशामें दिन बीत रहा था। उन दिनों उसी दुःखमें कन्याके विवाहका प्रश्न उपस्थित हुआ। क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? अर्धाहार करता हुआ परिवारके साथ जीवनयापन करता था। किन्तु कन्याके वैवाहिक प्रश्नको लेकर तो पारिवारिक मान, सम्भ्रम और लज्जा बचाना कठिन हो गया।'

ऐसी ही दुरवस्थामें पड़कर एक दिन शिवचन्द्रबाबूके सम्मुख जा खड़ा हुआ। जीवनमें यही प्रथम हाथ पसारनेका अवसर था। लज्जाके मारे जीभ तालूमें सट गयी थी, मुख सूख गया था। बातें अस्पष्ट और एक-एक कर निकल रही थीं। मेरी अवस्था और अर्द्ध अस्फुट शब्दोंसे ही शिवचन्द्रबाबूका करुण हृदय द्रवी-भूत हो गया। उन्होंने सान्त्वना प्रदान करते हुए बीचहीमें कहा—'बस, बस, अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक मनुष्य के जीवनमें ऐसा समय आता है। आप कृपाकर मेरा आतिथ्य ग्रहण करें, सेवाका अवसर प्रदानकर हमें कृतार्थ करें। मैं आधे घण्टेके भीतर लौटकर आता हूँ।'

इतना कहकर आप भीतर जा खाने-पोनेकी व्यवस्था करने का आदेश प्रदान कर बाहर निकल गये। उधर मैं बाहर बैठक-खानेमें आशा-निराशामें झूलता हुआ उनके लौटनेकी अपेक्षा करता रहा। बीस पचीस मिनटोंके अन्दर आप लौट आये।

तदुपरान्त बड़े आदरके साथ भोजन कराया। शेषमें एकान्त स्थानमें ले जाकर विनीत स्वरमें बोले—'क्या दयापूर्वक मेरे इस क्षुद्र सहायताको ग्रहण करनेकी उदारता दिखलायेंगे ?'

घर लौटनेके उपरान्त जब मैंने नोटके बंडलको गिना तो पांच सौ निकले। इस अप्रत्याशित दानसे ही मेरी कन्याका विवाह यज्ञपूर्ण हो गया।

इसके कुछ दिनोंके उपरान्त पता चला कि शिवचन्द्रबाबू पाँच रुपये सैकड़े सूदपर प्रोनोट लिखकर मुझे वह सहायता की थी। दानी कर्णकी कहानी सुनी जाती है। किन्तु उनके उस दानके पीछे राजसी ऐश्वर्य और दैवी शक्ति क्रिया करती थी, पर जो दया शिवचन्द्रबाबूने की थी वह हमारी दृष्टिमें उससे भी महान है। उनके निमित्त मेरा रोम-रोम आभारी है। उस ऋणको कभी जीवनमें परिशोध कर सकूँगा ऐसी आशा मैं नहीं रखता।

घोर विपत्तिकालमें उन्होंने मुझको अपने परिवारका अंग बना लिया था। मैं उसी स्नेह-बंधनमें बँधा हूँ। दया करके आप लोग भी मुझको अपना पारिवारिक अंग मानकर स्नेह बन्धनको दृढ़ रखनेकी उदारता दिखायेंगे, अपने इस अंगको भूल न जायेंगे।

इस प्रकारके बहु सम्वाद शिवचन्द्रजीके सम्बन्धमें सुननेमें आये हैं।

दरिद्रनारायणके ऐसे पुजारी थे शिवचन्द्रबाबू! दीन, क्षुधार्त्त और विपत्तिग्रस्तोंकी सेवा करना ही जिन्होंने अपना जीवन-व्रत बना रखा था!

तृतीय अध्याय

मनमोहिनी देवीको बहुत दिनोंतक यह ज्ञात न था कि स्वप्नमें मन्त्र प्रदान करनेवाले उनके गुरुदेव धराधामपर मौजूद हैं। इसका पता चला विन्दवासिनी देवीके घरपर। कार्यवशात् आप उनके घरपर गई हुई थीं। बाहर बैठकखानेमें कुछ आदमी हिन्दी ग्रन्थ का पाठ कर रहे थे। हठात् स्वप्नमें प्राप्त उसी मन्त्रका नाम श्रवण हुआ। कान खड़े हो गये उनके। तब तो स्वप्नप्राप्त मन्त्र ठीक ही है? दौड़ी हुई बैठकखानेमें गई। पूछा—'यह मन्त्र आपलोगोंने कैसे जाना? स्वप्नमें या दूसरी तरह? वह कौन पुस्तक-पाट कर रहे हैं आपलोग?' प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी आपने, किन्तु उत्तर देनेके स्थानपर उनलोगोंने पुस्तकको बाँधकर बन्द कर दिया।

भीतर जाकर उन्होंने विन्दवासिनी देवीको पकड़ा। उन्हींकी सहायतासे पुस्तक और उसके भीतरका एक चित्र भी देखा। अरे, यह तो वही दिव्य-मूर्त्ति है। स्वप्नदर्शित वही प्रशान्ति और तेज, मुख-मण्डलपर विराजित है। चित्र देखकर कपोलपर आनन्दाश्रु ढलकने लगे उनके।

पता लिखकर घर आई और वर्णपरिचय मँगाकर रातभरमें हिन्दी सीखकर दूसरे ही दिन अपने गुरुदेवके नाम पत्र भेजा।

इसके कुछ ही दिनके उपरान्त गुरुदेवके दर्शन प्राप्तिका शुभ-मुहूर्त्त भी आया। गुरुद्वारेमें प्रवेश करते समय शरीर रोमांचित हो गया। भीतर पैर रखते ही आँखें अटक गईं। देखा, वही ज्योतिर्मयस्वरूप सम्मुख विराजित है। साम, दाम, शौच और मौनकी सौम्य मूर्त्ति सम्मुख समासीन है। मूककी भाँति आँखें मूर्तिकी ओर देखती ही रह गई।

'माँ, सुशीला! आ गई तू?' मिलन प्रतीक्षा में व्याकुल कण्ठ-ध्वनि सुन पड़ी। उस मधुरिमामय शब्दको सुनकर मनमोहिनी

देवीका शीश धीरे-धीरे गुरुके श्रीचरणोंमें नत हो गया ।

'आजसे तू मेरी सुशीला माँ बन गई । इसी नामसे पुकारूँगा तुझे । स्वीकार है न ?'

'आप-सा पुत्र-रत्न पाकर मातृत्व सार्थक हो जाय, जीवन धन्य हो उठे ।'

इसके तीन-चार वर्ष उपरान्त मनमोहिनी देवीके पिता रामेन्द्रनारायणजीका स्वर्गवास हो गया । उनके विगत होते ही परिवारवालोंपर चतुर्दिकसे आक्रमण आरम्भ होने लगा । बटाईदारोंने अनाज देना बन्द कर दिया । कहीं फसल लूट ली जाती तो कहीं खेत काट लिया जाता । पट्टीदारोंने भी बेईमानी आरम्भ कर दी । जबतक रामेन्द्रजी जीवित रहे किसीमें सर उठानेका साहस न था । रोब-दाब, धन-ऐश्वर्य, तथा विद्या-बुद्धिमें उनकी बराबरीका हिमाईतपुरमें दूसरा कोई न था । शत्रु हाथ मलकर रह जाते । उनके दिवंगत होते ही शत्रुओंका समस्त आक्रोश उनके छोटे शिशु,बच्चे-बच्चियों और बिधवा स्त्रीपर पड़ा । दुर्बल परिवार वाले चतुर्दिकसे प्रतिहिंसाकी अग्निमें विदग्ध होने लगे ।

मुकद्मापर मुकद्मा दायर होने लगा । सम्मन, वारण्ट, कुर्की-जब्ती लगी ही रहती। घरमें जो कुछ भी रुपये थे, मुकद्मेके पीछे स्वाहा होने लगे । खेत-मकान-जमींदारी नीलाम कराने का षड़यन्त्र चलने लगा। घरमें कोई देखने-सुननेवाला न था । इसलिये कृष्णादेवीने बेटी-दामादको हिमाईतपुरमें रहनेका अनुरोध करना आरम्भ किया । स्त्रीने भी शिवचन्द्रबाबूसे रुदन आरम्भ किया । सासकी दयनीय दशा और धर्म पत्नीके अनुनय-विनय और रुदनपर शिवचन्द्रजी रहनेको तैयार हो गये और अन्तमें अपना घर बनाकर ससुरालमें ही बस गये ।

हिमाईतपुरकी अवस्था बहुत ही बुरी थी । ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिहिंसाका भाव एक दूसरेके प्रति लोग पोषण करते थे । प्रति-

हिंसाकी अग्नि वंशानुक्रमिक रूपसे जलती रहती । सभी घात-प्रतिघात लेनेकी ताकमें रहते । पिता मरते समय पुत्रसे शत्रुसे बदला लेनेकी माँग करके शरीर त्याग करता । मातायें घरमें पुत्र-पौत्रको ग्रामके शत्रुओंकी कहानी सुनातीं ।

किसीको खाने-पीनेका अभाव न था । शस्यश्यामला वंगभूमि अन्नभण्डारको भरपूर किये रहती । वंगसागर मेघवारिसे और पद्मा हिमालयसे जल-राशि ला लाकर खेतको उर्बर बनाये रखती । किसी-के घरमें एक वस्तुका अभाव न था । किन्तु इस प्रचुरताने उनको इन्द्रिय-लोलुप बना डाला था ।

खेती, जमींदारी और समस्त व्यापार हिन्दुओंके हाथमें था । सर्व- प्रकारकी शक्ती रखते हुए भी हिन्दू दुर्बल, असंगठित और छिन्न-विच्छिन्न थे । हिन्दुत्वका कोई आदर्श उनके सन्मुख न था । काली, कृष्ण, दुर्गादि देव-देवियोंके नामपर भी अपने आपको अलग रखे हुए थे । मिलन-सूत्रमें ग्रथित और एकबद्ध होनेका कोई आधार न था ।

वर्ण-विचार और पारिवारिक आभिजात्य बोधने गर्वके स्थान-पर अहमिकाका रूप धारण कर लिया था । एक जाति अपर जाति-को घृण्य,अस्पृश्य समझती । सवर्णमें भी पारिवारिक अहंकारभाव भर गया था । एक परिवार अपर परिवारको नीचा दिखलानेका प्रयत्न करता रहता । इसके पीछे प्रत्येक हिन्दू अपना-अपना दल बनाये हुए था । एक दूसरेके लूट-पाट और मान-सम्भ्रमके विनाश में दलके दल दत्तचित रहते ।

इस जिलेमें मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पचहत्तर तक पहुँच गई थी—विदेशी मुसलमान नहीं, देशी मुसलमान, हिन्दू धर्मसे निकाले गये मुसलमान । ये मुसलमान फारस, अरब, टर्की या अफगानिस्तानसे न आये थे । सबके सब एक भाषाभाषी बंगाली मुसलमान थे । दलके अन्तर्भुक्त ये मुसलमान भी रहते । सुबह-शाम यह दल स्त्रियोंकी शिकारमें निकलता । पगडण्डी होकर घाट-

की ओर जानेवाली तरुणियोंकी खोजमें छिपे घात लगाये बैठे रहते। वन जंगलके पथसे आने-जानेवाली स्त्रियोंपर बलात्कार किया जाता, उनका सतीत्व नष्ट किया जाता।

दूसरे दिन शत्रु-पक्षके स्त्रीके सतीत्व नष्ट होनेका सम्वाद फैलाया जाता। सभा बैठती और धर्मके न्याय-सिंहासनपर न्याय करनेके लिये बैठते आततायी गुण्डा दलके सर्दार स्वयं! सतीत्व भ्रष्ट करनेवाले ही भ्रष्टानारीका न्याय करते।

दलवाले मुसलमान आज्ञा सुननेकी ताकमें रहते। यथासमय धर्मबहिष्कारकी आज्ञा सुनाई जाती। उसीके साथ साथ हिन्दूधर्मका द्वार उनके लिये बन्द हो जाता। उपस्थित मुसलमान उसका हाथ पकड़कर अपने घर ले जाते। हिन्दू विधवाओंको तो वहाँके मुसलमान अपनी सम्पत्ति ही समझते थे और दल बाँधे अपने इस अधिकारकी माँग करते भी देखे जाते थे। इस प्रकार मुसलमान बननेके मार्गको उन्मुक्त रखना ही हिन्दूधर्मका एकमात्र कार्य रह गया था।

नावपर माल लादकर पद्मा नदीसे यातायात करना भी निरापद न था। दिनदहाड़े नावें लूट ली जातीं। ग्राम होकर पालकीमें जानेवाली नव-विवाहिता वधुएँ गायब कर दी जातीं! पुलिस किंवा न्यायालयमें जाना आगसे खेलना था। पाबना शहरके बड़े-बड़े सम-भ्रान्त जमींदार लूट करनेवाले गुण्डा दलके सर्दार थे। उनकी पहुंच सर्वत्र थी। लाठी,गवाह और अमला जिसके हाथमें हो उसकी जीत होती। इस प्रकार वहाँ किसीका जीवन, धन और सतीत्व निरापद न था।

ऐसे ही स्थानपर शिवचन्द्रजीने अपने रहनेका गृह बनाया। बनानेको मजबूर हुए। उनकी दयापरवश हृदय अन्याय, अत्याचार और व्यभिचारसे युद्ध करनेको प्रस्तुत हो गया।

चतुर्थ अध्याय

पितृकुल
गोत्र—शाण्डिल्य ।
प्रवर—शाण्डिल्य असित देवल।
ग्राम—गुआखाड़ा ।
जिला—पावना
ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती
शिवचन्द्र चक्रवर्ती
श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र [और दो भाई एक बहन]
श्रीअमरेन्द्रनाथ चक्रवर्त्ती
[बड़दा]
श्रीप्रचेतारञ्जन चक्रवर्त्ती [और दो पुत्रियाँ]
[काजल]
श्री विवेकरञ्जन चक्रवर्त्ती
[छोटदा]
मातृकुल
गोत्र—काश्यप ।
प्रवर—काश्यप अपसर नैध्रुव
ग्राम—हिमाईतपुर
जिला—पावना ।
रामेन्द्रनारायण
मनमोहिनी देवी
श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र
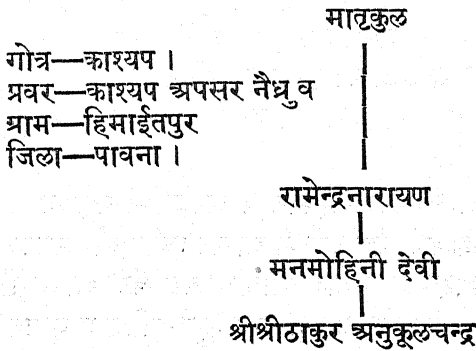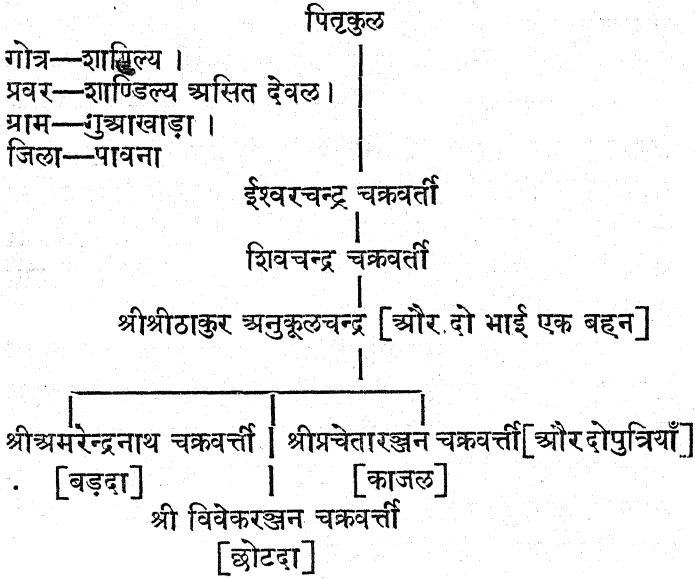
पंचम अध्याय

ऋषि और सद्गुरु होते हैं अन्तर्द्रष्टा। भूत, भविष्य और वर्तमानके गर्भमें क्या छिपा है वहाँ तक सुदूर प्रसारित दृष्टि रहती है उनकी। उस अन्तर्भेदी दृष्टिसे देखनेके उपरान्त उनके मुखसे वाणी निकला करती है। उस दिन दया, परोपकार,सौहार्द, सेवाप्राण, उदारहृदया, तेजस्विनी, सत्यवादिनी, सदाचारिणी, पतिव्रता, सती-साध्वी, तपस्विनी मनमोहिनी देवीके भीतर उन्होंने क्या देखा था ? माता कौशल्या, महाभागा देवकीको देखा था वा शची देवीको—कौन जाने ? भूत-भविष्यमें विराजित शाश्वत मातृ-मूर्त्तिको ही तो न देखा था ?

जबसे गुरुदेवने मनमोहिनीदेवीका नामकरण सुशीला माँ किया, तबसे वह उन्हींके समान दिव्य-शक्तिसम्पन्न सन्तानकी कामना करने लगीं। अन्तरसे नित्य इसी बातकी पुकार उठने लगी। चतुर्दिकके अत्याचार, अनाचार और भ्रष्टाचारपूर्ण वाता-वरणसे विदग्ध हो यह तपस्विनी शक्तिशाली महामानवको उद्धार करनेकी आकुल आर्थना करने लगीं।

चलते-फिरते, उठते-बैठटे सतत नामकी पुकार करती रहतीं। उस नारकीय परिवेशमें नामका सहारा न लें तो क्या करें ? धीरे-धीरे नाम उनके कण्ठका स्वर, मस्तिष्ककी स्मृति रक्त कणि-काकी चेतना बन गया। वह नाम करें वा न करें नाम स्वयमेव होता रहता।

यह अविरत नाम-जपका अनुष्ठान किसलिए हो रहा था ? यह अविराम नाम-यज्ञ क्यों कर रही थीं आप ? शरीर और मनको प्रभुके आने योग्य वाहन न बनाया जायं तो वह कैसे आवेंगे ? नामकी मथनीसे जबतक शरीर-मन-प्राणको शुद्ध-पवित्र न बनावें

तो प्रभु कहाँ अपना चरण रखेंगे ? नामकी आकुल पुकार न हो तो क्या आवाज उनतक पहुँच सकती है ? जबतक पूर्ण तैयारी उनके आसनकी न हो जाय, तबतक वे आते ही नहीं, नहीं तो आ-कर भी फिर जाते हैं।

पापिष्ठ पुरीके आर्त्त क्रन्दनसे आप अधीर हो पड़ीं। आर्त्त स्वर निकलने लगा उनके अन्तस्तल से। आँसुभरे नयनसे अहर्निश प्रभुचरणोंमें उनका प्रार्थनास्वर पहुंचने लगा।

अश्रुमें बल होता है, आर्त्तस्वरमें विशेष आकर्षण होता है। अन्तरके आकुल आवाहनसे निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त और अव्यक्त परमात्माके हृदयमें एक कम्पन, एक सिहरन उत्पन्न होती है और अनुरागके प्रेमरज्जुमें बँधकर वे कोमल शिशु बन जाते हैं।

असाधारण शक्ति सम्पन्न माता ही असाधारण महामानवको गर्भमें धारण कर सकती है। उर्वर भूमिमें ही अच्छे फल लगते हैं। आधार पाकर ही शक्ति प्रकटित होती है। बचपनसे ही आप नाम जप करती आई थीं। दिव्य रूपसे मन्त्र प्राप्त किया था। मन्त्रसा-धनासे सम्भवत: उनका मन-हृदय-प्राण और सर्वांग दिव्य शक्ति-का आधारस्थल बन गया था।

अष्टादश वर्षमें प्रवेश करनेके प्रथम गर्भका लक्षण प्रकटित हुआ। गर्भके साथ ही साथ उनके रूपमें एक दिव्य परिवर्त्तन आया। सूर्योदयके प्रथमके आकाश जैसी आरक्तिम आभा उनके मुखसे विकीर्ण होने लगी। लावण्यका दिव्य प्रकाश फूट पड़ा। दिव्य दर्शन भी होने लगे। द्वारपर दिव्य साधुओंका समागम होने लगा। जो आते, मनमोहिनी देवीके हाथोंकी भिक्षा चाहते।

धीरे-धीरे गर्भका दसवाँ महीना भी बीत गया, किन्तु शिशु होनेका एक भी लक्षण देखनेमें न आया। आनन्द और स्फूर्त्तिकी रेखा अबतक उनके शरीरमें खेल रही थी। क्रमशः ग्यारहवाँ मास

भी व्यतीत होने लगा। लोगोंने काना-फूसी आरम्भ की। कृष्णा सुन्दरी चिन्तनामें पड़ गयीं।

इसी समय एक जटाजुटधारी साधु द्वारपर आ उपस्थित हुए। मनमोहिनी देवीके हाथोंसे भिक्षा पानेके उपरान्त जाते समय बोल गये—इस गृहमें एक ऐसे महापुरुषका जन्म होगा जो संसारका महाकल्याण और विश्वमें महापरिवर्त्तन लावेंगे। उनके आगमनके साथ इस गृहसे एक आदमीका प्रयाण भी होगा।

परिवारवाले आशा और चिन्तनामें पड़ गये। ग्यारहवाँ मास व्यतीत होनेको था। इसी समय मनमोहिनी देवीके एकमात्र छोटे भाई बीमार पड़े और कुछ ही दिनोंमें उन्होंने अपनी इहलीला संवरण की।

कृष्णा देवीपर वज्रपात हुआ। दुःख और शोकका पहाड़ टूट पड़ा वृद्धा विधवा माँके हृदयपर। अपने एकमात्र पुत्र योगेन्द्रके निधनसे वे पागल-सी हो गयीं। कुलका अन्तिम दीप भी बुझ गया। कोई पिण्ड देनेवालातक न रहा।

प्रिय भाई लोहाके मृत्युसे मनमोहिनीदेवीको मूर्च्छापर-मूर्च्छा आने लगी। संज्ञाशून्य हो गिर गयीं। लोगोंने जल्दी-जल्दी मुख-पर जलका छींटा देना आरम्भ किया और उन्हें होशमें लानेके लिये भाँति-भाँतिकी चेष्टाएँ करनी आरम्भ कीं। स्त्रियाँ कृष्णा सुन्दरीको समझाने लगीं—'बहू, ऐसा पागल बननेसे कैसा चलेगा, कलेजेपर पत्थर बाँधो। आसन्नप्रसवा इस पुत्रीकी ओर देखकर धैर्य धारण करो।'

गर्भवती कन्याकी इस अवस्थाको देखकर कृष्णा सुन्दरीने अपने आपको सम्भाला, किन्तु पुत्रकी मृत्युसे उनकी कमर ही टूट गयी।

धीरे-धीरे बारहवाँ मास भी शेषप्राय, फिर भी सन्तान होने-का कोई लक्षण नहीं। शुक्लाष्टमी भी आ पहुंची। अमंगलकी
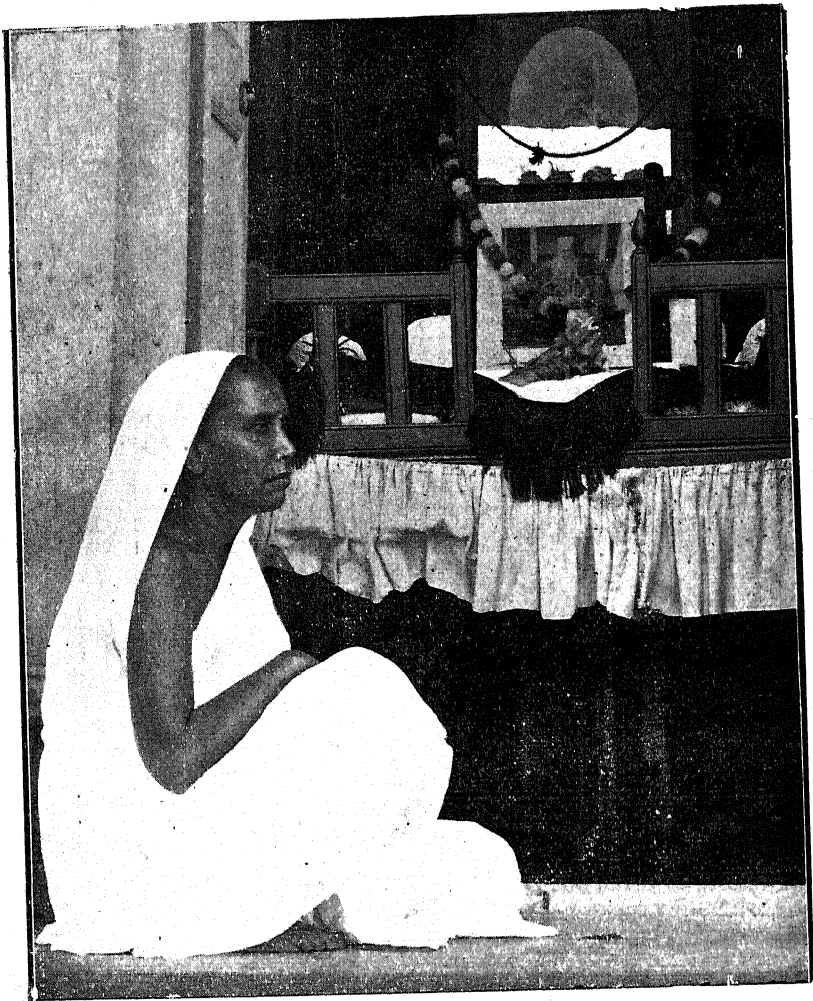
पूजारता जननी मनमोहिनी देवी
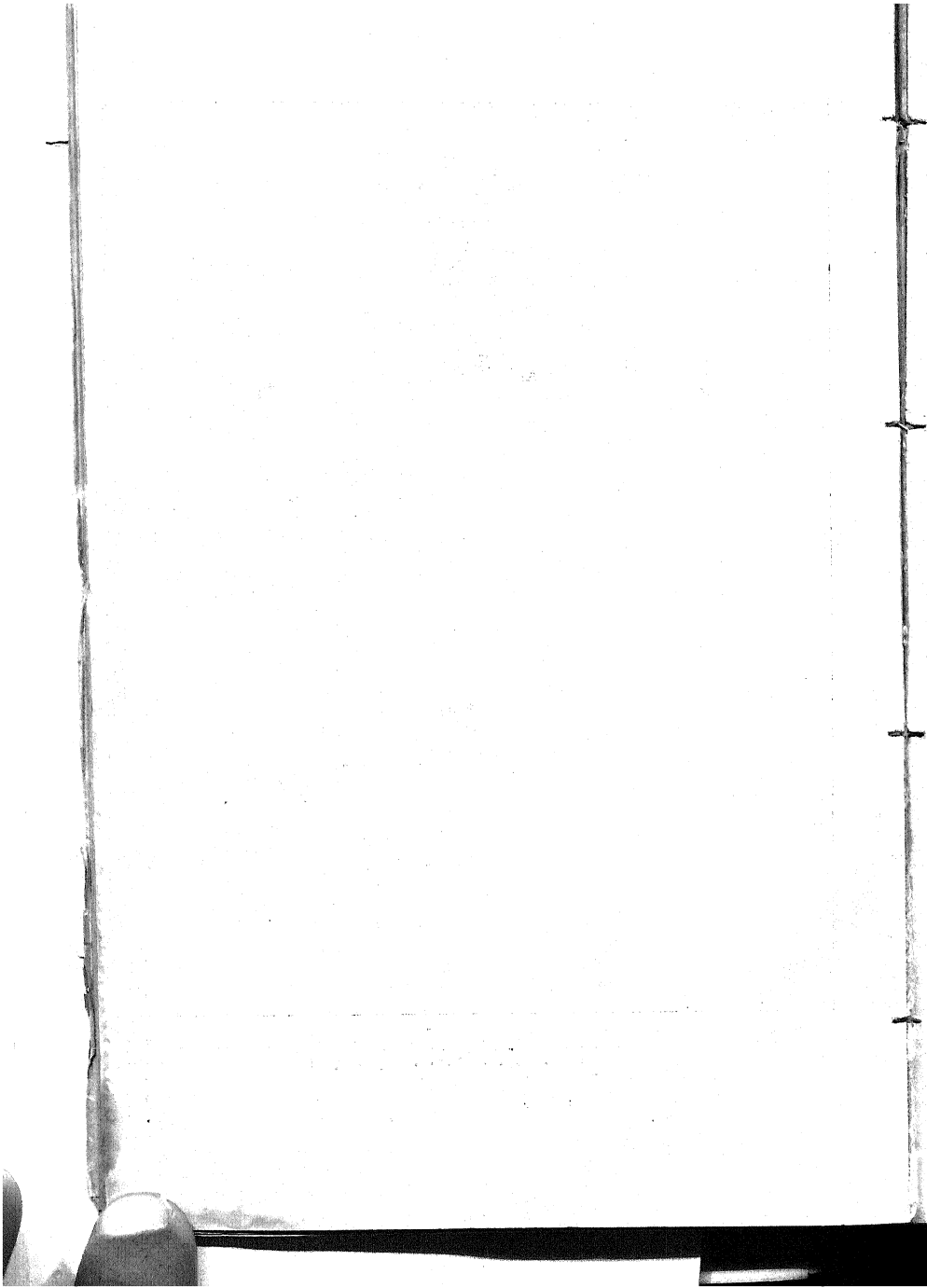
आशङ्कासे बेचैन होकर कृष्णा सुन्दरी राधा-गोविन्दके द्वारपर पछाड़ खाकर क्रन्दन करने लगीं—'प्रभो, कोई कुलमें पिण्ड देने-वाला भी तो नहीं रह गया। अवशेषमें क्या मेरी अवगति होगी नाथ! दयाकरो दीनबन्धो, मनमोहिनीकी रक्षा करो।'

उनके उस कातर पुकारको मुरलीधरने सुना। शेष रात्रिमें मनमोहिनीदेवी सूतिका-गृहमें पहुंचायी गयीं। धाय तल-पेट सह-लाने लगी। बहन निकट बैठी बाट जोहने लगी। अन्यान्य स्त्रियाँ बाहर उसारेमें बैठी उत्कण्ठापूर्वक मार्ग जोहने लगीं। देखते-देखते दो घण्टे व्यतीत हो गये, किन्तु आश्चर्य! अबतक प्रसवकालीन वेदना और यन्त्रणाका कोई भी लक्षण दिखाई नहीं देता। धीरे-धीरे सब ऊँघने लगीं। भीतर-बाहर सबकी आँखें बन्द हो गयीं। प्रसूति भी नींदमें विभोर हो पड़ी। अपेक्षारता सब स्त्रियोंपर योग-मायाने तन्द्राका राजविस्तार किया।

उधर अपना कृष्णाञ्चल फेंककर उषा सुन्दरीने माँगमें सिन्दूर भरना आरम्भ किया। प्रियतमके शुभागमनके आनन्दमें उसका मुखड़ा रक्तिम हो उठा। प्रसाधनरता सुन्दरी उषाके हृदयसे आनन्द प्रश्वास वायु निकल पड़ा और सारे वातावरणपर अपना शीतल स्निग्धकारी प्रभाव विस्तारित करने लगा। उस प्रभात वायुके सुशीतल स्पर्शको पाकर नीड़पर बैठे पक्षीगण कलरव गान गाने लगे। पक्षियोंके स्वागत गानको सुननेके साथ गृह-गृहसे हरे कृष्ण हरे राम'की कर्ण-प्रिय रागिनी गूँजने लगी। नारायण पूजोत्सवके शुभागमनके कारण स्त्रियोंने नारायण नारायणका आलाप देना आरम्भ किया। चतुर्दिक आनन्दतरंग खेलने लगी जगतीमें नारा-यण पूजाकी।

इसी समय कृष्णा सुन्दरीका समस्त गृह-प्रांगण विद्युत् प्रकाश से आलोकित हो गया। उसके प्रकाशसे सबकी आँखें खुल गयीं। चकित विस्फारित नेत्रोंसे सबने देखा एक मुण्डित सिर, ज्योति-

पुञ्ज बालक प्रसूतिके निकट मृदुहास्य करता हुआ चतुर्दिक देख रहा है।

ज्ञात होता है महामन्त्रके इसी पार्थिव रूपके निमित्त पृथ्वी व्याकुल दृष्टिसे प्रतीक्षा कर रही थी, आकाश उर्ध्वकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देख रहा था और आँखें बिछाये बैठे थे मंत्रके उद्गाता ऋषि, ब्रह्मर्षि पूर्वावतार और महापुरुषगण।

दिशिहारा, दिग्भ्रान्त, असहाय व्याकुल मानव सन्तानकी आर्त्त पुकारपर प्रभु अवतीर्ण हुए। अत्याचार, अनाचार और व्यभिचारपूर्ण मेदिनीपर उन्होंने अपना चरण रखा।

ठीक उसी दिन जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण-पत्नि सत्यभामाने प्रायश्चित्त करके ऋषि-उपेक्षाके पापसे अपने आपको पवित्र किया था, उसी ताल-नवमी-तिथिके पुनीत अवसरपर ऋषि-उपेक्षाके पाप-कलुष मानवताको परिशुद्ध करने, और ऋषि-पूजा, ऋषि-यज्ञ और ऋषि-कुलके माहात्म्यको पुनर्जीवित, संस्थापित और प्रसारित करनेके निमित्त ऋषियोंकी पुनीत धरा आर्यावर्त्त में पुरुषोत्तम अवतीर्ण हुए।

सम्वत–उन्नीस सौ पैंतालिस। शकाब्द–अट्ठारह सौ दस।

सन् अट्ठारह सौ अट्ठासी
श्रावण शुक्ला नवमी
शुक्रवारके
दिन
सात बजकर अट्ठाइस मिनटपर
पुरुषोत्तम
धरापर अवतीर्ण हुए!
नामकरण हुआ अनुकूल!

आज वही श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रके नामसे जगतपूज्य बने हैं।

———

षष्ठ अध्याय

श्रीश्रीठाकुरकी जन्मकुण्डली

शकाब्द—१८१०।४।२६।४।२० ।
वङ्गाब्द—१२६५ साल ३० भाद्र ।
खृष्टाब्द—१८८८ सन् १४ सितम्बर, ७ बजके २८ मिनट ।
संवत्—१९४५
बार—शुक्र
तिथि—शुक्ला नवमी
नक्षत्र—मूल
लग्न—कन्या
राशि—धनु
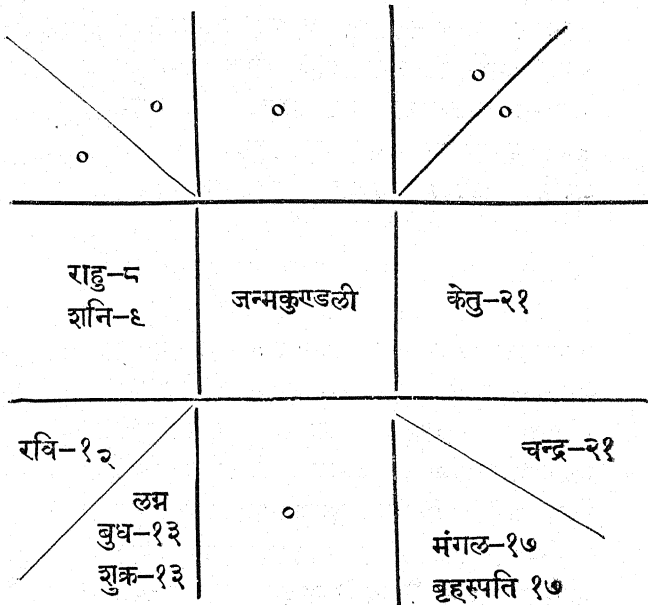
सप्तम अध्याय

भृगुसंहिता द्वारा जन्म-फल-विवरण

काशीके भृगु-संहिता-कार्यालयने जो ठाकुरके सम्बन्धमें फल प्रदान किये हैं उसका कुछ अंश यहाँपर अंकित किया जाता है।

पूर्वजन्म

श्री श्रीभृगु उवाच—

आसीत् पूर्व्वभवे कश्चित् मूर्द्धज वङ्गखण्डके ।
स्वर्वृनी समीपे तात श्यामाङ्ग नाति दीर्घकं ॥
तौर्य्यत्रिकं वृथाढ्या च विद्याहीनः महामतिः ।
गीतनादे पराप्रीति जनके - नैव ताड़ितः ॥
अनशने कदाचित् तु शतधा दुःखपीड़ितः ।
ददर्श चान्तिके तात विधि प्रेरित इवानघः ॥
सज्जनः सौम्यकान्तिश्च करुणा पूरितेक्षणः ।
तस्य कृपाविशेषेण क्वचित् साध्वी प्रयत्नतः ॥
भैरवी कृपया शर्म्मण् राजद्वारे देवगृहे ।
पूर्व भाग्यवशात् काव्य विष्णुकृपा प्रभावात् ॥
अंशाज्जातः यतः श्रीमान् प्राक संस्कार गौरवात् ।
स्वल्प यत्ने दैवी कृपा प्राप तूर्णं महामुने ॥
तत्वज्ञानी षोड़शाब्द खनेत्रात् मुनिसत्तमः ।
महातत्व सुखं प्राप्य सर्व्व आशा विनिर्मुखः ॥
परमहंस पदारूढ़ः जन्म जन्मान्तरार्ज्जितः ।
समदर्शी महाभागः अभेदः लोष्ट्री काञ्चने ॥
वित्त मध्ये रुचिर्नैव दारपञ्चात पृथक पुनः ।
पित्रोपक्षात् पृथक् चैव संसाराच्च पृथक् अभूत् ॥
नारी चिन्ता न वै स्वप्ने मातृवत् पश्यति स्वतः ।

मातृभावात् महासिद्धिः बहुशिष्य सुवेष्टितः ।।
अपूर्व्व अस्य चेष्टापि मुखोऽपि तत्वभाषकः ।
स्वल्प ध्याने महाप्राज्ञः गूढ़तत्त्वार्थ तत्त्ववित् ।।
समाधौ च व्यथा तात प्रमदा काञ्चनादिभिः ।
स्पर्श मात्रे विकृतांग शूलविद्धवत् तदा ।।

संक्षिप्त भावार्थ—जातकने पूर्वजन्ममें वङ्गदेशमें विप्रकुलमें जन्म लिया था। शरीरका रंग श्याम था, मध्यमकोटिकी शरीरकी लम्बाई थी एवं गंगातीरपर निवास करते थे। बचपनसे गान-कीर्त्तनके प्रति अनुरक्ति रहनेके कारण लिख-पढ़ न सके। इसलिए विरक्त होकर पिताने बाहर जानेको बाध्य किया। अनशनका कष्ट भोगते समय दैवात एक करुणापूर्ण महत व्यक्तिसे मुलाकात हुई। उन्हींके अनुग्रहसे एक देवगृहमें आश्रय मिला। विष्णु भगवानकी कृपासे तथा एक भैरवीकी सहायतासे शान्ति प्राप्त हुई। पूर्वसंस्कारवश अल्प ध्यान और अल्प समयमें ही सिद्धि लाभ हो गई। उनपर देवी प्रसन्न हुईं। तदुपरान्त कामना-वासना मुक्त होकर महातत्त्व-ज्ञानी परमहंस तत्व प्राप्त किया। यह उनका जन्म जन्मान्तरका अर्ज्जन बन गया। तब मिट्टी-सोना उनके लिए समान हो गया। अर्थादिकी स्पृहा न रही। माता-पिता-स्त्री-संसार-परिजनसे पृथक रहे। स्त्रीमात्रको माँके रूपमें देखने लगे, स्वप्नमें भी नारी सम्बन्धी चिन्ता न होती थी। इस मातृभावसे ही उन्हें महासिद्धि प्राप्त हुई, तब बहुतोंने आपका शिष्यत्व ग्रहण किया। आप निरक्षर होकर भी प्रज्ञावान थे, महातत्त्व और गूढ़ तत्त्वार्थ भाषी हो गये। उनकी समाधि अवस्थामें स्त्री किंवा कांचनका स्पर्श यदि हो जाता तो शूल विद्धवत यन्त्रणा-सी होती। उसके फलस्वरूप अंग विकृत हो जाता। अतिशय कृपावश होकर उन्होंने अपर वर्णके एक प्रिय शिष्यको ब्रह्मविद्या संप्रदान किया था। गलक्षत रोगसे शरीर त्याग किया था।

वर्त्तमान-जन्मके सम्बन्धमें

श्री श्रीभृगु उवाच—

रामात रामे यथा तेजः एवं तस्य महामुने ।
पूर्व्वजन्म धारापृष्ठे विस्मृता पूर्व्व गौरवः ॥
मूर्द्धजस्य कुले जन्म दारपुत्र निसेवितः ।
अयुतं द्विगुणं वापि बहुशिष्यादि सेवितः ॥
कुलपति इवात्राहि शब्द ब्रह्मादि भाषकः ।
आदौ वै काञ्चन त्यागी आधूना नच कष्टभाक् ॥
त्यागी भोगी महात्यागी उत्तरे दैवयोगतः ।
शिष्य धी वर्द्धने यत्न पुत्रवत् पालते नऽघ ॥

× × ×

यावत् यावत् वयोजाति ज्ञानबृद्धि निरन्तरं ।
धर्म्मध्वजोऽपि जायते कुलपति इवानधा ॥
शिष्याणां पालने यत्न वर्द्धने रक्षणे तथा ।
शिष्यार्थे जन्म वै तस्य शिष्यार्थे वै पुनर्ज्जनि ॥
नामब्रह्मो कदा सौख्यं शब्दब्रह्मे कदा मतिः ।
कदापि समये तात शब्द ब्रह्माति वर्त्तते ॥
ज्ञानप्रार्थी नकस्माच्च स्वयं तात स्वतन्त्रता ।
वनमध्येऽपि वै तस्य राजवत् विभवादिकं ॥
भोगमध्ये धर्मचिन्ता समदर्शी यदाकदा ।
आश्चर्यं कृच्छ्रयोगोऽपि महाज्ञानी स्वतोभवेत् ॥

× × ×

गलिता वासना सर्व्वे मुक्तवारि यथानघः ।
अष्टसिद्धिर्नमन्येत आत्मस्थ आत्मनिर्भरः ॥
परमहंसोऽपि जायते सर्वथा साधु चेष्टतः ।
सत्य लक्ष महाप्राज्ञः शत्रुमित्र समानयोः ॥
वेद बाणान्तरे तात देहत्यागे प्रयत्नता ।

तदादौ निष्फलं चेष्टा शिष्य मूलात् सुरक्षितः ॥
यदि मृत्युर्विवर्त्तेत स्वेच्छया मुनिसत्तम ।
इच्छामृत्यु अयं श्रीमान् मितायुः अमितयूःहिः ॥

\+ + +

पापात्मा चैव पुण्यात्मा समंतस्यापि चान्तिके ।
आर्त्त त्राणे महायत्नः पातकोद्धारणे मतिः ॥
परमहंसोऽपि जायये उत्तरे द्वन्द नैव च ॥
बिकारी जायते नैव सर्व्वे मलिमसाक्षयः ॥
पुनरावर्त्तनं चास्य जवोर्व्वी शिष्य हेतवे ।
परित्राणाय जीवानां आर्त्तानां च विशेषतः

\+ + +

वर्त्तमान जन्मका संक्षिप्त वर्णन

जिस प्रकार परशुराम भगवानकी सारी शक्ति श्री रामचन्द्रके शरीरमें तिरोहित हो गयी थी, उसी प्रकार पूर्व गौरवकी बात विस्मृत होकर आपने धरापर पुनर्ज्जन्म ग्रहण किया है। इस बार स्त्रीपुत्र परिवेष्टित पूर्ण संसारी बनकर आये हैं। इस बार भी विप्र-कुलमें ही जन्म ग्रहण किया है। सहस्रों शिष्योंसे परिवेष्टित और परिसेवित होते रहेंगे। भोगके मध्य महात्यागी बनेंगे, शिष्योंको पुत्रके समान लालन-पालन और उन्नत बनाते रहेंगे ! शिष्योंके संगके निमित्त ही आप पुनः पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। कभी नाम ब्रह्ममें रुचि रहेगी तो कभी शब्दब्रह्ममें। पलभरके लिए भी शब्द-ब्रह्मसे विच्युत न होंगे। किसीके निकट ज्ञानप्रार्थी न होंगे। वनमें रहते हुए भी राजाकी तरह वैभववान रहेंगे। भोगके बीच रहते हुए धर्मकी चिन्तनमें लगे रहेंगे। यदाकदा आश्चर्यजनक कृच्छ् योग आसानादि भी होने लगेंगे। स्वभावतः महाज्ञानी होंगे। कभी-कभी शब्दातीत अवस्थामें भी विराजित रहेंगे।

सर्वप्रकारकी वासनासे रहित होंगे। अष्टसिद्धिकी पर्वाह नहीं करते। सर्वदा आत्मस्थ और आत्मनिर्भर रहेंगे। सर्वदा परम अ-वस्थाओंमें विराजित रहेंगे। सत्यपर लक्ष रहेगा। महाप्रज्ञावान होंगे। शत्रुमित्र उनके लिए समान रहेंगे। इच्छामृत्यु होगी।

आर्त्तके त्राण करनेका यत्न करते रहेंगे। पापोद्धार करनेके प्रति सर्वदा मन लगा रहेगा।

जीवोद्धार करने और शिष्यके मंगलसाधन, एवं आर्त्त जनोंके समुद्धार करनेके निमित्त बार-बार अवतार ग्रहण करेंगे।

अष्टम अध्याय

अधिकतर बालक नौ महीनेसे दस महीनेतक गर्भवास करते हैं, किन्तु श्रीअनुकूलचन्द्रने पूरा बारह महीना गर्भमें वास किया था। मातृ-गर्भमें एक वर्षतक वास करनेके कारण उनका सर्व शरीर सुगठित, सुन्दर और मजबूत था। उनके गोरे बदनसे तपाये हुए स्वर्णकी भाँति रंग विच्छुरित होता था। भुजाएँ मांसल और चढ़ाव-उतारकी थीं। उसपरकी कोमल-कोमल रक्तिमवर्ण उँगुलियाँ बहुत ही सुहावनी लगती थीं। सुन्दर मुख, पैनी नासिका और विश्वविमोहन बड़ी-बड़ी आँखें मनको बरबस अपनी ओर खींच लेती थीं। शरीर साफ सुचिक्कन, केश-रहित मुण्डित सिर देखकर ज्ञात होता अभी अभी स्नान किया है। सुचारु आननकी रमणीय शोभा देखते ही बनती थी। उस रूप माधुरीको निहारने का मन करता, आँखें हटाये न हटती थीं। उनके उस शिशुशरीर-में एक अपूर्व आकर्षक दिव्य तेज था।

शशिके सदृश बढ़ते गये शिशु अनुकूल। उसीके साथ-साथ बढ़ती गई उनकी चंचलता। बहुत ही शैशवावस्थामें आप करवट बदलकर इधर-उधर देखते रहते। विश्व-विमोहन आँखें चतुर्दिक घूमती रहतीं। पालनेसे उलट जानेका भय घरकी स्त्रियोंको सर्वदा लगा रहता। घरमें कोई घुसा नहीं कि उनकी आँखें उधरकी ओर फिरीं। आँखमें आँख मिलते ही किलकारीके शब्द सुन पड़ते।

बहुत ही बचपनमें उन्होंने पैरोंपर रेंगना और खड़ा होना आरम्भ किया था। चलते-चलते जोरोंकी किलकारियाँ मारने लगते, कभी-कभी अपने आप हँसते भी रहते। मातामहीसे तो सम्हालनेमें ही नहीं आते थे। वह जब पकड़ने दौड़ती, रेंगते हुए दूर निकल जाते।

कृष्णा सुन्दरीके आँगनमें अहर्निश पैजनीकी रुनझुन और

खिलखिलकी ध्वनि सुनी जाती। लावण्य निधिकी बाँकी झाँकीमें उनका अपना समस्त शोकताप विस्मृत हो गया। उनके पीठके पीछेसे किवाड़की आड़से 'झाँ' करता हुआ जब वह नन्हा झांकता वा छुप जाता उस समय उनके हृदयमें आनन्दकी सिहरन खेल जाती। वह आपेमें न रह पातीं, दौड़कर नन्हें बालकका बार-बार मुख चूमने लगतीं।

शिशुको अन्धकार बिलकुल ही सहन न होता। जो जगतको आलोक सम्प्रदान करने आया हो उसे भला अन्धकार अच्छा लगे। तीन मासका जब वयस था एक दिन दीप बुझ गया। उसीके साथ आरम्भ हुआ शिशुका क्रन्दन। बेचारी मौसी चुप करानेका प्रयत्न करती रहीं, लाख चेष्टा करके भी शान्त न कर सकीं। विरक्त होकर एक धौल जमा दिया। रातमें उन्होंने स्वप्न देखा कोई कह रहा है—'मुझको तुमने क्यों मारा? फिर कभी यदि हाथ चलाया तो ठीक न होगा।'

कामसे निवृत्ति पाते ही मुहल्लेकी अधिकांश स्त्रियाँ दोपहरमें मनमोहिनी देवीके यहाँ आ जुटतीं और मणी बहन कहकर उनको घेरकर बैठ जातीं। मणी मेला लग जाता, भक्ति रसकी धारा बहने लगती, धार्मिक कविता-कहानीकी बाढ़ आ जाती। इस प्रकार मनमोहिनी देवीका बैठकखाना मुहल्ले-टोलेकी स्त्रियोंका बैठकखाना ही बन गया था। किन्तु जबसे यह मनोहर शिशु आया तबसे उनके आने-जानेका विशेष आकर्षण बन गया। बच्चेको गोदमें लेकर वे अपनी आँखें ठण्ढी करती, छातीसे लगाकर हृदय शीतल करतीं।

कृष्णा-सुन्दरीका आँगन अब प्रातः संध्या लोरी और गानसे मुखरित रहता। बालकके मन्द मुसकानने पड़ोसिनोंको चेरी बना लिया। उसकी मुसकानने उनपर जादू कर दिया था। उसका

मुसकानभरा मुखड़ा उनकी आँखोंपर छाया रहता। उसको देखे बिना, चुम्बन किये बिना उन्हें कल ही न पड़ता।

बहुत अल्प-कालमें अनुकूलचन्द्रने पैरपर खड़ा होना और बोलना सीख लिया। इसीके साथ-साथ पड़ोसिनोंके हृदय-मन्दिर में अपनी चंचलताका विमुग्धकारी बीज बोया। उनकी चंचल गतिको रोकनेके लिये गान और नृत्यका सहारा लेने लगीं वे। चुटकी बजाती हुई जैसे ही वे गान आरम्भ करतीं आप अपने नन्हें पैर और बाहुद्वयको विस्फारित करते तथा ताथैयाका उच्चारण करते हुए थिरकने लगते।

नौ महीनेके वयसमें उनका अन्नप्राशन हुआ। बहुसम्बन्धियों के यहाँसे बालकके लिए उपहार और गहने आये। माँने उनको पहनाना आरम्भ किया। उनको प्रथम स्नान कराया गया उबटन लगाकर। घुँघराले बालमें तेल लगाया गया। उसके बाद कंघीसे झारकर बाल पीछेकी ओर सजा दिये गये। शरीरमें पीला कुर्त्ता और कमरमें पीला जाँघिया पहनाया गया। हाथमें बेरा और पैर में नूपुर पहनाया गया। कमरमें करधनी और गलेमें सोनेका हार। आंखोंमें काजल लगाये और साथ ही साथ माथेपर काले काजलकी बिन्दी टीप दी। अन्तमें माथेपर मुकुट पहना दिया गया।

इन सब वस्त्रालंकारोंको धारण करनेके साथ-साथ अनुकूल-चन्द्रका बालसुलभ नवीन सौन्दर्य भी खिल पड़ा। पीताभ वसन और भूषण धारण करते ही वे नाच उठे। उनके विश्व-विमोहन बाहु विच्छोभ,ग्रीवाकी भंगिमा,चंचल चरणके उद्दाम छन्द,नूपुरों-की किंकिन-ध्वनि और खिलखिल तरल हास्यसे समस्त घर-आँगन मुखरित हो उठा। नवपरिधान एवं विविध आभूषणोंकी रमणीय आभाने बालक अनुकूलको विस्मयमें डाल दिया हो। वे निद्रा-भंग चेतनाकी नाई अकस्मात् चकितसे हो गये। कभी वे अपने

रंगीन वस्त्रको मुट्ठीमें बाँधते, कभी उसको खींचकर देखते और कभी अकारण चंचल चरणसे घुटनोंके बलपर एक पैरपर खड़े होकर किलकारी निकालने लगते। ज्ञात होता उस शरीरमें कोई अव्यक्त अश्रुत संगीतलहरी तरंगित हो उठी हो और उसके ताल-तालपर उस बाल्य शरीरके मृदुल अंग-प्रत्यंग नाच रहे हों। उनके उस चकित-विस्मित, हास्य-लास्यपर पैरकी पैजनी रुनझुन शब्द करती। उस शब्दको सुनकर वे आश्चर्यचकित चतुर्दिक देखने लगते।

अपने लालके उस लास्यमय रूपमाधुर्य्यको विमुग्ध दृष्टिसे पान करनेमें मनमोहिनी देवी विभोर हो गईं।

कुछ देरके उपरान्त पालकी द्वारपर आ लगी। एक निकट सम्पर्कीय चचाके साथ ग्राम परिक्रमा करने निकले बालक अनुकूलचन्द्र पीताभवस्त्रालंकारमें। उनके सोनेसे शरीरका रंग बहुत ही मनोहर लग रहा था। उनके उस अलौकिक रूपको देखकर स्त्रियोंके मुखसे बरबस उलूध्वनि निकल पड़ती। परिचिताका मुख देखते ही वे मृदु-मुस्कान करते हुए आनन्द प्रदर्शन करते। अत्यधिक परिचितसे मिलनेके लिए हाथ फैलाये बढ़ते, पालकीसे उतरनेंका जोर करते और जबतक पालकी रुक न जाती चैन न लेते। पालकी रुकनेके साथ ही परिचित स्त्रीकी ओर उतावलेकी भाँति झपट पड़ते। वह स्त्री भी बांके मुकुटधारी मधुर मनोहर बालककी ओर दौड़ पड़ती। गोदमें लेकर आदर करती हुई नाना प्रकारका उपहार प्रदान करती। इस प्रकार सारे ग्राममें आनन्द का कलरव फैलाते मनमोहिनीनन्दन घरको वापस लौटे।

यथाविधि संस्कारके समाप्त हो जानेपर कुलपुरोहितने देशाचारके अनुशार शिशुके हाथोंमें रुपया देनेका प्रयत्न किया, किन्तु बालकने उसको छुआ ही नहीं। उसके बाद मिट्टी और कागज दिया। इन दोनोंको बालकने ले लिया। इसपर बालकके त्यागी

और विद्वान् होनेका अभिमत पुरोहितजीने प्रदान किया।

इसके दो महीनेके उपरान्त मनमोहिनी देवी हरिपुरनिवासी उमेश लाहिड़ीके यहाँ गयीं। लाहिड़ी बाबू थे उनके निकट सम्पर्की बहुत बड़े जमीन्दार। दो एक दिनमें ही शिशुने उनपर अपने प्रेमके मोहजालका विस्तार किया। उन्हींके पास रहना और उन्हींके चतुर्दिक खेल चलने लगा। बालकके ठुमक-ठुमक नाँचनेके आकर्षणमें उमेशजी भी पड़ गये। बच्चेके बिना उन्हें भी कल न पड़ता।

उनके गृहके बाहरी हिस्सेमें गोपालजीका मन्दिर था। हठात् उठकर उमेश बाबू पूजा करने चले गये। बच्चापर ध्यान रखनेको दर्बानसे कहते गये।

आँख बन्द करके ध्यान करने लगे। हठात् ठनाकेकी आवाजके साथ भारी वस्तु गिरी। ध्यान टूट गया। आँखें खुलीं तो देखा बालक अनुकूल सिंहासनपर बैठे खिल-खिल हँस रहे हैं और गोपालजी नीचे सिंहासनच्युत होकर पड़े हुए हैं।

खटपटकी आवाज सुनकर दरबान दौड़ा आया। ग्यारह माह का नन्हा-सा बच्चा आँखमें धूलि झोंककर इतने ऊँचे सिंहासनपर कैसे चढ़ गया और भारी मूर्त्तिको गिराकर बैठ गया—यह बात किसीकी समझमें न आई।

धीरे-धीरे बालक अनुकूल द्वारके बाहर आने-जाने लगे। घरसे जब निकलते हाथमें एक लकुटी जरूर रहती। इसको देखकर घरवालोंने उनको गाड़ीवान कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया। गाड़ीवानने द्वारके चौखट और बकुल वृक्षके नीचे अपने बैठनेका आसन बनाया। इन्हीं दो जगहोंपर बैठकर वे खेलमें रमे रहते।

उधर होकर जो भी जाता, उनकी आकर्षक दिव्य कान्तिको देखकर ठिठक जाता। आँखें हटाये न हटतीं, टकटकी बँध जाती। ज्ञात होता कोई देवता मनोहर बालकका रूप धारण कर मनमोहिनी देवीके द्वारकी शोभा बढ़ा रहे हैं।

क्रिया-कलाप भी दिव्य होते उनके। चिड़ियोंको देखते ही उनके पीछे दौड़ पड़ते। घुटनोंके बल चलते समयसे ही चिड़ियोंके प्रति आकर्षण रहता आया है। पक्षियोंकी मीठी बोली और लुभावनी चित्र-विचित्र रोमराजि मनको चंचल बना देती। दोनों हाथ फैलाये पीछे-पीछे घूमते-फिरते। नन्हें हाथको उँगुलियोंसे बुलाते उन्हें। 'आरे, पाखी आ' कहते हुए पीछे लगे फिरते। उस समयकी मुखभंगिमा और उँगलियोंकी संचालनक्रिया बड़ी मनोहर दीख पड़ती। चिड़ियाँ भी भागती नहीं, आगे-आगे फुदकती फिरतीं। बीच-बीचमें ग्रीवा घुमाकर पीछेकी ओर देखती भी जातीं। शिशु और पक्षीकी वह मनमुग्धकर लीला नित्य ही देखनेमें आती।

खेलमें वे अपने आपको भूल जाते, विभोर हो जाते। एकाग्र मनसे खेलते रहते। किसी नवीन वस्तुको देखकर उनके अन्तरमें उत्सुकता जाग पड़ती।

चलनेकी गति बड़ी ही तीव्र थी उनकी। कभी स्थिर रह ही नहीं सकते थे। हवाकी तरह यहाँ-वहाँ डोलते फिरते थे। अभी यहाँ हैं तो क्षणभर बाद कहाँ निकल गये, कहना कठिन हो जाता। कृष्णा सुन्दरी बेचैन खोजती फिरतीं। तबतक आप किसी खेत या बागानमें बैठकर मिर्चा या बैगनका पौधा उखाड़ उखाड़कर जड़को ध्यानसे देखते रहते। पौधेके मूल उत्पत्तिकी खोजमें उनकी दृष्टि निबद्ध रहती।

उँगली पकड़े हुए किसीके साथ जा रहे हों तो उनकी दृष्टि इधर-उधर घूमती रहती। कोई नया पेड़ दीख पड़ा कि प्रश्नोंकी झड़ी बरसाने लगते। इस वृक्षका नाम क्या है? इसके फल-फूल कैसे होते हैं? फलका क्या होता है? कितने दिनमें पकता है? पेड़ कैसे लगाया जाता है? कितने दिनमें फल लगते हैं? एक साथ इतना प्रश्न कर बैठते कि उस आदमीको बतलाना कठिन हो

जाता। विषयके आदिसे अन्त तककी जानकारी प्राप्त करनेकी उत्सुकता सर्वदा रहती आपमें।

एक दिन मनमोहिनी देवी किसी पड़ोसके घर जा रही थीं। बेटेसे बोलीं—'चल बेटा, तुझे एक नया लड़का दिखा लाऊँ ?'

उसको देखकर क्या होगा माँ, वह बेचारा तो कुल अठारह दिनका अतिथि है।' प्रथम-प्रथम माँकी आज्ञाका उल्लंघन किया बालक अनुकूलने।

इस अशुभ उत्तरको सुनकर माँ विरक्त हुईं, भ्रू कुञ्चित हो गयी उनकी। किन्तु वह अशुभ भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हुई। अठारहवें दिन उस नवजात शिशुने इहलीला संवरण की।

इस प्रकारकी भविष्यवाणी उनसे कौन कराता है ?

हेमचन्द्र नामक एक तरुणने मनमोहिनी देवीके घरके निकट एक सुन्दर पुष्पवाटिका लगायी। चतुर्दिक मजबूत टट्टरसे घिरावा कराया। आदमीकी कौन कहे कुत्ते-बिल्ली भी उसमें प्रवेश करनेमें असमर्थ थे। फिर भी न मालूम कौन उसमें घुस जाता और नित्य पुष्पके पौदेको उखाड़ फेंकता। चोर किस रास्तेसे घुसता है इसका चिह्न भी खोजनेसे न मिलता।

अपनी फुलवारीका नित्य विनाश होते देख वह एक दिन मनमोहिनी देवीके निकट दुःख प्रकट कर रहा था। अनुकूलचन्द्र भी वहीं थे। बोल उठे—'मैं यहाँ फुलवारी न जगाने दूँगा तुम्हें। यहाँ लगानेसे क्या लाभ ? वहाँके लिए फुलवारीकी रचना करो तो अच्छा भी लगे।'

इस स्पष्टवादिताको देखकर हेमचन्द्र बोला—'तो यह काम तुम्हारा है ? तुम ही रोज हमारे फूलके वृक्षोंको तोड़ा करते हो !'

'हाँ जी हाँ मैं ही तोड़ता हूँ। मैं यहाँपर कभी तुमको फुलवाड़ी न लगाने दूँगा। वहाँ की फिक्र नहीं, चले हैं यहाँ फूलगाछ लगाने।'

इसके कुछ ही दिनके बाद हेम जाता रहा। उसकी इहलौकिक फुलवाड़ी उजड़ गई।

तब इस चार वर्षके बालकके मुँहसे क्या कोई भविष्यवाणी कराता रहता है ?

घरके निकट ही एक कविराजका मकान था। उन्होंने एक दिन मारात्मक विषाक्त औषधिकी गोलियाँ बनायीं और उन्हे धूपमें सूखनेके लिये रख दिया। विषकी मात्रा अधिक रहनेके कारण स्वयं पहरा दे रहे थे। सहसा हवाकी तरह अनुकूलचन्द्र वहाँ पहुँच गये और पलक मारते न मारते एक मुट्ठी गोलियाँ मुँहमें डाल लीं। कविराज चिल्ला उठे। कृष्णा सुन्दरी दौड़ती पहुँचीं। आशंकासे सबका मुँह सूख गया। उपचारका एक भी पथ न सूझ पड़ता था कविराज महाशयको। एक गोली ही आदमीका काम तमाम कर सकती थी।

अनुकूलचन्द्र हँसते, ताली बजाते वहाँसे चले गये। नीलकण्ठकी नाई सब कुछ हजम कर गये। वह गरलपान क्या अबतक शेष हुआ है ? आज नवाविष्कृत विषाक्त औषधियोंका सर्वप्रथम प्रयोग उनपर होते देखा जाता है। फिर भी आप उफ नहीं करते। सब कुछ जानते-बूझते भी घट-घट पान कर लेते हैं।

मन्दिरमें शालिग्रामशिलाका सुरक्षित रहना कठिन था इनके मारे। चुपकेसे मन्दिरके भीतर घुस जाते और शालिग्राम परके चढ़े चन्दनका लेपन अपने शरीरपर कर लेते और उसपर की पुष्पमाला को कण्ठमें धारण कर लेते। तदुपरान्त उस शिलामूर्तिको वेणुवन-में ले जाते और पत्तोंसे ढँक आते। लोगोंके जिज्ञासा करनेपर, द्विधाहीन कण्ठसे सच्ची बात बतला देते।

चार वर्षकी आयुमें अनुकूलचन्द्र बीमार पड़े। रोग बढ़ जानेके कारण माता बहुत चिन्तित हो पड़ीं। प्रभात-संध्या प्रार्थना और आरती करते समय साथमें बैठनेवाला कोई न था। वह जब पद्मा-सन मारकर जप करने बैठतीं बालक अनुकूलचन्द्र भी बगलमें बैठ-कर मन ही मन जप करते रहते। कुछ ही देरमें निर्विपात दीप-

शिखाकी नाईं बालकका शरीर हो जाता और उसमेंसे अग्निकी नाईं तेज निकला करता। नामध्यान समाप्त करनेके उपरान्त बहुत देर-तक प्रयत्न करनेपर तब कहीं आप उनकी तन्मयताको भंग करनेमें समर्थ हो पातीं।

आज उनका वही अनुकूल शय्यामें सट गया है, हड्डीमात्र रह गयी है। रोगमुक्तिके निमित्त गुरु-मूर्तिके सन्मुख प्रार्थना करने लगीं।

दूसरे दिनसे ही साधु-सन्यासियोंका आगमन होने लगा। एक प्रवीण सन्यासीने मनमोहिनी देवीको एकान्तमें बुलाकर कहा—'घबड़ानेका कारण नहीं। इस रोगसे तुम्हारा बच्चा मर नहीं सकता, यह असामान्य बालक है। दिव्य रोगका रोगी है, कुछ भी न होगा।' इसके साथ ही साथ उन्होंने कुछ उपचार भी बतला दिये। उसके अनुसार प्रबन्ध करनेसे बालक अच्छा हो गया!

मनमोहिनीनन्दन स्वस्थ होकर हिमाईतपुरकी वन-वीथियोंको आनन्दमुखरित करने लगे। गृह फिर आनन्द-निकेतन बन गया।

हिमाईतपुरमें साधु-सन्यासियोंकी भीड़ बढ़ती ही गयी। एक न एक बहाना लेकर अनुकूलचन्द्रको देखने चले आते।

एक दिन तो एक अद्भुत गैरिक वस्त्रधारी सन्यासी आ पहुँचा। मनमोहिनी-तनयको देखते ही उनके पीछे लग गया। वे जहाँ जाते पीछे-पीछे सन्यासी भी जाता। एक मुहूर्त्त भी अलग न रह पाता। उसकी आँखोंमें मनमोहिनी-नन्दनकी मधुर-मूर्ति समा गई। जो कुछ प्रसाद बनाता पहले अनुकूलचन्द्रको खिलाता। अवशेषमें जो कुछ जूठन बचता प्रसादके रूपमें सानन्द ग्रहण करता। बालक जबतक भोजन करते रहते उसकी आँखें उनके मुखचन्द्रकी ओर लगी रहतीं। सन्यासीके प्रसारित चक्षु क्या देख रहे थे उस मंजुल मूर्त्तिके भीतर!

क्रमशः बालकका मन भी उससे मिल गया। जबतक सन्यासी

प्रसाद बनाता आप उसके चतुर्दिक खेलते रहते—गुन-गुन करते रहते। दोनोंके बीच न मालूम क्या-क्या बातें होती रहतीं। सन्यासीके एकनिष्ठ सेवाभावको तो नहीं पहचान लिया है इस दिव्य बालकने? तभी तो अब स्वयं सन्यासीके पीछे घूमना आरम्भ किया है।

सन्यासी कितना भी फिरनेको कहे, कौन सुनता है। मना करते-करते सन्यासी थक जाता, पर वे सुनी अनसुनी कर देते। अरे, फिर जा, पैरमें छाले पड़ जायेंगे—काँटे विंध जायेंगे, फिर जा अभी तो रोगसे मुक्त हुआ है, ठण्डक लग जायगी। इस प्रकार सन्यासी फिरनेके लिये बार-बार विनीत स्वरमें अनुरोध करता, किन्तु कौन सुनता है।

अनुकूलचन्द्र और सन्यासीके इस नीबिड़ सम्बन्धको देखकर मनमोहिनी देवी चिन्तामें पड़ीं। कहीं मेरे लालको बहकाकर सन्यासी न बनाले इस बातकी चिन्ता उन्हें सताने लगी। तब लगीं वह लड़केके आने-जानेमें बाधा प्रदान करने। बोलीं—'घरमें खेल, उसके पीछे क्यों मारा फिरता है?'

माताकी इस बातको सुनकर अनुकूलचन्द्र घरके भीतर फूट-फूटकर रोने लगे। और बाहर सन्यासी कातर शब्दोंमें चिल्ला रहा था—"माँ, संगलाभ करनेसे मुझको वञ्चित न करो माँ। जिसके लिये सन्यास ग्रहण कर जंगल-जंगल मारा फिरता था, उसके दर्शन से हमको विताड़ित न करो माँ! यह कोई साधारण बालक नहीं है माँ। जिसकी खोजमें इतने दिनोंतक बन पहाड़ोंमें भटकता फिरा, यह वही हैं।"

नवम अध्याय

जहाँपर धर्मकी ग्लानि होती हो, दुष्कर्म और दुराचारकी ताण्डव लीला होती हो, महामानव, पुरुषोत्तम वहींपर तो अवतरित होते हैं। पापपूर्ण क्षेत्रमें अवतीर्ण हो नूतन कलेवरमें युग वैशिष्ट्या नुसार नवीन भाव और नवीन व्यंजनाके साथ अपनी लीलाका विस्तार करते हैं। कभी धनुर्धारी बनते हैं तो कभी वंसीधारी, कभी सुदर्शनचक्रधारीका रूप लेते है तो कभी त्रिशूलपाणीका। कभी हाथ उठाये पागलकी नाई कीर्त्तन करते हैं तो कभी हाथ फैलाये पागल बने फिरते हैं। युगानुसार नाना रूप, नाना वेश धारण कर धर्मसंस्थापन करते हैं।

वाष्पीय युग बीत गया, वैद्युतिक युग भी पुराना हो चला, आ पहुंचा है अणुविज्ञान युग। इस युगपरिवर्तनके अनुसार ही तो अवतारी भी अपनी आकृति, प्रकृति और विशेषताको लेकर अवतीर्ण होंगे। राजतन्त्रकी जब पूजा होती थी तो वे जन्म ग्रहण करते थे राजामहाराजाओंके राजमहलमें और राजपाट त्यागकर मनुष्यकी आँख खोलते थे।

आज जब राजतन्त्रकी महिमा म्लान हो गयी है तब वे कहाँ अवतीर्ण होंगे? युगधर्मके साथ ही तो उनकी नाड़ीका सम्बन्ध रहता है।

अनुकूलचन्द्रने जन्म ग्रहण किया था पद्मातटवर्त्ती एक साधारण मध्यवित्त परिवारमें। घर-द्वार, जोत-जमीन सब कुछ नीलामपर जिसकी चढ़ी थी ऐसे परिवारमें। सम्पत्तिकी रक्षामें उनके पिताने कारबार और व्यवसायको त्याग दिया था। चतुर्दिकसे बाणविद्ध आर्त्त परिवारकी रक्षामें अपने सुखी संसारको बलि चढ़ा दिया था। बाहरी आयका एक भी सहारा न रह गया था। उसपर भोजन-

छाजनका ही नहीं मुकदमेबाजीमें मोटा रुपया उड़ेलना पड़ रहा था उन्हें। लोगोंको मिलाने-जुलाने और अपने पक्षमें करनेके पीछे अजस्र अर्थव्यय होने लगा। सतत विरोधी पारिपार्श्विकके साथ संघर्ष करते रहने और मुकदमेबाजीके पीछे दौड़धूप करते रहनेके कारण शिवचन्द्रजीका शरीर रुग्ण होने लगा किन्तु कार्यभारके चापमें इसके प्रति दृष्टि देने किंवा विश्राम लेनेका अवसर न था। अपना ऐसा कोई विश्वासपात्र सहायक भी न था जिसपर मुकदमेका भार देकर निश्चिन्त हों। पाँच वर्षतक सतत शरीरकी उपेक्षा करते रहनेके कारण आप भयानक व्याधिग्रस्त हो पड़े। चलने-फिरनेसे एकदम मजबूर हो गये।

इसी समय उनके द्वितीय पुत्रका जन्म हुआ। उधर खेती-बारी, घर-द्वार और जमींदारी सब कुछ नीलाम हो गई। शत्रुओंने कृष्णा सुन्दरीके द्वारपर नीलाम होनेका ढोल पिटवाया। रामेन्द्रनारायण-जीके परिवारके विनाशकी घोषणामें बाजे बजे। स्थावर-जंगम समस्त सम्पत्ति कुष्टियाके एक महाजनने नीलाममें खरीद ली।

उन दिनों असह्य यन्त्रणा भोग रहे थे शिवचन्द्र बाबू। मुकदमेकी पैरवी करनेमें असमर्थ थे। इसी अवसरका उपयोग किया शत्रुओंने। अमलाशाजी की गई। जिसकी ओर अमला उसीका होता है मामला। सैकड़ो बीघे जमीन थी। सब क्षण भरमें उड़ गयी। खड़े होनेको एक इंच जगह भी न रही। अब स्त्री-पुत्रादि के साथ सड़कपर शरण लेनेके अतिरिक्त दूसरा कोई आश्रयस्थल न रहा उनके लिए।

कृष्णा सुन्दरीके मुखपर विषण्ण रेखा छा गयी। पिताका ना-मनिशान मिटते देख मनमोहिनी देवी-सी पितृभक्ताकी क्या अवस्था हुई होगी इसका अनुमान किया जा सकता है। किन्तु शिवचन्द्रबाबू हताश न हुए। कर्त्तव्यनिष्ठ योद्धाकी नाईं परिवार-की मानरक्षाके शेष प्रयत्नमें लगे। नीलाम खरीदारके यहाँ अपने

सम्बन्धीको भेजा और स्वउपार्जित द्रव्यसे समस्त रुपया चुकाकर नीलाम खरीद लिया। इस प्रकार यन्त्रणा और कष्ट भोगते समय भी वे कर्त्तव्यच्युत न हुए।

इससे पारिवारिक सम्मान तो बचा, किन्तु शिवचन्द्रजी हो गये पैसे-पैसेके मुहताज। उपार्जित समस्त धनको लगा देना पड़ा। इसके उपरान्त ही चला, अन्न, वस्त्र और रोगके साथ प्राणान्तक युद्ध।

उस समय अनुकूलचन्द्रका वयस कुल पाँच सालका था। मनमोहिनी देवी नौकर-चाकर सबको हटानेको बाध्य हुई। शिवचन्द्रजीके लिए औषधि लानेवाला तक कोई न रहा। बालक अनुकूल स्वयं जानेको तैयार हुए। कर्त्तव्यनिष्ठ पिताका पुत्र क्या कर्त्तव्यसे मुँह मोड़ सकता है? बालक आगे बढ़कर बोले—'माँ, घबड़ानेकी बात नहीं। मैं नित्य औषधि लाऊँगा बाबूजीके लिये।'

अस्पतालका शरण लेना पड़ा। वह भी था ग्रामसे तीन मील दूर। बीचमें इच्छामति नदी पार करनी पड़ती। नन्हा बालक अनुकूलचन्द्र नित्य नदी पारकर छः मीलकी दूरीसे औषधि लाने लगे। समस्त मार्गभर नामजप करते रहते। नाममें विभोर हो जाते। एक दिन नाम-जपमें ऐसे विभोर हो पड़े कि छाता लाना भूल गये। छाता सम्भवतः नावमें ही छूट गया। खाली हाथ देख माँका मुँह सूख गया। बोली—'छाता क्या हुआ ?'

'छाता! माँ, तुम इसके लिए चिन्ता न करो। मुझे छातेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।' उसके उपरान्त चला असह्य रौद्र और उत्तप्त बालुमें गमनागमन। किन्तु बालकके मुखसे कभी उफ तक न निकला।

धीरे-धीरे इनकी अवस्था पांचवें सालका अतिक्रम करने लगी। माताने अक्षरारम्भ करानेकी व्यवस्था की। पण्डित भगवान-

चन्द्र शिरोमणी और सूर्यशास्त्रीने विधिपूर्वक खड़ी-मिट्टी छुलायी। इसके उपरान्त काशीपुरमें भर्ती हुए। दो वर्ष तक नियमित रूपसे वहाँ पढ़ते रहे। तदुपरान्त पावना इन्स्टिच्यूट नामक हाई इङ्ग-लिश स्कूलमें नाम लिखाया गया। नदी-नाला पार करते हुए नित्य छः माइल आना-जाना पड़ता। इस प्रकार अनुकूलचन्द्रके विद्यार्थी जीवनका आरम्भ घोर दरिद्रतामें हुआ।

दशम अध्याय

'अरे, तू क्या आज स्कूल न जायगा ? आज परीक्षाका दिन है और तू अबतक निठल्लेकी तरह बैठा है ? स्मरण है कि नहीं ?' माँ डाटती हुई बोलीं।

स्मरण क्यों नहीं; खूब अच्छी तरह स्मरण है। स्कूल तो जाना ही होगा, किन्तु अब स्कूल अच्छा नहीं लगता। अच्छा कैसे लगे जब अकारण शिक्षक पीटते रहते हैं ? उस दिन मास्टर साहबने जो मारा था उसका कारण आजतक न समझ सका है, वह।

मास्टर साहब बोले—'बोलो लड़कों-एक-एक दो।'

क्लासके सब लड़कोंने कहा दो, किन्तु अनुकूलचन्द्र रहे मूक। देरतक मास्टर साहबका मुँह निहारते रहे। उत्तर क्या दें ? एक ही तो बहुमें परिवर्त्तित हो रहा है। उस एकके समान दूसरा तो कुछ भी देखनेमें नहीं आता। कहीं भी एकके समान दो वस्तु नहीं दीख पड़ती। वह एक "एक ही" रहता है। उस एकसे सब कुछकी उत्पत्ति हो रही है, वही एक बहुमें परिवर्तित हो रहे हैं। उससे निकलाकर उसीके चतुर्दिक नर्त्तन कर रहे हैं। नर्त्तन करते-करते फिर उसीमें विलीन हो जाते हैं। तदुपरान्त पुनः बहुमें परिवर्त्तित होनेकी नर्त्तन-क्रिया आरम्भ हो जाती है। किन्तु इन सबके बीच वह एक अद्वितीय बना रहता है। उसमें न तो परिवर्तन आता है और न उसके समान दूसरा कुछ होता ही है। वह एक तो अद्वितीय है, असमान है। तब दो कैसे होगा ? नमकका पुतला क्षार समूद्रमें जाकर क्या स्थिर रहता है ? वह तो उसीमें घुलमिलकर लिप्त हो जाता है, एकाकार हो जाता है। तब दो कैसे होगा ? संशयात्मक दृष्टिसे देखते रहे।

पूर्णमें योग करो या वियोग वह रहता है पूर्ण ही। पूर्णमिदः

पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यतेके रूपमें ऋषियोंने जिस महासत्यका रहस्योद्घाटन किया था, यह बालक क्या उस सत्यका दर्शन कर चुका है ?

'क्यों रे गोबर गणेश, बोलता क्यों नहीं ?'—डांटते हुए मास्टर साहबने प्रश्न किया।

'जी, दो समान वस्तु तो कहीं देखनेमें नहीं आती, तब योग कैसे करूँ ?'

अद्‌भुत दार्शनिक उत्तर। किन्तु यही मास्टर साहबके क्रोध उभाड़नेका कारण बन गया। गर्जते हुए बोले—क्यों रे शैतान, मेरे साथ चला है मजाक करने ?'

इसके बाद होने लगा मुक्केका प्रहार। हाथ जब थक गये तो चलने लगा बेंतका सपासप। बालक चोटके मारे जमीनपर गिर गया। नीले दाग उभर आये उसके कोमल शरीरपर। अकस्मात् मास्टर साहब इतना आग बबूला क्यों हो गये, यही सोचता रहा। न रोया, न चिल्लाया। भकुआकी तरह सिर्फ मास्टर साहबके मुखकी ओर देखता रहा।

अच्छी तौरपर मरम्मत कर लेनेके उपरान्त मास्टर साहबने अन्तमें अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहा—'तेरे सरमें गोबर भरा है गोबर। तुझको कुछ नहीं आ सकता। स्कूलमें नाम लिखाना व्यर्थ है।'

उत्तर कालमें जिसने तपोवन शिक्षा प्रणालीका प्रवर्त्तन किया, तीन वर्षमें प्रवेशिका पास करनेकी सफल योजना बनायी, बड़े-बड़े शिक्षाविदोंको शिक्षण कला सिखायी उसीको अभिज्ञ मास्टरने पढ़ने-लिखनेमें अयोग्य समझा था !

उसी दिनसे बालकको स्कूल अच्छा नहीं लगता। सम्भव है वह पढ़ने-लिखनेके निमित्त बना ही न हो। किंवा प्रचलित शिक्षा-पद्धति ही उसके लायक न हो।

तबसे शिक्षाके प्रति आकृष्ट न हो, वह शिक्षकके प्रति आकृष्ट हुआ। छोटी-मोटी डालियाँ मास्टर साहबके घर नित्य पहुँचाने लगा। पहुँचानेको बाध्य हुआ। कौन रोज पीठ कुन्दन करवाता रहे? साग-सब्जी, अनाज-तरकारी कुछ-न-कुछ लेकर मास्टर साहबके हवेलीमें पहुँचता रहता। इस प्रकार उसका स्कूली जीवन मजेमें कट जाता, किन्तु बीच-बीचमें यह परीक्षा आकर उसे विरक्तिकी अवस्थामें डाल देती। आज वही परीक्षाका दिन है।

अन्तमें माँने क्रुद्ध होकर कहा—"इस चालसे आज तुम ठीक समयपर स्कूल पहुँच सकोगे और हिसाब बना सकोगे इन दोनों बातोंमें सन्देह हो रहा है मुझे।"

स्कूल पहुँचनेमें अधिक बिलम्ब न हुआ। पैर बढ़ाया क्षिप्र-गतिसे समयपर पहुँच गया और निर्धारित जगहपर जा बैठा। यथासमय प्रश्नपत्र मिला।

'अरे, तू रोता क्यों है? क्या हुआ है तुझे? प्रश्न-पत्र लिये रो रहा है?' हिसाब क्या भारी है?—परीक्षागारके गार्डने पूछा।

'ना, भारी तो नहीं। किन्तु बनाऊँ तो माँकी बात जो मिथ्या हो जायगी। आज आते समय उन्होंने कहा कि मैं एक भी हिसाब न बना सकूँगा। अब यदि बनाऊँ, तो माँ झूठी बन जाती हैं।'

विचित्र बात। मास्टर लोग तो अवाक्!

पास करनेसे क्या हुआ यदि पिता-मातापरसे आस्था उठ जाय? जो परीक्षा सत्ता-प्रसविनी माताको हृदय-सिंहासनसे च्युत करनेवाली हो उसमें बैठनेसे क्या लाभ? श्रद्धा, विश्वासकी पवित्र मूर्त्ति हृदयसे उखड़ जाय तो वह जीवन क्या?

हाथ गुमेटकरके बालक बैठ गया और तबतक बैठा रहा जबतक परीक्षा शेष होनेकी अन्तिम घण्टी न बजी।

मास्टरोंने सम्वाद भेजना आरम्भ किया—'लड़का पढ़ता-

लिखता नहीं। घरपर ताकीद रखें, ट्यूटर रखें। तभी कुछ आशा की जा सकती है, अन्यथा कोई आशा नहीं। मां चिन्तामें पड़ी। शासन कठिन हो गया। मारधड़ बढ़ गया। अब क्या करें अनुकूलचन्द्र ? घर-बाहरकी दोहरी चोटमें कौन उनके हृदयके दर्दको समझेगा ? माँ जब दूसरेके कहनेसे सहज ममताको खींच ले तो बच्चा किसका मुँह जोहे ?

घरके पिछवारी होकर जाते समय एक बड़ा-सा शीशा पैरमें गड़ गया। घाव गहरा था, रक्तका फव्वारा बह चला। कष्टके मारे एक कदम चला न जाता था। स्कूल जानेकी शक्ति नहीं।

'देखूँ, कितना कटा है ? बस, इतनेमें ही स्कूल न जायगा ? यह तो कुछ भी नहीं, इससे कुछ न होगा। कोई भय नहीं। जा, स्कूल जा।' माँने कहा।

तब निश्चय ही कम कटा है। किन्तु इतना दर्द क्यों कर रहा है ? ना, उधर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं। मां जब कहती हैं तब निश्चय ही कुछ न होगा। माँ उनके लिये जीवनपथ निर्देशकी ध्रुवतारा थीं। मांकी इङ्गिति भगवान्का आदेश था। अनुकूलचन्द्र चल पड़े।

ठण्ढकसे बचानेके लिये स्कूल जाते समय मांने दुशाला ओढ़ा दिया। तीन मीलकी दूरी थी, इसलिये कुछ सबेरे ही जाना पड़ता। क्लासमें घुसे तो देखते हैं कोनेवाले लड़के जाड़ेके मारे कांप रहे हैं,दाँत खटखट बज रहा है बेचारोंका। बेंचपर हाथ रख कर देखा तो बर्फके समान सर्द। दुशाला खसक गया अपने आप। उसको चौपेत कर बिछा दिया। जब सभी आरामसे बैठ गये तब जाकर चैन मिला। स्कूलसे लौटे तो दुशाला लाना भी भूल गये।

इसी प्रकार कभी किसीको कुर्त्ता दे आते तो कभी धोती। दूसरेका दुःख सहन न कर पाते। अपरकी वेदना मनको अत्यन्त

व्यथित कर देती। करुण मुख देखकर हृदयकमल म्लान हो जाता।

एक दिन शरीरका समस्त वस्त्र दान करके दिगम्बर बने इच्छा-मती नदीके तटपर आ विराजित हुए। नाव खुल गई थी। अब क्या करें? कैसे पार उतरें? जो सयाने नदी पार करते हुए जा रहे थे सबसे पार उतारनेकी चिरौरी करते रहे, किन्तु किसीने भी न सुना। उलटे बेशर्म, निर्लज्ज कहकर भर्त्सना भी की। दूरपर एक धोबी कपड़ा फींच रहा था। उसके निकट पहुंचकर बोले—'मामा, तनिक मुझको पार उतार दो। दूसरे लोग तो नहीं सुनते। तुम भी न सुनोगे तो मेरी क्या गति होगी? दया करो, पार उतारो।'

मधु झर रहा था कण्ठस्वरसे। धोबीका हृदय द्रवीभूत हुआ। उसने कन्धेपर चढ़ाकर पार उतारा। घरतक पहुँचाने भी आया।

वे दिन बहुत ही कष्टके जा रहे थे। माँ पेबन्द जोड़-जोड़कर लज्जा ढँक रही थीं। उलंगावस्था देखते ही मारने दौड़ी। धोबीके चिरौरी और शिवचन्द्रबाबूके रोकनेपर जान बची।

माँ स्वयं उदारहृदया थीं, किन्तु अनुशासनको कभी ढीला न होने देतीं। स्कूली रिपोर्ट सुनकर हाथको कड़ा कर रखा था उन दिनों। इसके विरुद्ध पिताजी बच्चेके दैवी मनोभावको मसलने देना न चाहते थे। लाख कष्ट होनेपर भी बालकके अन्तर्निहित दैवीभावकी परिपुष्टि और रक्षण करनेमें सहायता प्रदान करते थे।

जिस वयसमें बच्चे क्षुद्रातिक्षुद्र वस्तुको छातीमें बाँधे रहते हैं उस समय बहुमूल्यसे बहुमूल्य वस्तु उनके लिये मिट्टीके समान थी। आत्मचेतनाकी जागृतिके साथ अन्यान्य लड़के जब घोर स्वार्थी हो जाते हैं, उस समय आप बन गये पर-दुःख-कातर। ऐसे एका-त्मबोधसम्पन्न आप कैसे बन गये?

माता-पिताके आचार-विचारका सन्तानपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है, और उसमें भी विशेष रूपसे माताके आचार-विचारका।

माताके दूधके साथ ही साथ बच्चोंमें गुणावली प्रविष्ट करती है। अनुकूलचन्द्रजीके माता-पिता दोनों ही उदार प्रकृतिके थे। उनकी माता मनमोहिनी देवी तो दान करनेके व्यापारमें एकदम ही मुक्त-हस्त थीं। सहायता करनेमें पात्रापात्रका भेद भी विस्मरण हो जाता। स्वयम् भूखी रहकर दूसरेको खिलाना न भूलती थीं। दूसरेका दुःख देखकर अधीर हो जातीं एवं प्राणपनसे सहायता करनेकी चेष्टा करती रहतीं। उनके द्वारसे कभी कोई खालीहाथ न लौटता। सर्वस्व नीलाम हो जानेका जिस समय द्वारपर ढोल पीटा जा रहा था, ठीक उसी समय हरिबोला भूमिपाली उनका पैर पकड़े कुछ आर्थिक सहायता प्रदान करनेके लिये रो रहा था। आप विचलित हो पड़ी। अपने विपत्तिकी बात भूल गई। करें तो क्या ? अपना जेवर-बर्तन सब कुछ बन्धक रखा जा चुका था। उधार देनेवाला भी कोई न था। हठात् अनुकूलचन्द्रके गहनोंकी बात स्मरण हुई। अन्नप्राशनमें प्राप्त उपहारवाले गहने बचे हुए थे। उन्हींको ले जाकर बन्धक रखा और प्राप्त अर्थसे हरि-बोलाकी आँसूको पोंछा था। ऐसी महीयसी माँकी ही तो रक्तबिन्दु वहन करते थे वे। ऐसी माँका सन्तान असहायका सहायक, दीनोंका बन्धु और पापी-तापीका त्राणकर्त्ता हो जाय तो आश्चर्य ही क्या ?

बहुत ही दुःख-कष्टमें दिन जा रहे थे। आर्थिक अवस्था एकदम ही शोचनीय थी। कहीं कोई उधार देनेवाला न था ! माँके कन्धोंपर खाने-पीनेका समस्त बोझ आ गिरा था। उसपर दो-दो तीन-तीन शाम भूखों रह जाना पड़ता था उन्हें। उपवास और कष्ट सहन करते-करते माँका मुख सूख गया था। माँकी इस अवस्थाको देखकर मन व्यथित हो गया अनुकूलचन्द्रका। एकान्तमें जाकर रो पड़े। माँ, माँ, मेरी माँके चीत्कारसे वन प्रान्तरमें सिहरन हो रहा था, उस आर्त्त स्वरसे पत्ती-पत्ती रो रही थी। उसी समय हठात् माँ काली आ उपस्थित हुई और गोदमें लेकर आँसू

पोंछती हुई सान्त्वना प्रदान करने लगीं। पायस खिलाया,परामर्श दिया। शीघ्र ही दु:खकी अमानिशाका अवसान होगा यह आश्वासन दिया।

उसके उपरान्त बालक अनुकूलचन्द्रमें परिवर्त्तन दीख पड़ने लगा। छायाकी भाँति माँके पीछे-पीछे घूमने लगे। प्रत्येक कार्यमें सहायता पहुँचाने लगे। भ्रूभंगीको देखकर ही उनकी आवश्यकताको समझ जाते और उसे पूरी करनेके निमित्त झट दौड़ पड़ते।

घरमें लकड़ी न थी। जलावन न हो तो माँ रसोई कैसे बनावेंगी? लकड़ीकी फिक्रमें पड़े अनुकूलचन्द्र। एक आदमीसे कह-सुनकर लकड़ी कटवाई और उसीसे बोझा बँधवाकर अपने सरपर लदवा लिया। कुछ दूर जाते न जाते पैर डगमगाने लगे, बोझके मारे सर गलेके भीतर धँसने लगा। कोमल किशोर बालक भारी बोझा ढोये तो कैसे? पैर उखड़ता जा रहा था, टपटप पसीना चू रहा था। दाँत मींचे फिर भी एक-एक करके डेग बढ़ाते जा रहे थे। आँखसे तारे फूटने लगे। चिल्ला पड़े—"माँ रे, अब तो एक डेग भी नहीं चल पाता। आह रे, प्राण निकले।' अकस्मात् चिन्मयी माँ काली आ पहुँचीं। सन्तानकी पुकार सुनकर वह कैसे बैठी रहें? पीछेसे बोझाको अपने हाथोंपर उठा लिया और ढोते हुए घरतक पहुँचा गयीं।

एक दिन लकड़ी न रहनेके कारण माँ बहुत परेशान थीं। बरसातका दिन, समस्त लकड़ी भींग गई थी। बाहरके गोशालेकी कुटियामें अनुकूलचन्द्रने सूखी लकड़ीका कुन्दा देखा था। चुपकेसे टाँग उठाकर चीरने चले। माँके कष्टलाघव करनेकी उतावलीमें किसी आदमीको बुलाया भी नहीं। किशोर बालक टाँगा चलाने लगे। दो-चार बार चलाते न चलाते हाथ झन्ना गया, कोमल उङ्गलियोंमें फफोले निकल आये। अब क्या करें? कुन्देपर मलिन मुख

किये चिन्तामें बैठे थे। नित्यकी कठिनाईसे माँको मुक्त करनेकी इच्छा क्या व्यर्थ चली जायगी भगवान् ?

ठीक उसी समय एक कृष्ण वर्णका तरुण आ पहुँचा। टाँगापर माथा टेके आँसू बहाते देखकर बोला—'हटो, हटो, मैं चीरे देता हूँ भाई।' इतना कहकर टाँगा ले लिया और लगा लकड़ी चीरने। बीच-बीचमें कुछ छेड़खानी भी करता जा रहा था। किन्तु आपने उत्तरमें एक शब्द न कहा। अन्तमें बाँध-बूँधकर वह लकड़ी घरतक पहुँचा गया। इतनेपर भी उस उपकारी बन्धुके प्रति एक बार आँख उठाकर न देखा।

उस दिन स्कूलसे लौटनेपर देखा मां खाटपर पड़ी हुई हैं। सदानन्दमयी मांका मुख कालिमासे आच्छन्न है। आजतक वह दुर्भेद्य कठिनाईको पराभूत करती आयी हैं। ज्ञात होता है आज उसके कराल दंशनका मर्मस्थानतक प्रभाव पड़ा है। तभी तो सरसे पाँवतक चादर ताने पड़ी हुई हैं।

कुछ देरतक शय्याशायित मांकी ओर देखते रहे। आंखोंके उमड़ते आंसूको पीकर बोले—'मां यह क्या ? तुम घबड़ाती क्यों हो ? परम-पिता सब ठीक कर देंगे।'

'घबड़ायें नहीं ? स्वामी रुग्ण होकर शय्यापर पड़े हैं। आमदनी एक पैसेकी भी नहीं। चिकित्सा नहीं करा पाती, पथ्य नहीं जुटता। बच्चोंका करुण मुख देख-देख छाती फटती रहती है। अब लोग मुझसे उनको छीननेका प्रबन्ध कर रहे हैं। मेरे लालको छीनकर अपनी गोद भरना चाहते हैं। इतने पर भी न घबड़ाऊँ ?'

'नहीं मां, घबड़ाती क्यों हो ? यह दिन भी कट जायगा। परम-पिता बैठे तो न रहेंगे। उनके रहते घबड़ाना कैसा ?'

बालकने मांको समझाना आरम्भ किया। सान्त्वनाकी वाणी सुनाने लगे—'जिस प्रभुने सृष्टि की है वह क्या देखते नहीं मां ? पिता क्या सन्तानको भूल जायेंगे ?'

इतने दुःखमें भी मांके मुखपर हँसी आ गयी। इतना छोटा-सा बच्चा कहता क्या है! पैसा न हो तो दवा कौन देगा? रुपया न हो तो खाना कपड़ा और पथ्य कहाँसे आवेगा?'

'यह बात तो ठीक ही है, किन्तु इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। हाथ-पैर तोड़कर बैठे रहनेसे क्या होगा? तुम मूढ़ी भूँजकर तैयार करो, मैं बेचूँगा। जितना अधिक तैयार करोगी, मैं उतना ही बेचूँगा। औषधि और पथ्यकी कौन कहे रुपयेसे घर भर दूँगा, देख लेना तुम्हारे पास कितने पैसे हो जाते हैं।'

जिस मातृ-मूर्तिको वह सर्वदा आँखोंके सामने रखे रहता था उसको दुःखके सामने सर टेकते देखकर कदाचित् बालकके भीतर पौरुष जग गया था!

तदुपरान्त अधिकतर उनको पद्माके किनारे देखा जाने लगा। गृहसे उन्मुक्त आकाशमें रहना अच्छा लगने लगा। स्कूलसे लौटनेके उपरान्त फाँड़ामें मूढ़ी लेते और चल पड़ते झाड़-जंगल-परिपूर्ण पद्माकिनारे। किसी वृक्षके नीचे बैठकर अनिमेष नेत्रोंसे हरित तृणावलीकी ओर किंवा नील आकाशकी दिशामें देखते-देखते ध्यानमग्न हो जाते। ज्ञात होता, शौच और मौनकी एक पवित्र मूर्त्ति दीप-शिखाकी नाईं जल रही है। ठीक उसी समय न मालूम किस अज्ञात लोकसे चिड़ियोंका झुण्ड आ जुटता। कोई सरपर, तो कोई स्कन्धपर, इस प्रकार सब लिपट जातीं। फिर भी ध्यान भंग न हो पाता। हिमशिखरकी नाईं उनका शान्त समाहित रूप अडोल बना रहता। कटि-वस्त्र कब गिर जाता इसका पता किसे है। चतुर्दिक मूढ़ी बिखर जाती। चिड़ियां चूंग-चूँगकर खातीं और मधुर कलरव करती हुई आनन्दप्रकाश करतीं। पालतू नहीं, वनकी चिड़ियाँ। कैसे आतीं, क्यों आतीं, कौन जाने? तन्मयता और अहिंसक भावकी टेर पशु-पक्षियोंको भी लग जाता है। तब क्या कठिन साधनाके उपरान्त प्राप्त

होनेवाले अहिंसा भावका बालक अधिकारी हो गया है ?

सन्ध्या समय पद्मा- किनारे जहांपर आप नित्य बैठा करते उससे कुछ ही दूरपर स्टीमरका घाट था। जहाजके आनेपर वहां कुछ आदमीकी चहल-पहल बढ़ जाती। यात्रियोंका चढ़ना, उतरना कुलियोंका हल्ला-गुल्ला और माल उतारना-चढ़ाना बहुत अच्छा लगता। भारी गट्ठर ढोते देख हृदय कष्टसे भर जाता।

एक दिन कुलियोंके दुःख कष्टके परिमाणको जाननेकी इच्छा हुई। सोचकर बैठ जानेवाले तो बालक थे नहीं। जैसा भाव जगता वैसा ही काम होता उनका। अब लीलाक्रमसे बन गये कुली और लगे गठरी चढ़ाने-उतारने। माल-पत्र यथास्थान पहुँचानेके उपरान्त ही हो जाते रफूचक्कर। मुसाफिर हाथमें पैसा लिये ताकता ही रह जाता। कष्टके परिमाण जाननेवालेको अर्थसे क्या काम। व्यथाके बोझका अन्दाज न हो तो व्यथाहारी कैसे बना जा सकता है? इस प्रकार कुली बनकर कुलियोंके साथ जीवन-सम्बन्ध का वास्तविक सूत्र बांधा।

एक दिन जंगलमें घूमते समय मनोरम दृश्य दीख पड़ा। पुष्पाच्छादित विभिन्न वर्णके लता-वृक्षोंका समारोह देखकर मन मुग्ध हो गया। नाना रूप-रस-गन्धपर मन भौंरा हो गया। कभी इस फूलको, तो कभी उस लताको हृदयसे लगाते। जहांतक आँखें जातीं पुष्प ही पुष्प दीख पड़ रहा था। प्राकृतिक सौन्दर्य-विचित्रताके मध्य अनुकूलचन्द्र डूब गये। तृष्णातुर दृष्टिसे उपवनस्थलीकी उस शोभाको देखनेमें मग्न हो गये।

एक ही पृथ्वी और इतना वैचित्र्य! नाना रूप-रस-गन्ध, काटछाँट इस एक ही पृथ्वीसे कैसे उत्पन्न होता है? मिट्टी तो एक ही है, किन्तु उससे जो इतने प्रकारके फल-फूल और पत्ते निकलते हैं? हठात् उस वैचित्र्यकी खानमें बैठकर कारण ढूंढ़ने लगे अनुकूलचन्द्र। चारो ओर आंखें फाड़कर देखना और विचार

चलने लगा। उनका समाधान जबतक न हो तबतक शान्ति कहाँ? सोचते-सोचते ध्यानमें विभोर हो गये। मनके एकाग्र होते ही नामजप होने लगा। उसके उत्तापसे अन्तर्भेदी दृष्टिशक्ति खुल गयी। अन्धकार दूर होने लगा। डाल-पत्ता, जड़मूल सब प्रकाश-पुञ्जवत् दीखने लगे। इतनेपर भी रहस्य न खुला।

ध्यान करनेमें तन्मय हो पड़े। समाहित हो गये। प्रकाशपुञ्ज अगणित अणु-परमाणुमें परिवर्त्तित हो गया। वे अणु-परमाणु भी एक विशेष केन्द्र बिन्दुसे उच्छरित होते दीख पड़े। उसी केन्द्र बिन्दुसे तेजशक्ति विच्छुरित होती है और प्रकाशपुञ्जका रूप धारण करती जाती है। किन्तु सब रूपका एक केन्द्रबिन्दु रहता है। तब इन गाछ-वृक्ष, पुष्पलताओंका भी कोई-न-कोई बिन्दु-केन्द्र तो निश्चय ही है।

पृथ्वीके अतल तलसे खोदकर जड़-मूल निकालने लगे। प्रत्येक वृक्षके बीज भिन्न प्रकारके हैं। किसीसे किसीका मेल नहीं खाता, सब स्वतन्त्र हैं। इन बीजोंके अनुसार ही बाहर विचित्रताका हाट लगा हुआ है। आमके बीजसे आम होता है और जामुनके बीजसे जामुन। इस मूल बीजके कारण ही आम, जामुन अलग-अलग रूप, रस और गन्धके होते हैं। धरित्री केवल उस बीजका पोषण करती है मात्र।

इसी प्रकार एक दिन मनुष्यके विषयमें जाननेका कौतूहल उत्पन्न हुआ। मनुष्यका रहस्य कैसे जाना जाय? ये तो अचल और मूक वृक्ष नहीं कि इनकी जड़ खोदी जाय। लोगोंसे पूछनेपर कोई ठीक उत्तर नहीं देता। कोई कहता है सब ईश्वरका खेल है। ईश्वरका खेल तो है किन्तु उस खेलका रहस्य क्या है? स्त्री और पुरुष विभिन्न रूप, आकार और प्रकारके क्यों होते हैं? किसीसे किसीका मेल क्यों नहीं होता? सबसे तो कठिन है स्त्री पुरुषका भेद। इन दोनोंमें पृथ्वी या बीज कौन है यही पता नहीं चलता।

लगे मनुष्यमें पृथ्वीका अंश रखनेवालेका खोज करने। बहुत दिन-तक अनुसन्धानमें लगे रहे। इसी बीच एक स्त्रीको कन्या उत्पन्न हुई। समाधान हो गया। नारी ही मनुष्य जातिको उत्पन्न करने-वाली क्षेत्र-भूमि है।

खेल-कौतुकमें भी वही अवस्था थी, दल बाँधकर खेलते रहना बहुत ही अच्छा लगता उन्हें। गलबहियाँ डाले बातें करते रहते। हँसते, खेलते हँसाते हँसाते लोट पोट कर देते। रह-रहकर हँसीका फव्वरा छूटता रहता। आनन्द-कल्लोलसे परिवेश मुखरित रहता। समस्त वातावरण हास्य तरंगसे आन्दोलित रहता। सरलप्राण बालकोंके निर्मल हृदयसे उठनेवाली हास्यलहरीमें जो ही पड़ता एक बार हँसे बिना रह न पाता।

उनके प्रेमपूर्ण आमोद-प्रमोद बात-व्यवहारसे लड़के वशीभूत रहते थे। दल बांधे उनके पीछे-पीछे घूमते रहते। बीचमें बैठाकर चतुर्दिकसे घेरकर बैठ जाते। स्कूलमें हो वा ग्राममें सर्वत्रके लड़के उनको अपना समझते, सबने अपने प्रिय बन्धुका नामकरण किया राजा। कोई राजा कहता तो कोई राजभाई कहकर पुकारता।

राजाके निमित्त खर-बांस निर्मित सिंहाँसन बनवाया जाता और फूल-पत्तोंका मुकुट तैयार होता। माला-मुकुट पहनाकर राजा को राजसिंहासनपर आसीन किया जाता। उसके उपरान्त जुहार करते हुए उनके चरणोंमें हरा नारियल, बेर, शरीफा आदि फल-मूलका अर्घ्य चढ़ाया जाता। तदुपरान्त राजाकी पदमर्यादाकी रक्षा करनेके लिए नौकर-चाकर तो चाहिए। लड़कोंमेंसे कोई बनबा मन्त्री तो कोई सेनानायक और सिपाही। तदुपरान्त राज-दण्ड-धारण समारोह होता। दण्डके रूपमें रहती बांसकी कमाची।

अब चलता न्यायकार्य। वादी प्रतिवादी अपनी-अपनी अर्जी और फरियाद सुनाते। कभी-कभी बाहरी व्यक्तियोंके विरुद्ध भी नालिश होती। एक दिन एक बुढ़ियाके विरुद्ध मुकदमेकी पेशी हुई। वह

पके आमको गड़हेमें फेंक देती है, किन्तु लड़कोंको नहीं देती।

राजाज्ञा हुई 'उसका आम लूटकर खा लिया जाय'। दूसरे ही दिन बच्चोंका काफिला वृद्धाके बागानमें घुस पड़ा। राजा स्वयं उपस्थित थे। कनखीकी इंगिति पाते ही सबके सब पेड़पर चढ़ गये और लगे डाल हिलाकर आम गिराने। बुढ़िया बिगड़ी, आंखें दिखाई, पर सुनता कौन है। तब राजाके निकट जाकर चिरौरी करने लगी। उत्तरमें राजाजीने कहा—"यह तभी बन्द किया जा सकता है, जब तुम आम बाँटनेका वादा करो। गढ़ेमें फेंककर आमको सड़ा देना अच्छा लगता है तुम्हें, किन्तु इन सोनेके समान बच्चोंको देना नहीं ? कैसा हृदय है तुम्हारा ?"

वृद्धाने जब आम देना स्वीकार किया, तभी जाकर वह लूट बन्द हुई।

घर किंवा स्कूलमें ही लड़के इनके पीछे-पीछे घूमते हों यह बात नहीं। जहाँ कहीं भी जाते, लड़कोंका दल एकत्र हो जाता। इनके मोहनी स्वरूप और मधुर व्यवहारके कारण बच्चे शीघ्र आकर्षित हो जाते। कुछ दिनके लिए मैमनसिंह जिलेके गोलकपुर ग्राममें गये थे। वहाँकी रानी साहिबाके विरुद्ध लड़कोंने नालिश की। उनके राज्यपुष्पोद्यानमें बच्चोंका जाना निषेध था।

बच्चोंका रोना सुनकर राजासे न रहा गया। तत्काल सबके साथ राज्यपुष्पोद्यानके फाटकपर पहुंचे और दरबानके सामनेसे अकड़ते हुए भीतर घुस गये। उनकी तेजोदीप्त मुखाकृतिको देखकर बोलनेकी हिम्मत न हुई। भीतर घुसकर लड़के उद्यानके फूल-फल, डाल-पातको तोड़कर तहस-नहस कर रहे थे, इतने पर भी वे किसी प्रकारका प्रतिकार करनेमें असमर्थ रहे। अन्तमें हल्ला सुनकर स्वयं महारानी साहिबा बाहर निकलीं और अनुकूलचन्द्रको बुलाकर इसका कारण पूछा। उन्होंने उद्दीप्त कण्ठसे उत्तर दिया—'बच्चोंको उद्यानमें जानेका प्रवेशाधिकार मिल जाय तो वे कभी कोई हानि न

पहुंचावेंगे ।' रानी साहिबाने तत्क्षणात स्वीकृति दे दी ।

इस प्रकारके उत्पातसे क्या अपना गृह भी बच पाता ? कड़ाहीमें दूध रखकर मनमोहिनी देवी कहीं पड़ोसमें गयी थीं । बानरी दलके साथ घरके पिछवाड़े पहुंचे और ठट्टरमें छेदकर फ़ोफी लगाकर दूध सुड़क जानेकी आज्ञा दी । आप पहरेपर तैनात रहे । क्षणभरमें दूधका सफाया हो गया ।

स्वार्थरक्षाकी बात भगवान कभी मनमें उठने ही नहीं देते ।

इतना उत्पात लोग कितने दिनतक सहन करते रहें ? कभी किसीकी फुलवारी नष्ट-भ्रष्ट होती, तो कभी किसीके पेड़का फल ही झाड़ लिया जाता । तंग आकर लोग मनमोहिनी देवीको उलाहना देने लगे । नित्य उलाहना सुनते-सुनते उनके कान पक गये । एक दिन डण्डा लेकर मारने चलीं । माँका वह रुद्र रूप देखकर अनुकूलचन्द्र भाग चले । माँ भी पीछे लगीं । आगे-आगे लड़का और पीछे-पीछे माँ डण्डा हाथमें लिये दौड़ी जा रही थीं । भागते समय रह-रहकर पीछेकी ओर भयत्रस्त आँखोंसे देख लेते थे । दौड़ते-दौड़ते माँका आँचल गिर गया, ललाटपर श्रमबिन्दु चमकने लगा । फिर भी वह न रुकीं, पैर बढ़ाये हाँफती हुई डेग बढ़ाती गयीं । इसी बीच अनुकूलचन्द्रने मुँह फेरकर पीछेकी ओर देखा । माँकी इस अस्त-व्यस्त मूर्तिको देखते ही हठात् पैर रुक गया । रोते हुए दौड़े आये और माँकी कमरसे लिपटकर कहने लगे—"मार, मार, जानसे मार दे मुझको माँ । जितना मन हो मार, किन्तु तेरा यह रूप नहीं देखा जाता । मुझको जितना चाहे पीट ले, किन्तु अपना यह रूप संवरण कर । मुझसे यह नहीं सहन होता ।"

इतना कहकर उन्होंने माँके सम्मुख शीश झुका लिया । सूर्यके प्रकाशमें उनका तपाया हुआ स्वर्णके समान शरीर चमकने लगा । माँका हाथ आकाशमें उठा था । माँ यशोदाकी भाँति दण्डधारिणी माँ सामने खड़ी थीं और प्रहार सहन करनेके निमित्त गोरे गोपाल पीठ झुकाये दण्डायमान हैं ! वह बड़ा ही मनमुग्धकर दृश्य था ।

एकादश अध्याय

बालक मण्डलीने मछली मारनेका अनुरोध करना आरम्भ किया। साथियोंका अनुरोध कहाँतक अमान्य किया जाय? आखिर एक दिन मछली मारने गये। बंसी लगाते न लगाते एक बड़ी-सी मछली फँस गयी। लड़कोंकी खुशीका ठिकाना न रहा, सब दौड़कर इनके पास आये और खींच-खाँचकर मछलीको सूखी जमीनपर ला पटका। मछली छटपट करने लगी। सब तो आनन्दमें मस्त थे, किन्तु अनुकूलचन्द्रका मुख स्याह हो गया और अन्तरसे एक छिन्न आर्त्त स्वर निकल पड़ा। लड़कोंका चरण पकड़कर मछलीको पानी में छोड़नेके लिए कातर स्वरसे विनती करने लगे। साथियोंने जब पुनः मछलीको पानीमें छोड़ा तब जाकर आस्वस्तिका निःश्वास निकला। उसके उपरान्त घंटों आपमें चलनेकी शक्ति न रही।

मछलीके शिकार करनेके उपरान्त अनुकूलचन्द्रमें एक महान परिवर्त्तन आया। नाम-ध्यान करना बहुत ही बढ़ गया। घूमते-फिरते, उठते-बैठते नामजप होता रहता। खेल-कूदमें जाते तो जरूर किन्तु वहाँ भी नाम करनेमें विभोर रहते। एक दिव्यानन्दमें हरदम मतवाले बने रहते। यह नाम कहाँसे पाया? नाम करना कहाँसे सीखा? सीखनेकी क्या बात, वह तो नाम करते हुए भूमिष्ट हुए थे। नामके सूत्रमें बँधकर मातृगर्भमें निवास किया था। मंत्र ही तो उनका स्वरूप है!

नामका नशा चढ़ गया। मंत्रजप करते समय ज्ञात होता हाथ-पैर सिमटकर भीतर शरीरमें खिंचा जा रहा है। ज्ञात होता मानों कोई एक अज्ञात शक्ति अन्तरकी ओर अंग-अंगका आकर्षण कर रही है। उस समय प्राणान्तक कष्ट होता। कष्टके मारे नाम करना बन्द कर देते। छोड़नेसे क्या होता है नाम जो नहीं छोड़ता। स्वयमेव होता रहता है। उस कष्टमें भी एक विचित्र प्रकारकी

आनन्दानुभूति होती। उस आनन्दानुभूतिमें ज्ञात होता अब प्राण निकल जायँगे। आनन्दतरंग सारे शरीरको नचाता रहता। उससे बचनेके निमित्त पद्मामें गड़े बाँसको पकड़कर पानीमें पैठ जाते। किन्तु वह आनन्दतरंग बैठने न देता, ठेलकर पानीके ऊपर फेंक देता। उस आनन्दतरंगके कारण पैरकी गति तीव्रतर हो गयी। धीरे-धीरे चल ही न पाते, दौड़ते हुए रास्ता तै करते।

उन दिनों मधुर रसास्वादनकी प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल हो गयी। रसगुल्ला देखते ही मन भौंरा बन जाता। बिना खाये चैन न मिलता, किन्तु पैसा ? लगे पिताजीका पाकेट और माँका बक्स ढूँढने। किन्तु पाकेटमें क्या हरदम पैसा रहता है ? बक्समें क्या सर्वदा रुपया मिलता ? उसपर वे दिन बहुत ही खराब थे।

लगे उधार लेकर खाने। धीरे-धीरे हलुआईका रुपया मोटा हो गया। रोज तकाजा होने लगा। बहाना करते हुए कुछ दिन कट गये। किन्तु बहानेबाजी कितने दिनोंतक चल सकती है। आखिर एक दिन स्कूलसे लौटते समय हलुवाईने हाथ पकड़ लिया।

बहुत अनुनय-विनय किया। अभावका रोना रोये। वह भला अभावकी बात सुने ? सबके सामने अपमानित करता हुआ बोला —'खाते समय तो अच्छा लगा था। अब पैसा देते समय करते हैं बहाना। आज एक बात न सुनूँगा, बकाया वसूल करके तभी छोड़ूँगा।'

असह्य अपमान ! मिठाई खानेकी लालच न रहती तो इतना अपमानित न होना पड़ता। हटाओ, आजसे मिठाई न खाऊँगा। प्रतिज्ञा तो कर ली। किन्तु उसको पूरा भी तो करना चाहिये। शपथ खा लेना आसान है, उसका पूरा करना कठिन है। उस दिन तो अपमानकी ज्वालामें प्रतिज्ञा कर बैठे, किन्तु दूसरे दिन यथासमय मिठाईका आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींचने लगा। चुम्बककी नाईं पैर रसगुल्लेकी ओर उखड़ता हुआ बढ़ने लगा।

प्रवृत्ति दूकानकी ओर खींचने लगीं। पाकेटमें जो साढ़े पाँच आने पैसे थे, वह प्रवृत्तिकी पुकारमें सहायक बने। कुछ दूर बढ़ते न बढ़ते प्रतिज्ञाने विवेकपर अंकुश मारना आरम्भ किया। विवेकने जगकर कहा—क्या यही लोभपर अधिकार करनेका तरीका है? कलका अपमान आज ही विस्मृत हो गया, इतने निर्लज्ज हो तुम। पैर जैसे-जैसे बढ़ते चित्त-शक्ति उतना ही प्रतिज्ञाका स्मरण कराती हुई रोकने लगी।

प्रवृत्ति और मनोबलका संघर्ष चलता ही रहा। इस अन्तर्द्वन्द्व में पड़कर वह कभी चार कदम आगे बढ़ते तो कभी एक कदम पीछे, किन्तु प्रवृत्तिका आकर्षण बलवान् था। पाकेटका पैसा उस आकर्षणको न्यायसंगत बताकर विवेक, चित्तशक्ति और मनोबलको दुर्बल बनानेमें सहायक बन रहा था। आखिर पैर उखड़ गये और अनुकूलचन्द्र कुछ दूरतक दौड़ते चले गये। रह-रहकर प्रवृत्तिका झोंका आगेकी ओर घसीटनेका प्रयत्न करता था। इस द्वन्द्वात्मक संघर्षकी खींचा-तानीमें वे जब अपने शरीरको सम्हालनेमें असमर्थ हो गये तो जमीनपर पड़ गये। वेग सम्हालनेकी शक्ति जब पैरमें नहीं तो उसपर विश्वास कैसे करें? उन्होंने इस बार प्रवृत्तिके विरुद्ध शरीर ही को लगाया।

आकर्षणके झोंकेके घनीभूत होनेके प्रथम ही वह जमीनपर लेट गये थे। किन्तु लेटनेसे क्या होता है? प्रवृत्ति थी शक्तिशालिनी। दूसरे बेगके साथ शरीर ही घसीटता हुआ बढ़ने लगा। कोई अव-लम्ब न देख अड़हरके जड़ोंको ही मुट्ठीसे कसकर पकड़ लिया। महान् शक्तिशाली व्यक्तिकी प्रवृत्तियाँ भी बहुत मजबूत होती हैं। जड़ पकड़नेके साथ दूसरा झोंका कट गया।

किन्तु प्रवृत्तिकी घनीभूत शक्ति अभी निःशेष न हुई थी, उसने तीसरी बार भी आक्रमण किया। इस झोंकेके साथ अड़हरका जड़ मूल तक उखड़ गया। यही अन्तर्द्वन्द्वका अन्तिम झोंका था। 'तुम

लोग हमको कभी रसगुल्लेकी दुकानपर नहीं ले जा सकते'—इतना कहकर आप दाँत मींचकर घुटनेके बल अड़कर बैठ गये। झोंका आया तो जरूर, किन्तु दृढ़ताके इस आसनको हिलानेमें असमर्थ रहा।

इस प्रकार प्रवृत्ति और आसक्तिके साथ संयम, तृष्णा और लोभके साथ मनोबलकी लड़ाईमें अनुकूलचन्द्र विजयी होकर निकले। उठ खड़ा होनेके साथ दुर्बलताके सहायक पैसोंको पद्मामें झनाकेके साथ फेंक दिया। मानसिक संकल्पशक्तिकी कार्यकारिता प्रबलतर होकर निकली।

दुर्बलताको पहचान लेनेके उपरान्त उसके निश्चिन्ह करनेमें लग पड़े। दूसरे दिन मिठाई खानेकी स्पृहा जगनेके निर्दिष्ट समय अपनेसे चौगुने बलवानसे उलझ गये। अकारण झगड़ा बाँधते देख वह कुछ देरतक हँसता हुआ सहन करता रहा। तब आपने गुत्थम-गुत्थी, पटका-पटकी आरम्भ कर दी। कसकर दो-चार धौल भी लगा दी। रंगबदरंग देख उसको भी गुस्सा आ गया। पटककर छातीपर चढ़ बैठा और लगा कुन्दन करने। मार तो खायी, किन्तु प्रवृत्तिको पछाड़ कर ही छोड़ा।

प्रवृत्तिके इस युद्धमें उसके शक्ति, प्रभाव और शरीर-मनपर पड़नेवाले जोरका पता चल गया था। इसलिये पूरी तैयारीके साथ दुर्बलताओंके विरुद्ध युद्धमें प्रवृत्त हुए। उसके परास्त करनेका कौशल ज्ञात ही हो चुका था, उसी कौशलका प्रयोग कर एक-एक प्रवृत्तिको प्रशमित करने लगे। उनके रक्त-शोषक, पौरुष-विनाशक शक्तियोंसे पञ्जा मिलाने लगे। एक-एक करके सबको नियन्त्रणमें लाये। इस युद्धमें प्रवृत्तिपर विजय प्राप्त करनेका एक सहज कौशल आविष्कार किया। प्रवृत्तिके सर उठाने, स्पृहाके जागने और क्रियाशील होनेके प्रथम किसी कठिन कार्यमें शरीरको लगानेका तुक आविष्कृत किया। ऐसा करनेपर प्रवृत्ति प्रशमित हो जाती है।

मनको वह खींचती है जरूर, किन्तु श्रमसाध्य काममें लगे रहनेपर उसका जोर नहीं चलता। वह हार खाती है, सर झुका लेती है।

बचपनसे ही पक्षियोंके प्रति विशेष आकर्षण था। उनके रंग-बिरंगे रूप, मधुर काकलीपर मन लट्टू हो जाता। इसके पीछे विपत्तिमें पड़कर एक नई अभिज्ञता प्राप्त की। यह आकर्षण बढ़ते-बढ़ते उनके निवास, गृहनिर्माण, रहनेका ढंग प्रभृति विभिन्न विषयोंके जाननेका कौतूहल उत्पन्न हुआ। अब लगे पेड़पर चढ़-चढ़कर चिड़ियोंके घोंसलोंका निरीक्षण करने।

एक दिन पेड़पर चढ़कर चिड़ियोंके घोंसलेमें हाथ डाला। बाहर हाथ खींचकर देखते हैं तो साँप है। उसको झपाकसे फेंक दिया और सर्राकेके साथ नीचे उतरकर भाग खड़े हुए। कुछ दूर जानेके बाद पीछे फिरकर साँपको देखनेके लिये मुड़े। उसके बाद देखते हैं कि पैर मन-मनभरके हो गये हैं, भागा नहीं जाता।

चाँदनी रातमें टहलते हुए जा रहे थे। सामने एक साँप फन उठाकर खड़ा हो गया। उसको फाँदकर भागते चले गये। काफी दूरतक भागनेके बाद यह देखनेके लिये घूमे कि साँप आता है या नहीं। खड़ा होनेके साथ ही भयने आ दबोचा।

इससे उन्होंने सीखा कि भयकी उत्पत्ति कर्मकी प्रतिक्रिया स्वरूप होती है। आदमी भयभीत होनेके कारण नहीं भागता, भयका उद्भव दौड़ने वा भागनेके उपरान्त होता है।

कर्म करना जब इच्छाधीन है तब इच्छानुयायी भावको जाग्रत करनेके निमित्त तदनुयायी कर्म करना चाहिये। भाव स्वयमेव नहीं उत्पन्न होता, वह कर्मसापेक्ष है।

उनकी अनुसन्धानात्मिका बुद्धि बड़ी प्रबल, प्रखर, और तीक्ष्ण थी। वह ऊपर-ऊपर देखकर किसी चीजको कभी न छोड़ते। विषयका वस्तुके मूलमें प्रवेश करके मनन करते थे। फलतः दुःख, कष्ट, विषादादि अवस्थाओंका नियन्त्रण करना उनके लिये कठिन

न था। विपरीत भावसे शरीरका परिचालन कर आप अपना काम निकाल लेते।

कलम-दावात लेकर स्कूल जाना पड़ता था। स्याही छलककर जामा-कपड़ा खराब कर देती। इस झंझटको दूर करनेमें लगे। फोफीदार बाँसके टुकड़ेको ले आये और छिल-छिलकर कलम-सा नुकीला बनाया। तदुपरांत मुँहपर 'निब' बैठा दिया। अब लगे फोफीके ऊपरसे स्याही भरने। किन्तु यह क्या? स्याही तो नहीं निकलती, 'निब' सूखी ही पड़ी है। फिर लग पड़े। निबके बगलमें एक छोटा-सा छेद कर दिया। स्याही आने लगी। किन्तु अधिक मात्रामें। अब क्या किया जाय? एक पिन ढूँढकर लाये और उस छेदमें घुसा दिया। काम चलने लगा। बड़े होनेपर स्याही-कलमयुक्त विशेष यंत्रका परिमार्जित संस्करण फाउन्टेनपेनके रूपमें बाजारमें बिकते देखा। किन्तु अपनी मौलिक प्रतिभाके बलपर इसका असंस्कृत रूप निर्माण करनेमें समर्थ हुए थे।

रसगुल्लाके लोभप्रवृत्तिके साथ तीन वर्षतक सतत युद्ध किया था। मिठाईके विपरीत स्वादवाली वस्तुओंको खाकर लोभके साथ लड़ाई करते रहे। जो भी तीता पदार्थ पाते चबाने लगते। इसी सिलसिलेमें एक दिन 'भाँट' वृक्षके पत्तेको भी चबाया था। दुर्बलताके प्रति इतनी जागरूक दृष्टि कितने आदमियोंमें देखी जाती थी? किन्तु किशोर अवस्थासे ही उनमें विशेष दृष्टिशक्ति देखी जाती थी। पत्तेका रस तीता और कसाव लगा। चबानेसे मुँहमें पानी भर आया, पेटमें मीठा-मीठा दर्द भी होने लगा।

एक दिन एक साथीके पेटमें ऐंठनके साथ दर्द होने लगा। मुखमें पानी भर-भर आ रहा था। साथी बीच रास्तेमें लेटकर चिल्लाने लगा। रास्तेमें औषधिकी क्या व्यवस्था की जाय? सब लड़के एक दूसरेका मुख देखने लगे। उधर वह लड़का वेदनाके मारे छटपट कर रहा था। हठात् भाँटकी स्मृति जग पड़ी। दौड़े

हुए गये और पत्ते का रस निकाल कर पिला दिया। साथी अच्छा हो गया।

तब तो पेड़-पत्तोंमें विशेष आरोग्यकारी गुण है? अब लगे पेड़-पौधोंकी परीक्षा करने। उस परीक्षाकालमें आपने पाया कि, जिस पेड़ पौधोंके व्यवहारसे जो लक्षण उत्पन्न होता है, उस लक्षण-वाले रोगीको वह दवा दी जाय तो रोग प्रशमित हो जाता है।

उस मौलिक अन्वेषणका विकसित रूप डाक्टरी पढ़ते समय देखनेमें आया। डाक्टर हैनिमैनने इसी सूत्रको मूलभित्ति बनाकर एक चिकित्सा-पद्धतिका ही आविष्कार किया है।

एक बार ग्रामोफोन बजते सुना। सुननेके बाद घरपर आये और वैसी ही मशीन बनाया। एक तावा मांग लाये और मशीन-पर चढ़ाकर बजाने लगे। सूईकी जगहपर बबूलका कांटा प्रयोग-कर तावा बजा लिया।

अपने पिताजीके साथ जहाजपर ढाका जा रहे थे। जहाज और उसके इञ्जनकी क्रिया-कलापको मनोनिवेशपूर्वक देखते रहे। मानसपटपर जहाजका सर्वांगीण चित्र अंकित कर लिया। ढाका पहुँचनेके उपरान्त जहाज बनानेमें पिल पड़े और बनाकर ही दम लिया।

द्वादश अध्याय

अनुकूलचन्द्रके चतुर, मेधावी और कुशाग्रबुद्धिसम्पन्न होनेके विषयमें उनके पिता पण्डित शिवचन्द्रजीको पूर्ण विश्वास था, किन्तु उनकी माता मनमोहिनी देवी और स्कूलके शिक्षकगण इससे विपरीत धारणाका पोषण करते थे। यह प्रकटित होता भोंदू, गोबरगणेश, बुद्धि-हीन, निकम्मा आदि सम्बोधनोंके रूपमें।

इसके परिणामस्वरूप अनुकूलचन्द्रको स्कूलकी एक बात भी पसन्द न आती। खास करके मार खानेके उपरान्त तो स्कूल काटने दौड़ता था। वे माताके भयवश स्कूल जाते। स्कूलमें यदि कुछ अच्छा लगता तो वहांपर इकट्ठा होनेवाले लड़कोंका दल, दल बांधकर स्कूलके खेल-कूदमें जो आनन्द मिलता वह ग्राममें कहां मिले? वहां जाकर दौड़-धूप और खेल-तमाशा आरम्भ हो जाता। जिसमें जितना बड़ा प्राण होता है उसमें लीला-खेल करनेकी उतनी ही नशा रहती है। छुट्टी होनेके साथ ही साथ दल बैठ जाता, गान प्रारम्भ हो जाता। मधु-मिश्रित कण्ठ-लहरीको सुनते ही लड़के आ घेरते। राही राह चलना भूल जाते।

पढ़ने-लिखनेमें चाहे जैसे हों, किन्तु गाने-बजानेमें थे पूरे उस्ताद। जहां गाने-बजानेकी मजलिस बैठी हो, जहां कहीं कीर्त्तन होता हो वहाँपर आप मौजूद रहते। ब्राह्मण-सभाकी ओरसे तो कहीं न कहीं कीर्त्तन होता ही रहता। उस कीर्तनमें अपने सुरीले गलेसे तान छेड़ते और आकाशकी ओर हाथ उठाये नृत्य करते रहते। उस समय आपकी वयस आठ वर्षसे अधिक न थी।

रूप देखनेमें जैसा मनोहर था वैसा ही था मधुर कण्ठस्वर। जो देखता, जो सुनता, विभोर हो जाता। गाना-बजाना करनेको कहें तो आनन्दकी सीमा नहीं। जो भी काम हो पूरी मेहनतके साथ पूरा कर देंगे। किन्तु पढ़ने-लिखनेका नाम लें—सरपर पहाड़

गिर जाता। उसमें भी यह शुभंकरी? न मालूम इनकी पढ़ाई किस मूर्खने आरम्भ की? इनकी पढ़ाईसे क्या लाभ? उठा क्यों नहीं दिया जाता? यह मानों इनको निगलने दौड़ती हो।

छुट्टी होते ही कीर्तन-मण्डली जुट जाती। यात्रा-नाटक प्रारम्भ हो जाता। कभी गोप-लीला आरम्भ होती, तो कभी गोपिनी-विरह। लड़के बनते गोप और आप स्वयं मुरलीधर।

एक दिन काशीपुरवाले वटवृक्षके नीचे यात्रा-नाटक आरम्भ हुआ। आज राधा नहीं स्वयं कृष्ण विरही बने हैं। गोपियोंका विरहरुदन नहीं, राधाके विरहमें कृष्णका विलाप।

कृष्णवेशधारी अनुकूलचन्द्रने राधा-विरहगान आरम्भ किया। प्रकृतिके आनन्दमयी रूपके भीतरी पर्देमें जो अहर्निश रुदन-ध्वनि निकलती रहती है वही करुण क्रन्दन हृदय चीरकर निकलने लगा। राधा,राधा, राधा नामकी चीख प्रत्येक पेड़के डाल-पत्ते से निकलने लगी। राधाकी पुकारसे समस्त वन-प्रान्त रो उठा। कहां हो, कहां हो तुम प्राणप्रिय राधिका, कहां जा छिपी हो तुम? ओ मेरे प्राणोंकी प्राण, तेरे बिना मेरे प्राण निकलते जा रहे हैं और तू है कि मुझको एकाकी छोड़कर आकर्षण-विकर्षणके खेलमें चपला सी जा छिपी है। समेट ले री चपले, अपनी हास्य-लास्यविस्तारिणी शक्ति समेटकर मेरे निकट आ। तुम्हारे नीरव आलिङ्गनपाशमें निबद्ध होनेके निमित्त हृदय हाहाकार कर रहा है।

गीत गाते-गाते अनुकूलचन्द्र तन्मय हो गये। करुण ध्वनि अकस्मात् बन्द हो गयी—गानका स्वर अवरुद्ध हो गया। उसीके साथ-साथ देहपिञ्जर वाह्य-चेतनाहीन होकर लुढ़क गया। सखावृन्द बेचैन हो गये। 'अरे राजा भाई, तुम्हें यह क्या हो गया? हमको छोड़कर कहां चले प्रभो?'

कोई हिला-डुलाकर होशमें लानेका प्रयत्न करने लगा, तो कोई चादरसे हवा करने लगा। कुछ लड़कोंने पानी लाकर छींटा

देना आरम्भ कर दिया। शेष सखावृन्द रुदन करते रहे।

एकने राधा, राधा मंत्र कानोंमें सुनाना आरम्भ किया। अनुकूलचन्द्रके मुखपर हास्यरेखा फूट पड़ी। सर्वांगमें संज्ञा फिरनेकी आभा दीख पड़ी। शरीरमें स्पन्दन भी होने लगा। यह देखकर सखावृन्दमें आशाका संचार हुआ। सबने उच्च कण्ठसे राधाको पुकारना आरम्भ किया।

राधा राधा राधा नाम गाय रे!
नवीन वृन्दावने, तुलसी कानने
भ्रमरी राधा नाम गाय रे।
सेइ जे मधुर नाम, बाँशिते तुलिया तान
आपनी जे राधानाम गाय रे।
जे नामे नन्देर कानु सेजे छिलो मोहनवेणु
सेइ राधा राधा नाम गाय रे।
आजि मधु जागरण सुन सब नरगण
जय जय राधा नाम गाय रे।

प्राणदायिनी राधाका नाम श्रवण करते ही आँखें खुल गयीं। तरल हास्यसे मुख-मण्डल दीप्त हो गया।

स्कूलमें हों या घरपर, छुट्टी होते ही बन्धु-बान्धवोंके साथ गीतवाद्यकी मण्डली बाँधकर बैठ जाते। स्वयं यात्रा-गानकी रचना करते और प्रधानकी भूमिका भी अपने ही करते। दलके अन्यान्य पात्रोंको पार्ट अदा करनेकी ट्रेनिंग भी आप ही देते। कण्ठस्वर जैसा मधुर था वैसी ही थी संगीतमें दक्षता।

कविता बनाने और पाठ करनेका प्रबल शौक था। कविता बनाते समय नशा-सा छा जाता, खाना-पीनातक भूल जाते। रास्ता चलते समय सहपाठियोंके साथ कवितामें ही बातें करते। चतुर्थ श्रेणीमें पढ़ते समय 'देवयानी' नामक नाटककी रचना की थी और उसमें स्वयं अभिनय भी किया था। इस प्रकार कविता,

गान, नाटक दोहाकी कई पुस्तकोंकी विद्यार्थी-जीवनमें ही रचना की थी।

ऐसे काममें ही करामात थी उनकी। नाचने, गाने और महीनसे महीन कामके करनेमें पूरे उस्ताद थे।

जबसे पिताजी मैमनसिंह जिलामें मैनेजर होकर चले गये तबसे और बन गया। साथियोंके साथ घण्टों पद्मानदीमें स्नान होता रहता। तैरनेकी होड़ चलती, इसपार-उसपार एक कर दिया जाता। बालूका लड्डू बनाकर एक दूसरेको मारते या पद्माकी कीच लेकर मुँहपर लपेट देते। कभीं डुबकी मारे हुए जाते और अपर किनारेपर स्नान करनेवालेका पैर पकड़ लेते और जब वह विचारा घड़ियालके भयसे गिर जाता, लड़के ताली बजा-बजाकर हंसते रहते।

नये खेलकी रचना करते रहनेके कारण लड़कोंने इन्हें सरदार बना लिया था। तैरने, दौड़ने, चलने, पेड़पर चढ़ने या नवीन आनन्दप्रद खेलकी रचना करनेमें कोई इनसे पार न पाता था। चाँदनी रातमें जब तान अलापते, दो मीलतक स्वरध्वनि सुनी जाती। ऐसे सर्वगुणाधार परमानन्दघन सुन्दर मूर्त्तिको लड़के सरदार न मानें तो किसको मानें?

खेलमें रहें या काममें नाम अहर्निश होता ही रहता। कभी वह इतना तीव्र हो जाता कि आप अनमने हो जाते। उस समय उठकर एकान्त स्थानमें चले जाते। एक दिन एकान्तमें जाकर नाम-जप करने लगे। नामकी नशा जम रही थी। उस समय ज्ञात हुआ कि शरीर दो स्तरोंके बीच पड़ा है। एक दृश्य बाहरी घर-द्वारका था और अपर अन्तरमें दीख रहा था। भीतरी स्तर-से ताल-स्वरमें बँधी ध्वनि निकल रही थी। इस संगीतध्वनिसे नामका ताल कटने लगा।

वहाँसे उठकर बकुल पेड़के नीचे जा बैठे। नाम करनेकी मस्ती

आ रही थी। नशा रंग बांध रहा था। इसी समय बगलवाले पेड़के नीचे एक बालक आया और बैठकर बंशी बजाने लगा। बजाते-बजाते निकट आ पहुँचा और शरीरपर हाथ रख दिया। इसके उपरान्त फिसफिस बातें करने लगा। उसका आना वा बात करना अच्छा न लग रहा था। उसकी बातोंका उत्तर न देते। इसपर वह बालक अनुनयके स्वरमें बोला—"देख भाई, तुझसे मैं इतना प्रेम करता हूँ, और तू बोलतातक नहीं।'

उत्तर मिलता—'इस समय हटो तुम यहाँसे। मुझको नाम करने दो।' इतनेपर भी वह घनश्याम जाना न चाहता था। बार-बार उनके गौरमुखकी ओर देखता रहता। नाम-जपमें बाधा पड़ती। नामके नशामें विघ्न पड़ता। आजिज़ आकर ठेलते हुए बोलते 'जाओ भाई, इस समय तंग न करो।'

सहपाठियोंके साथ घर लौट आ रहे थे। हठात् आँधी वर्षाके साथ पत्थरका गिरना आरम्भ हुआ। सब साथी तो भागकर छिप गये, किन्तु स्लेट सरपर रखे अनुकूलचन्द्र बढ़ते ही गये। देहपर पत्थर आकर चोटपर चोट पहुंचा रहा है, फिर भी उधर भ्रूक्षेप नहीं। साथी पुकार रहे हैं, किन्तु उधर ध्यान नहीं। वह लो, वे तो बेतहाशा दौड़ते चले जा रहे हैं। सहपाठियोंने समझ लिया, आज इसकी खैर नहीं।

दौड़ते-दौड़ते पानीसे लबालब एक गड़हेके निकट हठात् पैर रुक गया। उसमें सफेद बाल और दाढ़ी सिर्फ नजर आती थी। शरीरका शेषांश पानीमें डूबा हुआ था। पत्थरकी चोटसे बेचैन होकर सफेद बालवाली मूर्त्ति चिल्ला उठी—अल्ला या अल्लाह!

उस करुण पुकारने हृदयको द्रवीभूत कर दिया। चिल्लाते हुए बोले—'मैं आ गया बाबा, अब कोई डर नहीं है। अभी सभी चोटका दर्द मिटा देता हूँ।' इतना कहते हुए हाथ बढ़ाकर उस जल-मग्न वृद्धको बाहर खींच लाये। बाहर आनेपर वृद्ध इधर-उधर
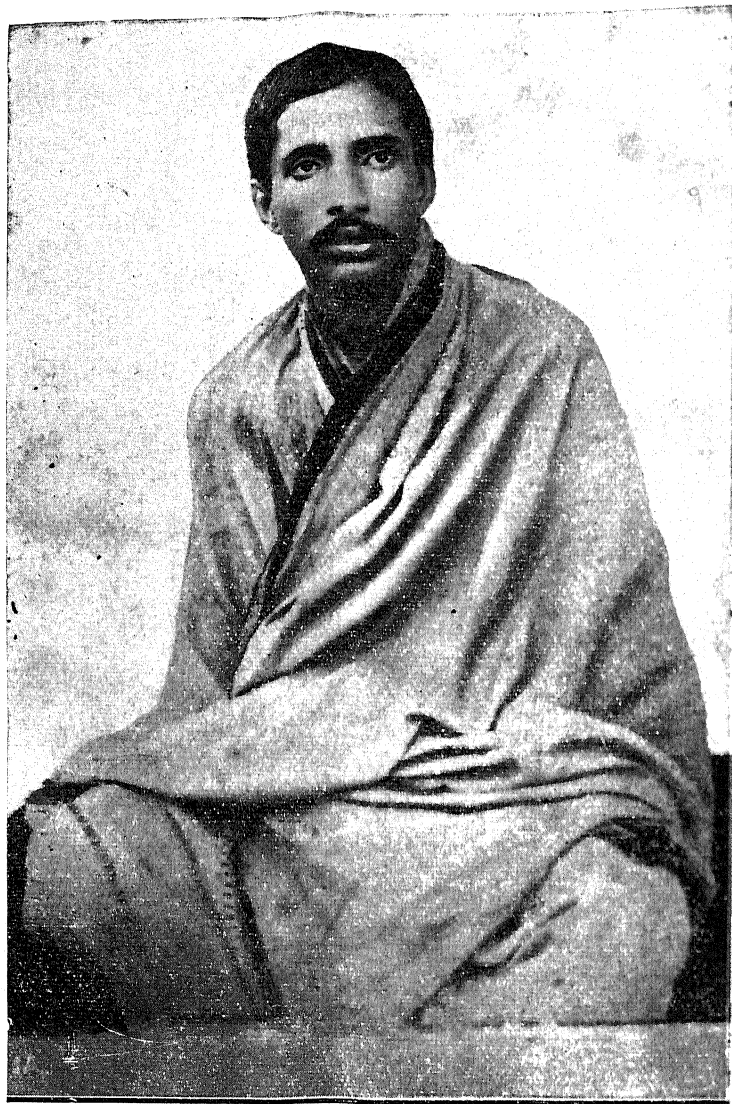
विद्यार्थी अवस्था में श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र
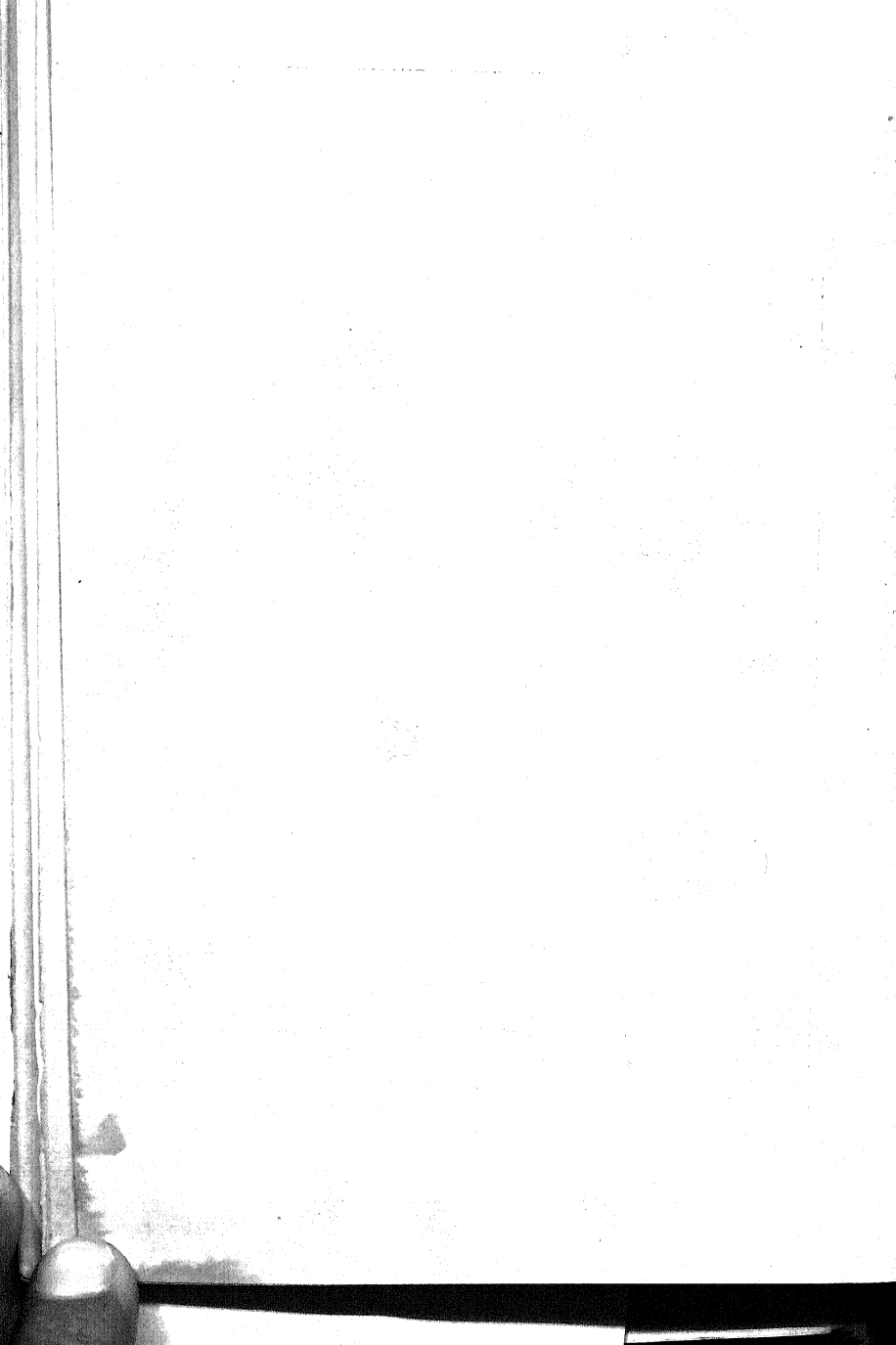
जब टटोलने लगा तब इन्होंने समझा कि वह अन्धा भी है। टटोलते हुए वृद्धने कहा—'तुम क्या मेरे अल्लाह हो ?'

अल्लाह हैं कि नहीं कौन जाने ? किन्तु जो अन्धड़-पत्थरमें भी किसी डूबते प्राणीके चीत्कार-स्वरको सुन सकता है और उसके स्पन्दनानुभूतिसे खिंचकर प्राण बचानेके निमित्त दौड़ सकता है उसको क्या कहेंगे ?

उस अन्धे फकीरका हाथ पकड़े हुए अनुकूलचन्द्र निकटस्थ ग्राममें गये। आग सुलगाकर तेल गरम किया और समस्त शरीरमें अपने हाथसे मालिश करते रहे। बहुत देरके बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ तब घरकी ओर चले।

घर पहुँचनेमें देर हो गयी थी। उनके सकुशल पहुंचनेका सम्वाद लेने जाकर सहपाठी समस्त इतिवृत्ति सुना चुके थे। माँ उद्विग्न होकर खोज-ढूँढ़ करनेको आदमी भेज रही थीं। इसी बीच भींगा कपड़ा पहने अनुकूलचन्द्र आ पहुंचे। रास्तेभर माँको यह शुभ सम्वाद सुनानेकी कल्पना करते आये थे। माँकी दृष्टि जो इनपर पड़ी तो जले अङ्गाराकी भाँति बरस पड़ीं। निर्म्मम मार सहन करना पड़ा उस दिन।

उस दिनके बाद आप सर्वदा नाममय बने रहते। नाम करते और बीच-बीचमें माँ-माँ कहकर चिल्ला उठते। उस दिन स्कूल जाते समय सर्च लाइटके समान लाल नीली ज्योति दीख पड़ी। उसीके साथ दीखने लगी प्रकाशकणा। आकाशसे पृथ्वीतक प्रकाश-कणाकी तरंग हिल्लोल ले रही है। वह कभी वृक्षका आकार धारण करती है तो कभी आदमीके रूपमें रूपायित होती है। उस ज्योति-तरंगसे रोम-रोममें महाआनन्द हिल्लोर लेती है। उतावलेकी भाँति उन ज्योतिकणिकाओंके बीच चतुर्दिक हाथ पसारे दौड़ने लगे। गाछ-वृक्ष, पशु-पक्षी, जीव-जगत उसी ज्योतिर्कणासे निर्मित ज्ञात होते। भीतर-बाहर सर्वत्र एक ही योग-सूत्र दीख पड़ता। अपना

शरीर भी उसी कणाका आगार मालूम पड़ता। स्वात्मबोधसे सबको हृदयमें लगानेके लिये दौड़ने लगते। इसी प्रकार विक्षिप्तकी भाँति एक वृक्षको छातीसे बाँधनेके लिये दौड़े जा रहे थे। आनन्द की पुलक-सिहरनसे मुखका रूप विचित्र हो गया। पेड़के निकट पहुंचते ही ठोकर लगी और आप मूर्छित होकर गिर गये। सह-पाठी तो इनकी विचित्र दशा देखकर पहले ही खिसक गये थे। भाग्यसे एक आदमी उधरसे आ रहा था। इनको बाह्यज्ञानशून्य अचेतन अवस्थामें पड़ा देखकर वह कन्धेपर उठाये घरतक पहुँचा गया।

लड़केके इस भावान्तरको देखकर मनमोहिनी देवी व्याकुल हो पड़ीं। किसीने कहा मृगी है, तो किसीने कहा भूतका आक्षेप है। माँको चिन्तित देख अनुकूलचन्द्रने कहा—'माँ, घबड़ानेकी बात नहीं। यह सब नामके कारण होता है। परमपिताकी कृपा होगी तो सब ठीक हो जायगा।'

मातृहृदय फिर भी नहीं मानता। बारबार ज्ञानशून्य अवस्थामें पड़ते देखकर सोचतीं—"इसे यह क्या हो गया है? मन्त्रजपमें क्या ऐसा भी होता है?"

स्वाती नक्षत्रका जल, पात्रविशेषे फल'

नाम क्या उन्होंने नया पाया है? भ्रूणावस्थामें शत नाड़ियोंमें जब आबद्ध थे उस समय भी अविरत नाम होता आया है। नाम ही अस्तित्व है, नाम ही जीवनपरिचय है उनका। वही मंत्र तो आज सन्तानके आकारमें मूर्त्त हुआ है।

प्रायः ही आजकल भावोन्मत्त दशामें रहते हैं अनुकूलचन्द्र। सरका बाल रुक्ष हो गया है। न तेल लगाते हैं, न कंघी फेरते हैं। जिधर देखते हैं देखते ही रह जाते हैं। न खानेका होश रहता है, न पहननेका। भोजन परोसकर सामने रखा है और वे निस्पन्द जड़ की भाँति बैठे हैं। थाली-ग्लास, साग-सब्जी-अन्नमें अपने आपको

ही देखते हैं। खायँ तो क्या खायँ ? कोई खानेका स्मरण दिलाता है तब खाना आरम्भ करते हैं।

अपने पाद-पद्मके अरुण वर्णपर आप ही मुग्ध हो जाते हैं और उनको प्रणाम करनेके लिये चरणोंको ललाटसे छुलाते हैं।

स्वात्मबोध अत्यधिक बढ़ गया है। कभी किसी पेड़को हृदय से लगाते हैं तो कभी किसी पुष्पका चुम्बन करते हैं। जो कोई मिलता है प्राणप्रिय ज्ञात होता है। कभी गलेसे लगाते हैं तो कभी लाल अधर पल्लवसे चुम्बनका आवर्षण करने लगते हैं। नाकसे चिबुकको रगड़ने लगते हैं। आनन्द केलि करने लगते हैं। कभी पीठ या गर्दनपर चढ़ जाते हैं तो कभी चढ़ा लेते हैं। उठा-पटक और खींचा-तानीसे समस्त दिशा मुखरित हो जाती है।

सब चीजको आत्मसात् करनेकी इच्छा होती है। किसीको अलग रहने देना नहीं चाहते। अपने रूपसे विछुरन न हो जाय इसकी चिन्तासे छातीमें सटाये रहते हैं। इसी भावमें विभोर होकर एक दिन माँको दाँतसे काट भी लिया था।

नशाखोरकी तरह हिलते-डोलते देखकर माँ सम्पूर्णतः निराश हो गयीं। इस उन्मादग्रस्त अवस्थाको देखकर कौन आशा बाँध सकता है ? कभी मूर्च्छाग्रस्त तो कभी विभोर। पढ़ने-लिखनेकी समस्त आशा छिन्न हो गयी। माँ कपाल पीटकर रह गयीं।

इसके कुछ दिन उपरान्त एक नया परिवर्त्तन आया। दिन-भर जल-विहार करने लगे अनुकूलचन्द्र। कभी इस पारसे उस पार जाना तो कभी डुबकी लगाये पद्माके अतल तलमें बैठ जाना।

त्रयोदश अध्याय

किन्तु ऐसे प्रतिभाशाली और होनहार किशोरको स्कूलका बन्द घर अच्छा नहीं लगता। जेलखाना-सा ज्ञात होता। उन्मुक्त आकाश और खुले मैदानमें रहना अच्छा लगता था। घरवालोंने भी मृगीका रोगी समझकर बाधा देना छोड़ दिया। माँ की तो समस्त आशा ही भंग हो गयी। इस निमित्त उन्होंने बाग ढीला कर दिया। जहाँ मन हो जाय—जो मनमें आवे करे। वह अपने दूसरे लड़कोंको आदमी बनानेमें लगीं।

घरवालोंने जो अनुशासन करना छोड़ दिया है इसका यह अर्थ तो नहीं कि लड़का खराब हो जाय। किन्तु हो रहा है यही। गाँव भरमें जो सबसे आवारा और खराब आदमी था उसीके साथ अन्तरंगता हो गयी।

यह देखकर हितैषियोंने मनमोहिनी देवीसे कहा—'देखती नहीं, किशोरी जैसे बदमाशके साथ गाढ़ी दोस्ती हो गयी है तुम्हारे सुपुत्रकी। रोको, सम्हालो, नहीं तो दो दिनमें खराब हो जायगा। सम्हाले न सम्हलेगा, बेहाथ हो जायगा।'

किशोरीमोहनके दुराचारसे गाँवका कौन अपरिचित था? दो-चार गाँवके लुच्चे-लफंगोंका सर्दार! ऐसे आवारे आदमीके साथ मेल होना हितैषी कैसे सहन करते?'

अन्तमें एक दिन डाँटती हुई माँ बोली—'अरे, तू उसके साथ इतना अधिक मेल-जोल क्यों रखता है?

'माँ, किसका पल्ला भारी है, इसी बातकी आजमाइश कर रहा हूँ।'

कुछ सोचकर माँ चुप रह गयीं। कुछ बोली नहीं।

अब भला बाग रुके? दौड़ते हुए पद्माकी तेज धारामें छपाकसे कूदते और निकलते जाकर सीधे किशोरीमोहनके घाटपर। उसके

बाद उठा-पटक करते-कराते दोनों पानीमें घुस जाते। घण्टो पानीमें तैरना चलता। जबतक तैरते-तैरते दोनों थक न जाते तबतक पद्मासे न निकलते।

स्नानके उपरान्त कथा-कहानी, आलाप-आलोचना चलती। प्रेम प्रगाढ़ हो गया। अब सब बातें खुलकर होने लगीं। हृदयोन्मुक्तता आ गयी। अपनी दुर्बलताकी बात खुलकर किशोरीमोहन बतलाने लगा। कहनेसे क्या दुर्बलताकी आँख-मिचौनीके हाथसे रिहाई मिलती ? बीच-बीचमें वह बेकल बना देती।

उसकी बेकलीकी बातको यह न समझते हों—ऐसी बात न थी। प्रवृत्ति और दुर्बलताके साथ युद्ध करना कितना कठिन होता है इसके वह भुक्त-भोगी थे। तीन वर्षतक युद्ध करना पड़ा था एक रसनाके साथ। इधर बेचारे किशोरीका तो सब कुछ खुला है। सम्भाव्यताकी ओर दृष्टि देने लगे अनुकूलचन्द्र। विशेष गुणका अन्वेषण करने लगे। चित्तकी रुझानपर नजर देना आरम्भ किया। किसी कर्ममें लगाये बिना प्रवृत्ति नियंत्रित नहीं हो सकती। किन्तु किशोरीमोहनको किस काममें लगाया जाय ? गान ! बहुत सुरीला गला है इसका। गाने-बजानेकी ओर रुझान भी है। इसके सिवा और कोई पथ नहीं। युक्ति या उपदेशसे प्रवृत्ति नियंत्रित नहीं हो सकती। इसको काममें लगाना पड़ेगा। किन्तु वह भी होना चाहिये रुचिके अनुसार। जिसमें रुचि न हो वह कर्म कितने दिनोंतक किया जा सकता है ?

कीर्तन ! बस कीर्तनमें किशोरीको पागल बनाना होगा। है भी वह पल्ले दर्जेका गवैया।

अब लगे गानकी रचना और सुर तालके ठीक करनेमें। इसके उपरान्त खोल कर्ताल आदिके जोगाड़में भी। सब ठीक-ठीक करके एक दिन कीर्तन करने किशोरीमोहनके यहाँ जा पहुंचे। इस बार आरम्भ हुआ ताण्डव कीर्तन ! बम बम बम बम हर हर बम बम-

का मन्त्र जाप आरम्भ हुआ। बम बमकी आवाजसे दिशा विदिशा ध्वनित होने लगी। मन, इन्द्रिय, प्राण बम बमके गर्जनसे काँप उठे। किशोरीमोहनका घर-आंगन थर-थर काँपने लगा।

खेत न जोता जाय तो क्या बीज पनप सकता है? जोत करनेके साथ-साथ यदि जंगली पौधोंके उखड़े हुए जड़-मूलको साफ न कर दिया जाय तो वे फसलके बीजको ही खा जायँगे। अनुकूल-चन्द्र क्षेत्रके जोताई और निकाई करनेमें लगे। मंत्र बना कर्षण करनेका यंत्र। कभी बम बम तो कभी राधे राधे कभी राम राम तो कभी कृष्ण कृष्ण। घण्टों मंत्र जाप होता। मुखमें बम बम बम बमके गर्जनके सम्मुख ढोलकी आवाज दब जाती। घरकी छत और दीवाल बम बम करती रहती। इस ताण्डव कीर्तनमें नर्तन करते-करते किशोरीमोहनका जन्मान्तर वा रूपान्तर हो गया। अन्तर-बाहरके उस बम बमकी बाम फूटती रहती। उस उन्मादना में वह दिन-रात बेसुध-सा रहने लगा। आँखें हरदम लाल सुर्ख रहतीं, मानों सैकड़ों चिलम गाँजा चढ़ाये हो। इस नशामें वह ग्राम-ग्राममें कीर्तनदलकी स्थापना करने लगा। मंत्रकी खुमारी मंत्र द्वारा ही मिटाने लगे। साथ ही अनुकूलचन्द्रका महीनोंका परिश्रम सार्थक हुआ।

आखिर कीर्तन-टीर्तनमें दिन कैसे चलेगा? कुलका सबसे बड़ा लड़का यदि न पढ़े तो कुलका सम्मान कैसे बचेगा? अन्नका उपाय कैसे होगा? यहाँ नहीं पढ़ सकता तब कहीं बाहर पढ़ानेकी तो व्यवस्था होनी चाहिये?

अन्तमें इन्हें हिमाईतपुरसे हटाकर अमीराबाद भेज दिया गया। वहाँ जानेपर डेरापर पढ़ानेके लिये मास्टर रखे गये। अनुकूलचन्द्रकी तीक्ष्ण आँखें मास्टर साहबको पढ़ने लगीं। मास्टर साहबमें न मालूम कौन-सी दुर्बलता थी जो संध्या होते ही उनको अनमना बना देती।पढ़ानेमें मन न लगता। उनकी इस करुण

अवस्थाको देखकर दया आ गई। अनुकूलचन्द्रने प्रार्थना आरम्भ की—'परम पिता, मास्टर साहबको रोग-मुक्त करो। इनका कष्ट हरण करो।'

मास्टर साहबको रोगसे बचानेकी चिन्तामें पड़े अनुकूलचन्द्र। संध्या होते ही मास्टर साहब बन-ठनकर नित्य रण्डी मुहल्लेकी ओर जाया करते। उनके पीछे-पीछे एक दिन आप भी लग गये। मास्टर साहबने फिरनेको लाख कहा, न फिरे। पीछे-पीछे रण्डी-पाड़ामें चले गये। इसके कारण पहुँचनेमें देर हो गई थी। उधर सब दर्वाजा बन्द! अन्तमें उन्हें निराश होकर फिरना पड़ा। शिष्यका मनोरथ पूर्ण हुआ। मास्टर साहब उद्विग्नभावसे लौटे। रास्तेभर डांटते-फटकारते आये। ऐसे मास्टरसे क्या पढ़ा जाय? पढ़ना-लिखना छोड़कर धमाचौकड़ीमें लगे।

अब क्या किया जाय? शेषमें नैहाटीमें प्रबन्ध किया गया। अनुकूलचन्द्र शशिभूषण चक्रवर्तीके साथ रहने लगे। वहाँ भी चुप कैसे बैठे रहें? जो मानव-कल्याणके लिये आया हो वह क्या स्थिर रह पाता है? जन-कल्याणमें लग पड़े। अनाथ-भण्डार स्थापित करने लगे भूखे, नंगे, रोगी और अनाथ व्यक्तियोंको अन्न-वस्त्रकी सहायता करने। इस सेवाव्रतमें कभी-कभी कुर्त्ता-कोट भी दान कर आते।

उस समय प्रवेशिकामें पढ़ रहे थे। स्कूली जीवनका शेष वर्ष समझकर माता-पिता नियमित रूपसे मनिआर्डर भेजते रहते। किन्तु इसी समय एक अभूतपूर्व घटना घटित हुई। एक गरीबका लड़का परीक्षा देनेके निमित्त सेन्टप् तो हो गया, किन्तु युनिवर्सिटी फीस न जुटा सका। फीस जमा करनेके दिन म्लान मुखसे सह-पाठियोंका मुख देख रहा था। निरुपाय विषण्ण आंखें करुणाकी शिक्षा माँग रही थीं। सब रहे उदासीन, किन्तु करुणा-वरूणालय अनुकूलचन्द्र हो गये विचलित। हृदय द्रवित हो गया। ऑफिसमें

गये और अपने फीसके रुपयेको उसके नामों जमा कर दिया। घरवालोंसे भी इस बातको छिपा दिया। परीक्षा पास करनेके उपरान्त जब वह मुसलमान सहपाठी सम्वाद देने आया तो आपके आनन्दकी सीमा न रही! छात्रके रूपमें आप परीक्षा पास तो न कर सके, किन्तु मानवीय गुण-प्रदर्शनकी परीक्षामें सम्पूर्णतः उत्तीर्ण हुए।

यही हैं हमारे अनुकूलचन्द्र! करुणापरिपूर्ण जिनके विशाल नयन सबको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं। अपरकी दुःख-वेदनाको देखकर जो बरस पड़ती हैं अहैतुकी करुणाकी अमृत निर्झरिणी फूट पड़ती है। जिनके निकट पहुँचकर व्यथित मानवप्राण आश्वासनका उच्छ्वास पाता है। जो देखता है गदगद हो जाता है। जिसकी आंखें उन आंखोंपर पड़ती हैं। वह विभोर दृष्टिसे देखता रह जाता है। आँखें हटाये नहीं हटतीं। ज्ञात होता है मानों वे अर्द्ध उन्मीलित आंखें किसी परिचित स्निग्ध-कारी सुदूर भूमिकी ओर लिये जा रही हैं। लिये जा रही हैं किसी ऐसे शांन्ति और आनन्दप्रदायक गिरिश्रृङ्गके ऊर्द्ध्वतम शिखरकी ओर जहांसे मलयानिलका शीतल मृदु झिर-झिर आ रहा है, और आकर समस्त मन-प्राण और इन्द्रियोंको एक अभूत-पूर्व स्वर्गीय तृप्तिमें स्नान करा रहा है। उससे उतरकर जब वे आंखें अपनी चकिततड़ित कटाक्षका निक्षेप करती हैं प्राणमें मधुमय सिहरण और उद्वेलन आरम्भ हो जाता है।

चतुर्दश अध्याय

चौथके चन्द्रमाको देखनेसे दर्शन करनेवालेको अकारण दोष और कलंकका भागी होना पड़ता है। इसलिये भाद्रमासके चौथके चन्द्रमाको हमारे देशमें कोई नहीं देखता। ज्ञात होता है भाद्रमास-के चतुर्थीके दिन चन्द्र गुरु-पत्निके हरण करनेके दोषसे कलंकित हुए थे, इसीसे उस दिनके चन्द्रमाको देखना निषिद्ध हो गया है।

गुरु-पत्निका हरण करना घोरतर अपराध है, अपराध ही नहीं पाप है। देवगुरु बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हरण करके वही पाप चन्द्रमाने किया था। यही नहीं ताराके उद्धार करनेके निमित्त जब देवताओंकी सहायतासे बृहस्पतिने चन्द्रमाके विरुद्ध, युद्धकी तैयारी आरम्भ की तो उसने दैत्यगुरु शुक्राचार्यको उभाड़कर देवकुलके विनाशका ही आयोजन किया।

देवासुर-संग्रामकी सम्भावना देखकर देवगण चिन्तित हुए और ब्रह्माके शरणापन्न हुए। ब्रह्माके न्याय करनेपर ताराको वापस करनेको चन्द्र बाध्य हुए। युद्ध तो बन्द हो गया, किन्तु चन्द्रमाका कलङ्क सर्वदाके लिये अमिट हो गया। गुरु-पत्निका हरण और कुल विनाश-योजना बनानेके पापसे सर्वदाके लिये अभिशप्त हो गये।

अनुकूलचन्द्रने कभी चौथके चाँदको देखा था या नहीं, नहीं कहा जा सकता, किन्तु उनके अच्छे कामके करनेमें भी बदनामी हो जाया करती थी। माँको जब प्रवेशिका परीक्षा न देनेका सम्वाद मिला तो जलकर अङ्गार बन गईं। पढ़ना-लिखना छुड़ाकर घर बैठा दिया। लांक्षणा, गञ्जनाकी शेष न रही।

घरपर बैठे-बैठे कहाँतक दिन-रात बात सहन की जाय? अनु-कूलचन्द्रने कीर्त्तन आरम्भ किया। किशोरीमोहनने जहाँ-जहाँ कीर्त्तन-मण्डली संस्थापित की थी, लगे वहाँ-वहाँ जाकर कीर्त्तनमें योग देने। उनके सम्मिलित होते ही कीर्त्तनमें नवीन जागृति आ

गयी। इस उन्मादनाको बढ़ाते रहनेके निमित्त आप चुपकेसे नया-नया गान-भजन बनाकर एक-एक मण्डलीको देने लगे। इस बातकी किसीको कानोकान खबर न होती। जो जहाँ जाता वहीं नवीनता की बहार देखता।

घरवाले और हितैषी अब क्या करें ? इस उच्छृङ्खल प्रकृतिको कैसे काबूमें लावें ? इस बार लौहबन्धनमें बाँधनेका आयोजन किया गया।

एक दिन कहींसे एक नौवर्षीया बालिका आपके घर आ पहुँची। आनेके साथ लगी घर-घरमें घुसकर देखने। कभी इस घरमें घुसती तो कभी उस घरमें। अनुकूलचन्द्रकी कोठरीमें आकर बड़ी-बड़ी आँखोंसे चतुर्दिक हेरने लग गयी ! ऐसा व्यावहार कर रही थी मानो कबका परिचित स्थान हो। उसके इस विचित्र दृष्टिसे देखनेपर अनुकूलचन्द्र हैरान थे।

कुछ देरके उपरान्त दो आसन बिछाये गये। खानेका आयोजन हुआ। बालिका चौकेमें पहुँचकर झटसे आसनपर बैठ गयी। इसके उपरान्त अनुकूलचन्द्रको भी बैठनेके लिए कहा गया। किन्तु वह साथमें बैठनेको राजी न हुए। लोंगोंने लाख कहा किन्तु न बैठे। अन्तमें एक स्त्रीने कहा अरे, यह तो तेरी बहू है, उसके साथ खानेमें लज्जा कैसी ?

इस बार लड़कीकी ओर विस्फारित नेत्रोंसे अनुकूलचन्द्रने देखा। बालिका निश्चिन्त चित्तसे गटागट खाती जा रही थी। उसका यह तरीका बिल्कुल ही अच्छा न लगा।

इसके दो महीने उपरान्त विवाहका दिन भी निश्चित हो गया। कृष्णा सुन्दरी नातीके विवाहकी तैयारी बड़े धूमधामसे करने लगीं। वरको मिठाईसे तौलवाया और पालकीपर चढ़ाकर मिठाईकी 'हरी-लूट' करती फिरीं। उस मिठाईको खाकर कई गाँवके लोगोंने अपना मुँह मीठा किया।

इस हरीलूटके प्रथम एक बहुत मजेदार घटना घटी थी। विवाहके दिन वर-वधू दोनोंको उपवास करना पड़ता है। तदनुसार अनुकूलचन्द्रको भी उपवास करना पड़ा। बारह बजेतक तो आप भूखे रहे, किन्तु उसके उपरान्त बेचैन हो उठे। ठीक उसी समय कृष्णासुन्दरी मिठाईसे तौल करनेके लिये बुलाने आयीं। इधर तो भूख लगी थी और उधर मिठाईसे तौलवानेके लिये जोर होने लगा। अनुकूलचन्द्र बरस पड़े। बोले–तुम तो मिठाई लुटाकर नाम लूटना चाहती हो, किन्तु इधर जिसको तौलोगी वह एक मिठाईके लिये तरस रहा है। यहाँ तो भूखसे जान जा रही है और तुम चली हो मजाक करने। हटो, मैं नहीं तौलाता अपने आपको।'

इतना कहकर मांके निकट पहुँचे। बोले—'माँ, बड़ी भूख लगी है। खाना दो।'

'यह क्या रे, विवाहके प्रथम कहीं खाया जाता है?'

'तो मैं नहीं विवाह करता, अब दो खाना।'—इतना कहकर भण्डारेके सामने चौकठपर जम गये।

विवाहोत्सवमें समागत हित-परिजन सभी दौड़े। समझाया-बुझाया, बहलानेका प्रयत्न किया। पर अनुकूलचन्द्र टससे मस न हुए। 'खाना न मिले, ऐसा विवाह मैं नहीं करता' साफ यही जवाब दे दिया।

अब क्या हो? अन्न दिया न जा सकता था। अन्तमें दही, आम और मिठाइयाँ मिलीं। भरपेट खा लेनेके उपरान्त तब तराजूपर बैठे। दूसरी ओर मिठाइयोंका अम्बारा लगा था। ओड़ेमें भर-भरकर मिठाइयाँ चढ़ाई जाने लगीं।

तदुपरान्त पालकीपर सवार हुए। आगे-पीछे विभिन्न प्रकारके बाजे बजते जा रहे थे। बगलमें चँवर डुलाया जा रहा था। पालकीके पीछेसे कृष्णासुन्दरी मिठाइयाँ लुटाती जा रही थीं। इस प्रकार

बड़े समारोहके साथ बारात रवाना हुई और यथासमय घोपादह निवासी रामगोपाल भट्टाचार्यके द्वारपर लगी। कन्या पक्षवालोंने यथोचित सम्मान और सत्कार किया।

गो-धूलिके शुभ लग्नमें अनुकूलचन्द्रने षोड़षी देवीका पाणिग्रहण किया। यह विवाह-संस्कार उन्नीस सौ छवके तेरह अगस्तके दिन सम्पन्न हुआ था। बारातमें अनुकूलचन्द्रके बन्धु-बान्धव और सहपाठियोंने भी योग दिया था। यथासमय धर्म-पत्निके साथ घर लौटे। 'बहू दिखाओ, बहू दिखाओ' कहती हुई पड़ोसियोंने घेर लिया। वे भी उन्हींके बीचसे पुकारने लगे—'ओ बहु, जरा इधर आना। ये सब तुमको देखना चाहती हैं।'

सुनकर कृष्णा-सुन्दरी जल उठीं। छीं, छीं, इसे तनिक लज्जा नहीं। सबके सामने बहु-बहु पुकार रहा है।

—'बहुको बहु न कहूँ तो क्या कहूँ?'

—'बड़ी-बूढ़ियोंका लिहाज नहीं। क्या कहेंगी रे निर्लज्ज तुझको!'

———

पंचदश अध्याय

नववधूका रूप-रंग अनुकूलचन्द्रके ही अनुरूप था। लक्ष्मी सदृश शील, स्वभाव और रूप देखकर ही विवाह किया गया था। पुत्रके उच्छृङ्खल मनको वशीभूत करनेकी दृष्टिसे माँने यह शृङ्खला बाँधी थी। किन्तु क्या वह सोनेकी बेड़ी उन्हें बाँधनेमें समर्थ हुई?

इतना होते हुए भी अनुकूलचन्द्रका कीर्त्तनमें जाना बन्द न हुआ। नित्य किशोरीमोहनके साथ कीर्त्तन करने निकल जाते। रातभर उन्मत्तकी तरह कीर्त्तन करते रहते। पुत्र-वधूको लेकर माँको सोना पड़ता। अब क्या किया जाय? कैसे होशमें लाया जाय?

वाग्बाणका प्रहार आरम्भ हुआ—"पढ़ना नहीं अच्छा लगता तो नौकरी करो, उपार्जन करो। अपना और अपनी स्त्रीके खाने-पीनेका प्रबन्ध करो। स्वप्न विलासमें पड़े रहनेसे अन्न तो जुटेगा नहीं, तुम्हारी स्त्रीका भरण-पोषण कौन करेगा? इसके बाद होंगे सन्तान-सन्तति, उनका बोझ कौन वहन करेगा? यह सब छोटे भाइयोंके गर्दनपर मढ़ना चाहते हो क्या? जो करना है स्वयं विचार कर करो।"

चतुर्दिकसे बाण-विद्ध होने लगे अनुकूलचन्द्र। अब क्या करें? कौन विद्या पढ़ें? किसकी सहायतासे पढ़ें? कहाँ जायँ?

अन्तमें उन्होंने डाक्टरी सीखना तै किया। किन्तु व्ययभार कौन उठावेगा? कहाँ रहकर पढ़ेंगे? पिताजी आगे आये। उन्होंने अपने एक दूर सम्पर्कीय आत्मीयको कुछ रुपया कर्ज दिया था। उसीको पकड़ा। उन्होंने रहनेका स्थान और दस रुपये मासिक देनेका वादा किया। उनके भरोसेपर अनुकूलचन्द्र डाक्टरी पढ़नेके निमित्त कलकत्ता चले।

नैहाटीसे बिछावन-पत्र लेकर एक दिन कलकत्ता महानगरीमें

जा पहुँचे। गगनचुम्बी अट्टालिकायें दीपमालिकासे जगमग कर रही हैं। स्थान-स्थानपर भव्य-भवन और रमणीक क्रीड़ास्थल बने हुए हैं। अलकापुरीसे स्पर्धा करनेवाली इस महानगरीमें आपको कहीं स्थान न मिला। बहुत दौड़धूप करनेके उपरान्त स्थान मिला भी तो कोयलेके गुदामके एक कोनामें। इस बार आरम्भ हुआ घोर दरिद्रता और कष्टके साथ कठिन संग्राम।

दूसरे दिन ग्रे स्ट्रीट स्थित निवासस्थलसे नैशनल मेडिकल स्कूलमें नाम लिखाने गये। प्रिन्सिपलने पूछा—'कहाँतक पढ़े हो ?' 'एन्ट्रेन्सकी सब तैयारी कर ली है, किन्तु अबतक परीक्षा दे नहीं पाया।' किन्तु बिना ऐन्ट्रेन्स पास किये मेरे यहाँ भर्त्ती नहीं की जाती।'—व्यवस्थापकने इन्कार कर दिया।

ना सुनकर चेहरा स्याह हो गया उनका। बुतकी तरह खड़े रहे। माँने निराश होकर मुख ही फेर लिया है। पिताजीने किस कठिनाईसे रेलभाड़ाका प्रबन्ध किया था वह ज्ञात ही है। आते समय कितने कष्टके साथ बिदा किया था उन्होंने। पिता-माताका वही विषण्ण मुख आँखोंके सामने नाँचने लगा। उन मुखोंपर प्रसन्नताकी रेखा उत्पन्न करनेके निमित्त ही प्रवास-जीवन यापन करनेके लिये चला हूँ। वह मुख स्मरण होते ही हिम्मत बाँधकर बोले—"सर, मैं एन्ट्रेन्सका समस्त कोर्स समाप्त करके तैयार बैठा हूँ, केवल परीक्षा देनी रह गई है।" 'तुम तो यह कहते हो, किन्तु इस बातको मैं कैसे मान लूँ ?' परीक्षामें पास करना स्कूलका नियम हो तो मेरी परीक्षा लें। उसमें यदि उपयुक्त प्रमाणित होऊँ तो आपको भर्त्ती करनेका अधिकार है। कृपया परीक्षामें बैठनेकी मुझे अनुमति प्रदान करें।'

एडमिशन-टेस्टमें बैठनेकी अनुमति व्यवस्थापकने दे दी। कठिनसे कठिन प्रश्न पूछे गये। उसमें पूरे नम्बरके साथ सफल हुए, तब जाकर डाक्टरी पढ़ने लगे। अब प्रारम्भ हुआ नित्य बारह

मीलका पदव्रज। सुबह ही डेरेसे निकलते। ग्रे स्ट्रीटसे बहूबाजार और वहांसे मुरारी पूकर स्ट्रीट जाना-आना पड़ता। बारह मील-का आना-जाना। सबेरे न निकलें तो क्या करें? ट्राम सामनेसे ही निकल जाती, किन्तु पैसेके अभावमें पैर घसीटते जाना पड़ता।

मध्याह्न बीतनेके उपरान्त श्रान्त-क्लान्त अवस्थामें कोयलेके गुदाममें लौटते। हाथ-मुंह धोकर जब खाने बैठते तो नितान्त उपेक्षापूर्वक मोटे चावलका भात और पानी-सी दाल खानेको मिलती।

चौबीस घण्टे जहां कोयलेका गर्दा उड़ता हो वहां कपड़ा कैसे साफ रहे? इससे कभी कपड़ा साफ न रह पाता। कपड़ेमें सामान्य उँगलीकी ठोकर लग जाय तो उससे धूलिकण उड़ने लगते। साबुन नहीं कि कपड़ा साफ करें। इसके पीछे एक दिन क्लाससे निकाल भी दिये गये थे। किन्तु आपने प्रभुकी देन समझकर सब सहन कर लिया। उसी समयसे आपने अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया—'सब अवस्थाके लिये राजी रहो, दुःख तुम्हारा क्या करेगा?'

मासिक खर्चका वह दस रुपया भी क्या महीने-महीने मिल पाता? उस समय चलता एकाधिक्रमसे उपवासपर उपवास। घरवाले चिन्तनामें पड़ेंगे इससे घरपर सम्वाद भी न दे सकते। एक तो माँ यों ही मन फेरे बैठी थीं उनकी ओरसे, उसपर उनके हितैषीगण भी वैसे ही मिल गये थे। वे सर्वदा समझाते रहते—'खबरदार, उसके हाथमें अधिक रुपया न जाने पावे। बहुत प्रलोभनका स्थान है कलकत्ता, लड़का खराब हो जायगा।'

उस बार मेडिकल-बुक खरीदनेके पीछे जो अभिज्ञता प्राप्त हुई उसके बाद क्या पत्र दिया जा सकता था? एक डाक्टरीकी किताब खरीदनेपर प्रोफेसर जोर देने लगे। उस किताबका दाम

बारह रुपया था। लाचारी, घरपर पत्र भेजना पड़ा। हितैषियोंने जब बारह रुपया एक किताबका दाम सुना तो गम्भीर मुखसे बोले—'बाप रे, गोली-चूर्णका किताबका दाम कहीं बारह रुपया होता है? काशीरामका मोटा रामायण और गीताका दाम तो तीन ही रुपये हैं और बाबू साहबके फंकी मलहमकी एक किताबका दाम बारह रुपया! असम्भव, इस धोखामें मत पड़ो बहू।'

अन्तमें उन्हींके परामर्शानुसार वही तीन रुपयेका मनीआर्डर आया।

आत्मीय जब रुपया न दे पाते उस समय चलता उपवासपर उपवास। उसके अतिरिक्त पथ ही क्या था? कई दिनतक सतत उपवास करनेके कारण एक बार पेटमें असह्य यन्त्रणा आरम्भ हुई। यन्त्रणासे छटपट करते देख एक सहपाठीको दया आ गयी। वह दौड़ा-दौड़ा गया और एक अधेलेका 'सोडाबाइकार्ब' नामक औषधि खरीद लाया। उसीसे यन्त्रणा प्रशमित हुई।

उनकी दयनीय अवस्थाको देखकर उसीने एक बक्स दवा और होमियोपैथिककी एक पुस्तकका भी जोगाड़ कर दिया। एलो-पैथीके छात्र होकर भी आपने उस पुस्तक और औषधिके सहारे होमियोपैथिककी दवा करनी आरम्भ कर दी। कुली, मजदूर और गरीबोंके डाक्टर बन गये अनुकूलचन्द्र। इनकी सहायतासे कुछ-कुछ पैसे भी मिलने लगे। बदलेमें आप कभी उनसे पैसा न मांगते थे। दवा मुफ्त ही वितरण करते। कुलीगण स्वेच्छापूर्वक जो कुछ देते उसीसे काम चलने लगा। उनके त्याग और चारित्रिक गुणपर मुग्ध होकर कभी-कभी तो वे गमछा-धोती भी दिया करते थे।

छुट्टीके दिनोंमें घर जाना किसके लिये आनन्दप्रद नहीं होता? अनुकूलचन्द्रके निमित्त यह छुट्टी तो और विशेष आनन्द-प्रद थी। कारण आत्मीय स्वजनसे मिलनेके अतिरिक्त आपके लिये छुट्टी सामयिक दरिद्रता और नित्यके परिश्रमसे बचनेका

कारण बनकर आती। किन्तु दो दिनका विश्राम करना भी नसीब-में न था। घर पहुँचे कि हितैषियोंके कान खड़े हुए। 'विद्यार्थीका घरपर रहना अच्छा नहीं', 'स्त्रीसंस्पर्श होनेपर विद्या नहीं आती' आदि उपदेश आरम्भ हो जाता। उनकी बातोंमें आकर माँ भी पीछे पड़ जातीं। अनुकूलचन्द्र अपना कष्ट कहें तो किससे ?

इस कष्टमें बस एक ही सहारा था, वह था नामका। कलकत्ता प्रवासकालमें एक नामके बलपर ही वे अपना जीवनयापन करते। गमनागमनकाल नामद्वारा पूर्ण होता। सतत नामजप चलता रहता। इसके परिणामस्वरूप उनके मुखका स्वाभाविक सौन्दर्य और उस परकी स्वाभाविक प्रशान्ति कभी मलिन न हो पाती। तिसपर आत्ममर्यादाबोध और कष्टसहिष्णुताने उसे चारु-कार्य-मण्डित अपूर्व द्युतिमान बना दिया था। उनके मुख-मण्डलसे निष्कलंकता और सरलताका प्रकाश सर्वदा निकलता रहता।

कलकत्तामें भी उन्मुक्त वातावरणका उपभोग करना आप न भूलते। तनिक अवसर मिलते ही भगवती भागीरथीके किनारे चले जाते और बैठकर जलधाराकी कलकल ध्वनि और सूर्यास्तके रमणीय दृश्यका दर्शन करनेमें विभोर हो जाते। सकल कलुषभंगिनी गंगाका उपकूल छोड़ ही कैसे सकते हैं ? एकान्त और पुनीत स्थान न हो तो भगवद् चिन्तन कैसे हो ? नामजपके विषयमें जितना कम आदमी जान सकें उतना ही अच्छा होता है। इसलिये पाप-पुरी कलकत्ताको छोड़कर आप गंगाके किनारे चले जाते।

उद्भिन्न यौवनकी कमनीय कान्ति सर्वांगमें विराजित थी। अन्तर्माधुर्यसे रूप श्री-मण्डित था। निष्पाप और सरलताके प्रतीक थे आप। सहपाठियोंने सन्देह करना आरम्भ किया। पंचसरकी संघात वेदना क्या इसमें किसी प्रकारकी चंचलता सृष्टि नहीं करती ? क्या अपने वयःसन्धिकालके सम्बन्धमें यह पूर्णतः अचेतन है ? आसंग लिप्साके कोई भी लक्षण तो इसमें नहीं दीख पड़ते।

नारी-सम्बन्धी स्वाभाविक उदासीनता, प्रवृत्तिका सहज संयमन हो सकता है, इस बातको डाक्टरीके विद्यार्थी कैसे माने ! एक दिन जाँच करनेका निश्चय किया गया ।

गंगा किनारे जाते समय साथियोंने पकड़ा । चलो, आज जरा शहरकी परिक्रमा की जाय—की प्रार्थना करने लगे । सबकी प्रार्थना और अनुरोधको कहाँतक टालते ? राजी हो गये । घूमते-फिरते टेढ़ी-मेढ़ी गलियोंके रास्ते सब जा रहे थे । आपने पूछा—'अरे भाई, हमलोग जा कहां रहे हैं ?' इसपर साथियोंने उत्तर दिया—'चलो, आज जरा घुमते-फिरते डेरेपर लौटा जायगा ।'

गली-कूचोंको पार करते अन्तमें लोग चितपुर रोड स्थित एक दुमंजिले मकानके सामने पहुँचे । वहां पहुँचकर और लोग तो ऊपर चढ़ने लगे, किन्तु अनुकूलचन्द्र रहे स्थिर अडोल । सबने आपको भी आनेको पुकारा । आपने साफ ना कह दिया । इसपर तो पकड़कर खींचते-खींचते ऊपर ले गये । छज्जेपर पहुंचा देनेके उपरान्त पलभरमें सब लापता हो गये ।

ऊपर छज्जेपर सजे-सजाये वेशमें वारवनिताएँ खड़ी थीं । उनमेंसे एक असंवृत वेशभूषामें हास्य-लास्य विस्तार करती इनकी ओर बढ़ी ।

अब क्या करें अनुकूलचन्द्र ? उनके लिये तो स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु थीं । जननीवत् थीं सभी स्त्रियां । हठात् मातृमूर्त्ति आंखोंके सन्मुख आ विराजित हुई । उसको देखते ही सरल शिशुवत् हो गये ।

मातृ-मूर्त्तिका ऐसा बीभत्स रूप कभी न देखा था । शिशु-कण्ठसे आर्त्त-चीत्कार निकलनें लगा—'माँ, तेरी सन्तानका सर्वनाश हो जायगा । मां ! मां होकर अपनें बच्चेकी अधोगति देखेगी मां ?'

मां मांकी करुण पुकारसे सारा घर भर गया । छज्जे, दीवालसे

मां, मांकी प्रतिध्वनि निकलने लगी। ऐसा मधुर मातृ-सम्बोधन कभी उसने जीवनमें सुना न था। उस मातृ-सम्बोधनसे रमणीका हृदय वात्सल्य-रससे ओत-प्रोत हो गया। सुषुप्त मातृभाव जग पड़ा, आँखों से आँसू गिरने लगे उसके। आत्म-तिरस्कारसे मर्माहत हो पड़ी। रोती हुई अनुकूलचन्द्रके चरणोंमें लुढ़क गयी और बोली—"मैं पतिता हूँ, पापिष्ठा हूँ, मुझको क्षमा करें।" इतना कहकर वह बिलख पड़ी।

"पाप किया है तो इससे क्या? पापसे जबतक प्रेम था उसने पाप कराया। अब पापनाशनमें प्रेमको लगा दो। पतितपावनके प्रति प्रेम घुमा दो, निष्पाप बन जाओगी। सब खेल तो इस प्रेमका है। यह जिधर मुड़ेगा वैसा ही कर्म होगा। अबतक इसको पापका अनुरक्त बना रखा था, अब पुण्यकी ओर लगा दो। शुद्ध बुद्ध और पवित्र बन जाओगी।"

अनुकूलचन्द्रकी निष्कलुष मूर्त्तिको देख और शिशुवत् मातृ-सम्बोधनका स्वर सुनकर उसमें अन्तर्निहित मातृभाव जग पड़ा था। फलत: वह उनके साथ सन्तानवत् व्यवहार करने लगीं। खानेका अनुरोध किया। किन्तु उन्होंने अस्वीकारकर दिया। इस-पर नित्य एक बार दर्शन देनेका अनुरोध करने लगी।

इसके उत्तरमें अनुकूलचन्द्रने कहा—'तेरे पेटकी यदि अपनी सन्तान रहती तो क्या उसको इस पापपुरीमें कभी आनेको कहती माँ?'

माँ, माँ के बारबारकी पुकारमें न मालूम कौन-सी शक्ति थी जिसने उस वेश्यामें आमूल परिवर्त्तन ला दिया। अपना सर्वस्व रामकृष्णा मिशनमें दानकर वह वृन्दावनकी ओर चली गयी।

मातृमन्त्रके जापकने कलुषमूर्त्तिके अन्तरमें मातृत्वकी पवित्र वह्नि जला दी!

षोड़श अध्याय

नाना प्रकारकी आर्थिक कठिनाइयोंके रहते भी चिकित्सा-शास्त्रके सब विषयोंमें अनुकूलचन्द्र पास करनेमें समर्थ हुए। डाक्टरी पास करनेके उपरान्त सीधे घर आये और पिता-माताके श्रीचरणोंका रज शीशपर धारण किया।

साथमें कतिपय एलोपैथिक पुस्तक और होमियोपैथिक औषधि-के उस छोटे बक्सके अतिरिक्त दूसरा कोई सम्बल न था। छुट्टीके दिनोंमें जब कभी आते, यह दवाका बक्स साथ जरूर रहता। उस समय भी ग्रामके किसी व्यक्तिके विशेष आग्रहपर औषधि प्रदान करते। इस कारण उनके औषधिके चमत्कारका अनुभव ग्रामके कुछ आदमियोंको हो चुका था। उन लोगोंने ग्राममें चिकित्सा करनेका अनुरोध करना आरम्भ किया।

डाक्टरी आरम्भ करनेके निमित्त औषधि और यन्त्रादिकी आवश्यकता होती है। कुर्सी, टेबुल, आलमारी भी चाहिए इसके साथ। इसके चिन्तनमें लोग पड़े। किन्तु भगवान् कुछ और ही व्यवस्थामें लगे थे।

उसी ग्राममें एक बहुत बड़ा वैश्य परिवार था। व्यवसायसे बड़ी आमदनी थी। रुपये-पैसेका कोई अभाव न था। बड़ा परिवार होनेके कारण एक न एक आदमी बीमार पड़ा ही रहता। इसके पीछे प्रत्येक महीने उसे मोटा अर्थव्यय करना पड़ता था। उसने औषधि और डिसपेन्सरी संबंधी सब सामान मँगाकर अपने घरमें दवाखाना खोलनेकी योजना बनायी। उन सब चीजोंके मालिक रहेंगे अनुकूलचन्द्र, बदलेमें सिर्फ परिवारवालोंकी रोग-परीक्षा बिना मूल्य वे किया करेंगे। उसने मनमोहिनी देवीके सम्मुख यह प्रस्ताव रखा। तत्क्षण स्वीकृति भी मिल गयी। उसने डाक्टर

साहबके लिस्टके अनुसार सब कुछ मँगवाकर डिस्पेन्सरी सजा दी। अनुकूलचन्द्रने वहींसे डाक्टरी आरम्भ कर दी।

दो एक दिनके भीतर ही ग्रामवालोंकी दयनीय दशा आँखोंके सामने प्रकटित हो गयी। अशिक्षा, कुशिक्षा और बद अभ्यासवश ग्रामवासी नाना प्रकारके रोगोंसे आक्रान्त थे। दवा दे भी दी जाय तो समयपर औषधि दे न पाते थे ठीक समय पर रोगके सम्बन्धमें समाचार भी न देते थे। अधिकांश ग्रामीणोंमें औषधि खरीदनेका सामर्थ्य न था। इन मूर्ख, दरिद्र, रुग्ण ग्रामवासियोंका बोझ कौन उठावेगा ? किसपर छोड़ा जाय इन सम्बलहीन ग्रामवासियोंको। जब यही न बचेंगे तो मेरे बचनेसे क्या लाभ ? इन बातोंकी चिन्तनामें पड़े। सोच-समझकर उनको रोग-मुक्त करनेका संकल्प कर लिया उन्होंने।

तरुण वयस, नयी उमंग और उत्साहके साथ शारीरिक रोग-मुक्तिके युद्धमें पिल पड़े।

डाक्टरी करें या कुछ भी करें मन्त्रजप कभी विस्मृत न होता। एक पलके लिए भी वह नहीं भूल पाता। जो जन्म-जन्मान्तरसे होता आया है वह क्या भूला जा सकता है ? जिस मन्त्रको जप करते हुए मातृ-गर्भमें प्रवेश किया हो और शत नाड़ियोंके बन्धनोंमें रहते मातृ-गर्भमें जिसका जप किया हो वह क्या कभी विस्मृत हो सकता है ?

जप-ध्यानके उपरान्त जब किसी रोगीकी शारीरिक परीक्षा करने बैठते तो उसके हृत्पिण्डसे नामध्वनि निकलती रहती, नाड़ीसे नामका स्पन्दन निकलता रहता और समस्त शरीर ज्योतिर्कणासे परिपूर्ण ज्ञात होता। उसके श्रवण-दर्शनमें जो छन्दबद्धता रहती उसके देखने-सुननेमें वे तन्मय हो जाते। स्वयमेव हाथ रोगीके सरके बालपर फिरने लगता,हाथके फिरते ही रोगीके शरीरमें एक विद्युत

स्पन्दन शक्ति-सी प्रवेश करती। उस शक्तिसे रोगीमें नया बल, नया प्राण आ जाता।

इस नामजपका उत्ताप अत्यधिक बढ़ गया। आँखें सर्वदा सुर्ख बनी रहतीं आपकी। थर्मामीटर लगानेके निमित्त जब हाथमें लेते, पारा एक सौ दस डिग्रीपर चढ़ जाता। शरीरपर जल डालनेपर वह भाप बनकर उड़ जाता।

औषधि देते समय कभी-कभी ज्ञात होता कोई प्रत्यादेशसे औषधिका नाम बतला रहा है। उसके अनुसार औषधि देनेपर फल अमोघ होता। इसके साथ ही यह भी ज्ञात होता मानो कोई मन, बुद्धि और सर्वांगको अपने वशमें रखकर संचालित कर रहा है। रोगी शीघ्रातिशीघ्र अच्छे होने लगे। परमात्मा क्या सत्यसंकल्पको व्यर्थ जाने देते हैं ?

सर्वत्र नाम फैला। बुलाहट बढ़ती गयी। कॉलपर कॉल आने लगे। आमदनी भी बढ़ती गयी। अर्थाभावका कष्ट विदूरित हो गया।

लोग कहने लगे—दवा नहीं, जादू है जादू! दवा दिया नहीं कि रोग छूमन्तर। मरे आदमीको जिला सकते हैं, क्षणभरमें व्यथा-वेदना दूर कर सकते हैं। औषधियाँ नहीं, आबेहयात हैं, अमृत है! सिद्ध औषधियाँ हैं।

सौ रोगी मारनेके ऊपरान्त डाक्टर होता है—ऐसा एक प्रवाद है। किन्तु आपकी चिकित्सामें यह प्रवाद असत्य प्रमाणित हुआ। आपके हाथमें आकर एक भी रोगी न मरा। जो जीवन और अमृत-पथका ज्ञाता हो उसके हाथों आदमी कैसे मरे ? नामामृत पान करनेवालेके सम्मुख काल कैसे आवे ? इसका परिणाम यह हुआ कि चतुर्दिक यह फैलने लगा कि आपकी दवा महज दिखावा है। सब कुछ उनकी कृपापर निर्भर करता है।

किन्तु इधर डाक्टर अनुकूलचन्द्र नाममें ऐसे विभोर हो जाते

कि उन्हें तन-बदनकी सुध न रहती। रोगीको देखकर दवा देनेके लिए आदमीको साथ ला रहे हैं, इसी बीच नामका नशा चढ़ गया। उस नशामें अलमस्त चले जा रहे हैं। घर पहुंच जानेपर भी वही आवेश। रोगीको दवा देनी है या साथमें आदमी आया है सब बातें विस्मृत हो गयीं। स्मरण दिलानेपर होश तो होता, किन्तु रोगी और उसके रोगके सम्बन्धमें कुछ भी याद नहीं। सब कुछ भूले बैठे हैं। तब दवा क्या दें ? उधर औषधि ले जानेवालेसे पूछना उचित नहीं। अब क्या करें ? उस समय सुर्ख आंखें आकाशकी ओर उठ जातीं। इसीके साथ-साथ उँगलियाँ किसी औषधिपर जा पड़तीं। जो शीशी हाथके नीचे आती उसीसे ढालकर दे देते।

शारीरिक उत्ताप बढ़नेके साथ-साथ स्पर्शानुभूति भी अत्यधिक बढ़ गयी, इसीके साथ-साथ बढ़ गयी श्रवण और दर्शनशक्ति। दृष्टिशक्तिके बढ़ जानेसे सुदूरमें संगठित होनेवाली घटना दीख पड़ने लगी। सूक्ष्मतर श्रवणशक्तिके बढ़ जानेके कारण पशु-पक्षी, पुष्प-लतादिके अन्तरसे निकलनेवाले शब्द भी सुनाई पड़ने लगे। सामने कोई पेड़का डाल तोड़े तो भयानक कष्टका अनुभव करते। वृक्षकी व्यथासे प्राण व्यथित हो जाता। वृक्षादिके जड़ शरीरसे जो व्यथापूर्ण क्रन्दनध्वनि निकलती उसको आप सुन पाते। उससे उनका समस्त शरीर व्यथित होकर सिकुड़सा जाता। मुखपर वेदनाका भाव स्पष्ट परिलक्षित होता। इससे पुष्पके तोड़नेके बदले उसका आलिंगन करते। पुष्प-सौरभके आनन्दका उपभोग तो करते, किन्तु कभी उसको तोड़ते नहीं।

धीरे-धीरे चक्षु स्थिर, निश्चल होता गया। आँखें उन्मीलित हो गयीं। आँखकी तारिका शीशा सदृश बन गयी। आँखें प्रस्तर-वत् हो गयीं। दृष्टि निष्पलक हो गयी।

एक दिन पावनासे आते समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। हवाके तीव्र झोंकेमें एक डेग चलना असम्भव हो गया। चतुर्दिक

देखा कहीं शरण लेनेका स्थान नहीं। अगत्या वृक्षके नीचे जा खड़े हुए। इसी बीच अन्धड़से मारा एक बाज पक्षी हाँफता हुआ उनके कन्धेपर आ बैठा। साँस फूलनेकी स्पर्शानुभूतिके साथ-साथ अनुकूलचन्द्रका समस्त शरीर बन गया निश्चल, अडोल। स्कन्ध पत्थर के समान तनकर रह गया। स्नेह और ममताके उस शिलास्कन्धपर मांसभक्षी पक्षी निश्चिन्त विश्राम करता रहा। कुछ देरतक उस अविचल स्कन्धपर विश्राम करनेके उपरान्त वह उड़ गया।

वह जब उड़ा तब आपके अन्तरका अवरुद्ध श्वास बहिर्गत हुआ। वेदना-मुक्तिका आह्लाद मुखमण्डलपर फूट पड़ा। उसके बाद घरकी ओर पैर बढ़ सके। प्राणका ऐसा एकात्मबोधभाव क्या कहीं देखा है? ऋषियोंके आश्रममें बाघ-हिरण सप्रेम विचरण किया करते थे—ऐसा वर्णन सुननेमें आता है। उसी प्रकार अनुकूलचन्द्रके रूपको देखते ही मांस-भोजी पशु-पक्षीगण शान्ति और सान्त्वनाका निरापद स्थल पाते थे। तृष्णामें जलप्राप्ति, दुःख-वेदनामें शान्तिका प्रलेप प्राप्तिका आशा-स्थल समझते थे।

जहाँ पशु-पक्षीकी यह अवस्था हो वहाँ रोगी यदि उस करुणायन तरुण डाक्टरके हाथका परस पाकर शान्ति पाता हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? वे दवा देनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री नहीं समझते थे। आपके सम्पर्कमें मातृहृदयका ममत्वपूर्ण स्नेह परस पाता था रोगी। कभी उसके सरको गोदमें रखकर दबाते तो कभी मीठे वचनोंसे सान्त्वना प्रदान करते। जबतक रोगीको नींद न आती उसकी सेवामें रत रहते। पथ्यादिको अपने हाथों खिलाकर तब उठते।

किन्तु इनके अतिरिक्त भी तो और डाक्टर थे वहाँ। वे कहाँ तक सहन करते? उनके पास डिप्लोमा और अभिज्ञता थी। उन सब चीजोंको छोड़कर तमाम जनता एक छोकरेके पीछे पड़ गयी हो तो वह क्यों न रंज हों? कलतक जिसको खानेके लाले थे, एक

बित्ता रहनेकी जगह न थी, ननिहाल ही जिसका आश्रयस्थल था उन्हींके पीछे सभी पागल हैं। उसके चरणोंपर रुपया उझल रहे हैं? ईर्ष्यासे जलने लगे।

डाक्टरोंने नाना प्रकारकी निन्दा और अपवाद करना आरम्भ किया। 'कलका छोकरा है, डाक्टरी क्या जाने? डाक्टरी पास भी नहीं है वह। नीम हकीम है, नीम हकीम।'—आदि विभिन्न बातें कहकर बदनामी करने लगे।

अनुकूलचन्द्रके कानोंतक भी वे बातें पहुंचीं। किन्तु उसका प्रभाव उनपर दूसरे प्रकारका पड़ा। उनकी आँखोंने डाक्टरोंके रोगको देखना आरम्भ किया। जिन लोगोंने जनता और समाजको रोगमुक्त करनेका कार्यभार अपने हाथोंमें लिया हो और जिनको सारे समाज और सरकारने राष्ट्रीय स्वास्थ्यरक्षाका कार्यभार समर्पित किया हो उन सन्माननीय डाक्टरोंको रोगी देखकर आपकी आत्मा चीख पड़ी। हाय रे, जहाँके डाक्टर ही ईर्ष्याके शिकार हैं वे ईर्ष्याग्रस्त रोगियोंका इलाज कैसे करेंगे? इन सब बातोंको सोचकर आपने उनके अन्तर्निहित ईर्ष्या रोगको दूर करनेके लिये प्रशंसा करना आरम्भ किया। सर्वात्मबोध रखनेवाला निन्दा किसकी करे? प्रशंसा करके ही आपने सद्गुणको जागरित करना चाहा। सम्वाद देने जो ही आता उससे कहते—'ना भाई, तुमसे सुननेमें गलती हुई है। वे इतने बड़े और होशियार डाक्टर हैं। उनके समान भले आदमी यहाँ बहुत ही कम हैं। उनके मुँहसे ऐसी बात निकलेगी, यह मैं मान ही नहीं सकता।'

यही उनकी विजयप्राप्तिका अस्त्र है। निन्दाकी प्रशंसा द्वारा, उपेक्षाकी प्रेम द्वारा जय करते हैं आप।

डाक्टरोंकी निन्दाका प्रभाव जनतापर कुछ भी न पड़ा। बल्कि उन्हींके सामने लोग प्रतिवाद भी करने लगे। वे भी करें तो क्या? अनुकूलचन्द्रजीके हाथोंसे इतने रोगियोंको अच्छा होते देखकर भी

वे कैसे इससे इन्कार करें । एक डाक्टर साहबकी निन्दाके प्रतिवाद में तो एक आदमीने उन्हींके मुँहपर कह दिया–"आप यह सब क्या कहते हैं बाबू ? एक वह हैं जो आपकी इतनी प्रशंसा करते हैं और उनके ऐसे देवताके विरोधमें आप झूठ-सच बोलते चले जा रहे हैं ? गुणमें, स्वभावमें वे जैसे देवता हैं वैसे ही दवा करनेमें धन्वन्तरी भी हैं ।"

डाक्टरोंने अनुकूलचन्द्रजीकी प्रशंसाकी बातमें चालाकी देखी। इस चालाकीको काटनेके निमित्त उन्होंने अपने अस्त्र-प्रयोगकी विधिमें परिवर्त्तन किया। जनतासे कहने लगे कि, तुम लोग असली बात तो जानते नहीं। यह जो धड़ाधड़ रोगी अच्छे हो रहे हैं उसके कारणको जान लो तो फिर धोखेमें न पड़ोगे। असल बात क्या है जानते हो ? उसकी माँ कामाक्षा गयी थी, वहाँसे वह मंत्र सीखकर आयी है। उसी मंत्रका प्रभाव निःशेष हो जायगा, उस समय ब्रह्मा भी आवें तो फिर रोग नहीं छूट सकता। इसलिये अभीसे होशियार हो जाओ।'

अनुकूलचन्द्र इस बातको सुनकर क्रोधित नहीं, दुःखित हुए। उनको दुःख हुआ डाक्टरोंकी मानसिक विकारग्रस्त अवस्थाको देखकर। उनकी इस मानसिक अवस्थाको देखकर आँखें अश्रुसिक्त हो गयीं। तब क्या स्वस्थ,सभ्य और सुशिक्षित व्यक्ति जिनके हाँथों में समाज और राष्ट्रका भार है वे भी रोगी हैं ? समाजके जो नियामक हैं क्या वे भी रुग्ण हैं ? समाजके भीतर आदरणीय और अधिकारप्राप्त व्यक्तियोंकी खोजमें लगे डाक्टर अनुकूलचन्द्र।

इसी बीच कालराका आविर्भाव हुआ। हिमाईतपुरके बहिर उपकूलपर अवस्तित सब ग्रामोंमें कालरा फैल गया। अपने ग्राममें भी फैलने लगा। सैकड़ों आदमी नित्य मरने लगे। डाक्टरोंने मारे भयके बाहर जाना बन्दकर दिया। मनमोहिनी देवी भी आशंकित हो गयीं एवं अनुकूलचन्द्रका बाहर रोगी देखना बन्द कर दिया।

मातृहृदय अपनी सन्तानको मृत्युके मुँखमें कैसे जाने दे ?

इसी समय दूरके ग्रामका एक आदमी आपके द्वारपर पहुँचा। अपने एकमात्र पुत्रके विशूचिकासे आक्रान्त होनेका सम्वाद मनमोहिनी देवीसे कहने लगा। उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह रही थी। उसकी कातर ध्वनि सुनकर डाक्टर अनुकूलचन्द्र बाहर निकल आये। माँके मुखसे हाँ वा ना कुछ न निकला। उनकी वह द्विधापूर्ण अवस्था देखकर आप विचलित हो गये। बोले—'माँ, मुझे जाना ही पड़ेगा। ऐसी विपदामें न जाना डाक्टरी धर्मके अनुसार पाप करना है।'

उनकी वाणीमें दृढ़ता थी। किन्तु मां दवा भेज देनेको कह रही थीं। इस महामारीके मुखमें जाने देनेको वह तैयार न थीं। एक ओर करुण क्रन्दनका आवाहन हो रहा था, दूसरी ओर करुणाघन तरुण डाक्टरका हृदय कर्त्तव्यके आवाहनपर विचलित हो पड़ा था। बीचमें करुणामयी अपनी सन्तानके प्राण-रक्षाकी चिन्तनामें पड़ी थीं। ना, हां दोनोंमें एक शब्द भी मुखसे न निकलता था। इसी बीच शिवचन्द्रजी बाहर निकल आये। पुत्रके मुखमण्डलपर दृढ़ताका चिन्ह देखकर उन्होंने एक मार्ग ढूँढ़ा। उन्होंने कहा—तुम रोगी देखने जा सकते हो, किन्तु दो बातें माननी होंगी। प्रथम यह कि बाहर कुछ भी न खाना होगा और द्वितीय यह कि दोपहर होनेके प्रथम घर लौट आना होगा। स्त्रीके असमञ्जस और पुत्रके दृढ़ताके मध्य यही उचित निपटाराका पथ निकला। कुछ खा-पीकर डाक्टर साहब चल पड़े। पीछे-पीछे आदमी दवाका बक्स लिये जा रहा था।

जिस समय उस ग्राममें पहुँचे सैकड़ों आदमियोंने घेर लिया। सत्तर आदमी कालरेसे आक्रान्त थे। औषधि देते-दिलाते संध्या हो गयी, तब फुर्सत मिली। माँ इधर बेचैन होकर आनेकी राह देख रही थीं। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते चले। पीछे-पीछे वह

आदमी भी था। आठ बजे रातके लगभग हिमाईतपुरके बहिर-उपकूलपर पहुँचे। ग्राममें प्रवेश करते समय एक विकराल स्त्रीमूर्ति दीख पड़ी। हठात् इनके पैर रुक गये उस स्त्रीको देखकर। एक दृष्टिसे उस मूर्त्ति की ओर कुछ देरतक देखते रहे। इसके उपरान्त आपका समस्त मुखमण्डल प्रकाशमय हो गया और ललाटसे एक प्रकाशरेखा तीरकी तरह निकल पड़ी। कुछ देरतक उस स्त्रीके पीछे वह प्रकाशकिरण दौड़ती-सी दीख पड़ी। उसके उपरान्त वह स्त्री आकाशमार्गसे भागने लगी। वह किरण भी पीछे-पीछे बाणकी तरह जा रही थी। यह दौड़ वहांसे पाँच मीलकी दूरी तक होती रही और दोगाही ग्रामके निकट जाकर शेष हो गयी।

जबतक प्रकाशके साथ उस स्त्रीकी भाग-दौड़ होती रही दोनों आदमी खड़े रहे। वह आदमी तो थर-थर कांप रहा था। उसको शांत करनेके उपरांत आप घर पहुँचे। मां उद्विग्नतापूर्वक राह देख रही थीं। मांके निकट पहुंचकर उनका चरण-रज शीशपर धारण किया और दोनों पौकेटके भरे रुपयोंको उनके श्रीचरणोंमें चढ़ा दिया। मैं यहां चिन्तामें मरी जा रही हूँ और तू आया है रुपया दिखाने—इतना कहकर माँने रुपयोंको हाथसे ठेल दिया।

अनुनय करते हुए बोले—'माँ भूल हुई है, क्षमा करो। अबसे ऐसी भूल न होगी। क्या करूँ मां, लोगोंका दुःख सहन नहीं होता। आदमियोंकी करुण पुकारकी उपेक्षा न कर सका। फल भी हाथोंहाथ मिला। आजसे अपने ग्राममें किसीको हैजा न होगा।

इतनेपर भी माँ न मान सकीं। बोली—'ना,महामारीके दिनमें तूझे बाहर न जाना होगा।'

फिर भी क्या सर्वभूतरता आत्मा मान सकी? औषधि देकर क्या वे निश्चिन्त हो पाते? ठीक समयपर घरवाले औषधि देते होंगे वा नहीं, यथोचित रोगीकी शुश्रूषा और पथ्यादि मिलता होगा वा

नहीं इसपर उन्हें विश्वास न होता। इसलिए जबतक रोगीका पूर्ण भार अपने हाथमें न लेते चैन न मिलता। आदमी घोर स्वार्थी और उत्तरदायित्त्वहीन हो गये हैं। परिवारवाले रोगीकी सेवा नहीं करते, समयपर गर्म पानीतक नहीं देते। दवा ले जाकर रोगीके सिरहाने रख देते हैं। वह खाय या मरे उनकी बलासे। तब उनपर निर्भर कैसे रहा जाय ?

रोगी हाथमें लेते ही चिन्ता बढ़ जाती आपकी। बेचैन होकर उसके घरके रास्तेपर चहलकदमी करने लगते। रोगीके घरका आदमी देखकर उन्हें बुला लेगा इस आशामें उस रास्तेपर टहलते रहते।

इतनेपर भी यदि कोई न बुलाता तो उपयाचज होकर स्वयं रोगीके घरमें जा घुसते। रोगीके सरपर हाथ फेरते हुए पथ्यादिके विषयमें जिज्ञासा करते। पैसेका अभाव हो तो वह भी देते। हृदय में जो करुणाकी तीव्र स्रोतस्विनी बहती रहती वह प्रचलित डाक्टरी पेशाके पिधि-विधानको बहा ले जाती।

कभी-कभी तो रोगीके परिवारवालोंको दायित्त्वहीन, कर्त्तव्य-हीन कहकर झिड़की भी सुना देते। किन्तु उस गालीसे अपमानित बोध करनेके स्थानपर वे कृतज्ञ बन जाते। उनका हृदय उस भारसे दब जाता। उनके चले जानेपर आपसमें कहते, इनसे किसीकी तुलना नहीं की जा सकती। ये अपार करुणाघन हैं। ऐसा दर्द-वाला हृदय किसी डाक्टरमें नहीं पाया जाता।

भर्त्सनाके स्वरमें जो प्रेमका सुर होता उसको मूर्खका अन्त-र्हृदय भी समझ पाता है।

नाम-ध्यान करते रहनेके कारण आपकी स्पर्शानुभूति और दृष्टिशक्ति अत्यन्त तीव्र हो गयी थी। इससे आसन्न रोगका पहले ही ज्ञान हो जाता और सावधान रहनेको कह दिया करते थे।

काशीपुर बाजार होकर रोगी देखने जाते समय इसी प्रकार

की एक भविष्यवाणी मुँहसे निकल पड़ी। सामनेसे एक मुसलमान बरारी मछली टाँगे आ रहा था। उसके चहरेकी ओर देखते ही रोगसे आक्रान्त होनेके लक्षण दीख पड़े। बोले–मियाँ, सम्हलकर रहो। मछलीसे परहेज रखो। नहीं तो पेटसम्बन्धी रोग हो सकता है। लोभी कोई बात सुनता है? उसने आपकी बातोंको ग्रहण ही न किया। फल भी हाथों हाथ मिला। दो घण्टेके उपरान्त ही उसे हैजा हुआ। अन्तमें आपने ही दवा देकर अच्छा किया।

किन्तु उस बातकी भविष्यवाणी कहकर आप बहुत फसादमें पड़े। वह आदमी कहने लगा—'आपकी दवा नहीं, आबेहयात है, अमृत है। सिद्ध औषधियाँ हैं। आप मुर्देमें रूह फूँक सकते हैं, मरे आदमीको जिला सकते हैं।'

चारो ओर यह बात फैल गयी। फैलते-फैलते अखबारवालोंके कानोंमें भी पहुंची। वे तो ऐसे ही सनसनीदार सम्वादकी खोजमें रहते हैं। फ्री प्रेसके रिपोर्टर श्री इन्द्रनाथ चौधुरीजीके कानोंमें भी यह सम्वाद पहुंचा। आप खोज-खबर लेनेके लिए आश्रम आ पहुंचे। उस मुसलमानसे इनक्वायरी की। उसके बाद अनुकूलचन्द्रजीको पकड़ा। प्रश्न किया—'मुखाकृति देखकर आप रोग होनेकी बात कैसे जान गये?'

इसके उत्तरमें आपने कहा—"किसी विषयमें *sincerely engaged* (सच्चाईके साथ लगे) रहें और उसको *apply* (प्रयोग) करते रहें तो उससे *experience* (ज्ञान) होता है, *common sense* (व्यावहारिक ज्ञान) बढ़ता है और अन्तमें वह *instinct* (सहज ज्ञान) बन जाता है। शायद मेरे साथ भी यही बात हुई थी।"

आप किसी बातको अस्पष्ट, धुँधली वा अलौकिक बननेका अवसर नहीं देते। युक्तिसंगत व्याख्या दे देकर हर बातको सम-

झाते रहते। लोगोंमें अलौकिकतत्त्वसम्बन्धी जो प्रचलित धारणा बँधी है उसको उखाड़ फेंकनेका प्रयत्न करते।

पत्र-सम्वाददाताने फिर पूछा—"लोगोंकी जुबानी मैंने सुना है कि आपने बहुत अलौकिक और अद्भुत कर्मोंका सम्पादन किया है। यह सब आप कैसे करते हैं ?"

आपने उत्तर दिया—'आदमी जबतक बातके कारणको नहीं जनता तबतक उसको अद्भुत काम कहता रहता है। जैसे, आपका यह शार्टहैण्डमें लिखना। आप लिखना जानते हैं इसलिए वह आपके लिए कुछ नहीं है, किन्तु मेरे लिए अद्भुत है।'

—'और आप नामजप क्यों करते थे ?' पुनः प्रश्न हुआ।

—'मन ही मन शब्दका उच्चारण करनेसे उसकी क्रिया स्नायु-कोषपर होती है। स्नायुपर सतत क्रिया होते रहनेके कारण मस्तिष्ककोष उत्तेजित होता है। सतत उत्तेजनावश वह अधिक sensitive (सूक्ष्मग्राही) हो जाता है। इससे जो चेतना हमारे लिए अगम्य बनी रहती हो वह क्रमशः बोधगम्य बन जाती है।

—'ध्वन्यात्मक वा बीजमन्त्रके जप करनेसे मस्तिष्ककोषकी सूक्ष्म बोध-शक्ति बढ़ जाती है और braincell (मस्तिष्ककोष) का sensitiveness सूक्ष्मतर हो जाता है। इसीके साथ यदि किसी मूर्त्तिका ध्यान किया जाय तो उसके फलस्वरूप स्नायु-समूह receptive वा ग्रहणक्षम भी हो जाता है।

—'इस नामजपके करते रहनेसे हमारे observation वा पर्य्यवेक्षण करनेकी शक्ति बहुत उन्नत और deeper गम्भीर हो जाती है। नाम-ध्यान द्वारा पर्य्यवेक्षणी शक्ति जितनी उन्नत और गहरी हो सकती है, उतनी दूसरे उपायसे नहीं हो सकती।'

डाक्टरीमें जैसे-जैसे नाम बढ़ता गया वैसे-वैसे लोगोंने आपके दर्शनकी फीसको भी बढ़ा दिया। पावना शहरके बड़ेसे बड़े डाक्टर की फीसके बराबर फीस कर दी थी लोगोंने। यह सब हुआ था

आपकी अपूर्व रोगनिर्णयक्षमता, अमोघ औषधिगुण और स्नेहपूर्ण रोग-परिचर्य्याके कारण। इसके अतिरिक्त दुःखी-दरिद्रके तो आप ही आश्रय और अवलम्ब थे।

किन्तु धीरे-धीरे शारीरिक चिकित्साकी दिशासे अभिरुचि फिरने लगी। चिकित्सा-कार्यमें उन्हें प्रत्येक श्रेणीके लोगोंसे मिलनेका अवसर मिला था। उनके एकात्मबोध और सरल आत्मीय व्यवहारसे रोगी और उसके घरवालोंने इनको अपने हृदयसिंहासनपर बैठा लिया था। उन्मुक्त कण्ठसे अपनी गुप्तसे गुप्त बातोंको कहते। उन समस्त गुप्त कहानियोंको सुनकर वे रोगके मूल कारणकी खोज करने लगे। होमियोपैथी चिकित्सा-शास्त्र सोरा, साइकोसिस और सिफलिसकी भित्तिपर खड़ा है और इन्हीं तीनोंको व्याधिका मूल कारण मानता है। किन्तु अपने तीक्ष्ण अन्वेशणमें इन्होंने मानसिक अवस्थाको ही समस्त व्याधियोंका मूल पाया। तब शरीरके ऊपर शान्ति प्रलेप लगानेसे क्या लाभ? जो रोग मानसजगत्के अतल तलमें छिपा है उसपर औषधि अपनी कैसे क्रिया कर सकती है? मूल रोग है जीवनधारामें। इस जीवनधारा का सम्बन्ध जीवन और जनन दोनोंसे है। जनन-सम्बन्धी गड़बड़ीसे डिस्पेपसिया, स्नायुविकार, पेट-सम्बन्धी रोग, पागलपन और कामोन्माद आदि असंख्य रोगोंको होते देखा था अपने दीर्घकालीन चिकित्सा-व्यवसायमें। इसलिए उनकी दृष्टि जीवन और जननके मूल कारणकी खोजमें लगी। जैसे-जैसे जीवनधाराके आकुञ्चन और प्रसारणक्रियाकी ओर दृष्टि बढ़ती गई वैसे-वैसे शारीरिक चिकित्सासे मन भागता गया।,

इसी बीच मनमोहिनी देवीके निकट उनके गुरुद्वारेसे पत्र आया। पत्रमें निर्देश था कि अनुकूलचन्द्रको दीक्षा देनेका समय आ गया है, तुम दीक्षा दे दो।

यथासमय पूजाका समस्त उपकरण एकत्रित किया गया। दो

आसन बिछाये गये। सामने गुरुदेवकी मूर्त्ति रखी गयी। मृणमयी माँ चिन्मयी रूपमें आसनपर बैठीं। शीश झुकाकर पुत्रने मन्त्र प्रदान करनेकी प्रार्थना की। आसन, पूजा और नाम-ध्यान करनेकी विधि बतलाकर माँ जैसे मन्त्र प्रदान करनेको प्रस्तुत हुईं समस्त गृह दिव्य प्रकाशसे परिपूर्ण हो गया। धीरे-धीरे मन्त्रके एक-एक अक्षरको माँ उच्चारण करने लगीं। उसीके साथ समस्त प्रकाश पुञ्जीभूत बनकर अनुकूलचन्द्रके शरीरको आवृत्त करने लगा। एक ज्योतिर्मण्डलसे समस्त मुखमण्डल घिर गया। मन्त्र प्रदान करनेके साथ ही साथ वह ज्योति आकारके रूपमें उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गई।

जिस दिन जिस घड़ी मनमोहिनी देवीने अपने पुत्रको दीक्षा दी ठीक उसी दिन,उसी घड़ी उनके गुरुदेवके स्थलाभिषिक्त गुरुजीने गाजीपुरमें अपना शरीर त्याग किया। शरीरत्याग करनेके प्रथम अपने प्रिय शिष्य आनन्दस्वरूपको बुलाकर उन्होंने कहा—'जाओ काम हो गया।'

तेजः शक्तिके प्रवेश करनेके साथ अनुकूलचन्द्रने कहा—'माँ, मैं तो यही मन्त्र जप करता आया हूँ, इसमें नवीनता क्या है?' नवीनता हो या नहीं, रह-रहकर आप अपने दाढ़ीपर इस प्रकारसे हाथ फेरने लगते मानो मुखपर लम्बी दाढ़ी उत्पन्न हो गई है। किन्तु सुचिक्कन दाढ़ीपर हाथ पहुँचते ही आश्चर्यमें पड़ जाते। इस रहस्यका उद्घाटन कौन कर सकता है? संसारमें आध्यात्मिक धाराक्रम क्या इसी प्रकारसे सुरक्षित होता आया है?

इसके उपरान्त चिकित्सामें मनोयोग देना कठिन हो गया। इसलिये डिस्पेन्सरीका समस्त कार्यभार अपने बाल्यबन्धु अनन्तनाथके हाथमें समर्पित कर दिया। डिस्पेन्सरी हटाकर घरके निकट एक टिनकी कुटियामें रखी गई। अर्थकरी विद्यासे अनुकूलचन्द्रने छुट्टी ले ली!

दीक्षाके उपरान्त आप हरदम भावमें विभोर रहने लगे। आँखें हरदम चढ़ी रहतीं। गाँजाखोरके समान चौबीसों घण्टे आँखें सुर्ख रहने लगीं। दिन-रात भावमें गर्क रहने लगे। इस अवस्थामें लोग शराबी कहनेकी भूल कर बैठते थे।

डाक्टरी करें तो कैसे? अमृत-धाराके अवगाहनसे चित्त निकलना चाहे तब न? इतनेपर भी जोर-जबर्दस्ती करके एक दिन एक आदमी दवा ले ही गया। देते समय आपने सांघातिक विषकी पुड़िया बनाकर दे दी। वह लेकर जब चला गया उसके बहुत देर उपरान्त उन्हें स्मरण हुआ। 'अब क्या होगा? इस भयानक विषसे रक्षा कैसे होगी?'—अनन्तनाथने प्रश्न किया।

उन्होंने उत्तरमें कहा—'परमपिता क्या बैठे रहेंगे? जरूर रक्षाकी कोई न कोई व्यवस्था करेंगे। जो पिताकी ओर दिन-रात आँख लगाये हो क्या उसकी लज्जा वे न बचायेंगे?' इतना कहकर पिता, पिता कहकर चिल्लाने लगे।

पुड़िया खोलकर उसी समय रोगीको दी जा रही थी। अचानक देनेवालेका हाथ हिला और औषधि मिट्टीमें मिल गई।

इस घटनाके संघटित होनेके उपरान्त कुछ दिनतक आप स्वेच्छापूर्वक फिर औषधि करते रहे। उन दिनों बड़े-बड़े डाक्टरोंके समान चिकित्सा करते थे। द्वारपर बुलानेवालोंकी भीड़ लगी रहती। कठिन और असाध्य रोग आश्चर्यजनक रूपसे प्रशमित होने लगे। भीड़से बचनेके लिए फीसकी दक्षिणा एक सौ एक रुपया कर दी गयी। इतनेपर भी चैन न मिल पाता। आठ-दस पालकियाँ द्वारपर लगी ही रहतीं।

आजसे चालीस साल पहले एक नगण्य ग्राममें डाक्टरकी फीस एक सौ एक रुपया होना विस्मयकर ही नहीं अचिन्तनीय भी है।

किन्तु जिसे विश्वकी जटिल ग्रन्थियोंका उन्मोचन करना हो उसको क्या आर्थिक प्रलोभन रोककर रख सकता है? सुखपूर्ण

संसार बसानेके पीछे उनके पवित्र शरीरको घरवाले अबतक खींचते रहे। किन्तु महामानव तो अविद्याका संसार रचित करने नहीं आते। ऐश्वर्य भोग, शारीरिक सुखकी खोजमें नहीं आते। मान-सम्मान, लोक-यशके भिखारी बनने नहीं आते। आते हैं पापताप-ग्रस्त मानवताका उद्धार करने, सुख और भोगके कब्रके बन्धनसे निकालकर जीवन और अमृतका राजपथ दिखाने।

उसी चिरन्तन पथको अनुकूलचन्द्रजीने भी अपनाया। ऐश्वर्य, राज-सुख और मान-यशकी उपेक्षा कर मानव-मनके गहन अरण्यकी बनवीथिपर उन्होंने अपना अभियान आरम्भ किया। उनका सुदर्शनचक्र दुष्कर्मके विनाशनमें लगा।

सप्तदश अध्याय

मनुष्य जितने प्रकारके कष्ट भोगता है उनमें मानसिक कष्ट ही मारात्मक होता है। शारीरिक कष्ट और रोग सामयिक होते हैं एवं अल्प दिनमें दूरीभूत हो जाते हैं, किन्तु मानसिक रोग और कष्टसे आदमीआ जीवन बेचैन रहता है।

जगतमें जितने प्रकारके पाप होते हैं सब मानसिक व्याधिवश ही होते हैं। चोरी, डकैती, हत्या, व्यभिचार, षड्यन्त्र आदि जितने कुकर्म या अकर्म जगतमें होते हैं सब मानसिक रोगवश ही आदमी करता है। अपने दीर्घ-कालीन चिकित्साकालमें डाक्टर अनुकूल-चन्द्रकी तीव्र दृष्टिने इसे देख पाया था।

धर्मोपदेश किंवा जेलके अनुशासनमें रखनेसे यह रोग नहीं छूटता। ब्राह्मणसभावाले हिमाईतपुर, प्रतापपुर, काशीपुर, छातनी और नाजिरपुर नामक पञ्चब्राह्मण-ग्रामोंमें धर्म-प्रचार किया करते थे। नित्य सभा होती—रोज धर्मोपदेश किया जाता। किन्तु उससे क्या हुआ? लोग शराब पीकर कीर्त्तनमें गलेके सुर और सफाई दिखाने ही तो आते थे? कीर्त्तनके भीतर भी अहङ्कारका नाच आरम्भ हो गया। दलबन्दियाँ होने लगीं। सिर्फ दो गाँवमें एक सौ नौ कीर्त्तन-मण्डलियाँ बन गई। उसी प्रकार जेलमें भेजकर आदमीमें परिवर्त्तन नहीं आता। वरञ्च इससे दोष करनेकी प्रवृत्ति प्रबलतर हो जाती है। इन विषयोंपर अनुकूलचन्द्रने तीक्ष्ण दृष्टिसे अन्वेषण करना आरम्भ किया।

ग्रामके चतुर्दिक जो व्यभिचारका राज्य छाया हुआ है इसका कारण क्या है? व्यभिचारकी जो ताण्डव-लीला यहाँपर दिन-रात होती रहती है वह क्या विकृत मानसिक अवस्थाकी परिचायक नहीं? चोरी, लम्पटता, सतीत्वहरण प्रभृति एक भी घृणित कर्म

नहीं जो यहाँपर न होता हो। ये सब मानसिक दौर्बल्य और चारित्रिक दैन्यके ही तो लक्षण हैं।

इस मूल कारणकी औषधि न हो तो समाजमें जीवित बचना ही कठिन है। अस्तित्व रक्षाकी दृष्टिसे भी तो इस बातकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। रास्ता चलते जहाँपर स्त्रियोंसे छेड़खानी की जाती है, दिन-दहाड़े पालकीसे जानेवाली बहु-बेटियाँ गायब कर दी जाती हैं, वहाँपर अपनी पारिवारिक पवित्रता कैसे सुरक्षित रह सकती है ? जहाँपर युवती स्त्रियोंका घरमें निश्चिन्त सोना भी हराम है वहाँ चुप बैठे रहनेसे कैसे काम चलेगा ? जहाँपर ठट्टर काटकर युवती कन्याओं और बहुओंको उड़ा लिया जाता है वहाँ-पर घरकी मर्य्यादा कैसे सुरक्षित रह सकती है ?

बाधा देकर क्या दुष्कर्मसे मोड़ा जा सकता है ? बाधा देने-वालोंकी तो हत्या की जाती है। पुलिस या कचहरीमें जाना क्या है ? मृत्युका आमन्त्रण करना है। थानेसे बाहर निकलते ही मार पड़ती है। डिप्टीके भरे इजलासमें जूतेबाजी होती है। रास्ता चलते गवाह पीटे जाते हैं। इतनेपर भी कचहरी जाना यदि उनका बन्द न हुआ तो घरमें आग लगा दी जाती है। पुलिस चुप और न्याय मूक है यहाँ ! ऐसे स्थानपर क्या किया जा सकता है ? अनुकूलचन्द्रजीने अन्वेषण करना आरम्भ किया।

बाधा देनेसे जहाँ क्रोधाग्नि भड़क उठती है वहाँ सहृदयता और प्रेम क्या शान्ति और शीतलता नहीं ला सकते ? इस प्रेमके रज्जूसे ही तो सृष्टिका समस्त कार्यक्रम बँधा है। तनिक प्रेमास्त्रका प्रयोग करके देखा न जाय। ऐसा सोचकर अनुकूलचन्द्रजीने प्रेमके सुदर्शनचक्रका प्रयोग करना आरम्भ किया।

परम प्रेममय अनुकूलचन्द्र प्रेमास्त्रकी परीक्षा करने लगे। आपके सरल और अकपट व्यवहारके प्रति सभी आकृष्ट थे ही। उसी योग सूत्रको दृढ़ करनेमें लगे आप। चोर, बदमाश, लम्पट,

डकैत आदि अपकर्म करनेवालोंके सान्निध्यमें जाना, उनके सान्नि-ध्यमें बैठकर सुख-दुःखकी बातें करना एवं आपद्-विपद्में औषधि और आर्थिक सहायता प्रदान करना चलने लगा उनका। समाज जिनको घृणित और पतित समझकर अलग किये बैठा था, उसके साथ आपने आन्तरिक सहानुभूति सहित मिलना आरम्भ कर दिया। अलग रहकर दुष्कर्मपर सुदर्शनचक्र कैसे चलाते? और जो सुदर्शनचक्र ही न चले तो दुष्कर्मका विनाश कैसे हो? अकृत्रिम मेल-जोल और सहृदय व्यवहारने उनका हृदय विमुग्ध करना आरम्भ किया। पहले तो वे झिझके, आशङ्काकी दृष्टिसे देखा, किन्तु कुछ ही दिनोंके उपरान्त पूर्ण विश्वास करने लगे।

विश्वासने हृदयमें प्रेमांकुर उद्भिन्न किया। शनैः शनैः वे उन्मुक्त कण्ठसे पारिवारिक अशान्ति और मानसिक पीड़ाकी बात सुनाने लगे अपनी। क्रमशः गुह्यातिगुह्य बातोंको भी निःसंकोच प्रगट करने लगे। उनके भीतरी हाहाकारकी बातको आप सहृदयता-पूर्वक सुनते। सहृदयताने विश्वास उत्पन्न किया और विश्वासने हृदयोन्मुक्तता। सु-दर्शनधारी अनुकूलचन्द्रने देखा—चोरी-बटमारी आदि सकल दुष्कर्मोंकी जड़ पारिवारिक अविश्वास और अप्रेम है। गृह जब तृप्ति प्रदान करनेमें असमर्थ हो जाता है तब आदमी बहिर् तृप्तिकी आशामें मारा फिरता है। बहिर् जगतमें अपना बल-विक्रम दिखलाकर गृहको अपने प्रति आकर्षित करने लगता है।

हृदय और मनपर पूर्ण आधिपत्य जमा लेनेके उपरान्त आप उनके सुधारमें लगे। छल-बल-कौशलका सप्रेम प्रयोग आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम एक चौरप्रवृत्तिसम्पन्नके विरुद्ध सु-दर्शनका प्रयोग किया गया।

वह पक्का चोर था। सन्ध्या होनेके साथ ही साथ वह चोरी करने निकल जाता। चोरी करना उसने अपना पेशा ही बना लिया

था। इतनेपर भी अन्नाभाव हो ही जाता। उस समय आर्थिक सहायताका आप ही सम्बल रहते। आर्थिक सहायता द्वारा आप उसके अन्तरंग बन्धु बन गये थे।

नामजप करनेके निमित्त बहुधा आप पद्माके पवित्र उपकूलकी ओर चले जाते थे। उस रात भी टहलते हुए नामजप कर रहे थे। इसी समय वह चोर पद्माकी ओर जाते दीख पड़ा। अन्धेरी रात थी, फिर भी आपकी आँखोंकी तीव्र शक्तिसे वह ओझल न हो सका। दृष्टि पड़ते ही आपने पुकारा—'अरे, सुन।'

वह सकपकाता हुआ निकट आकर बोला—'क्या है बाबू।'

'फिर तू चोरी करने चला ?'

'अभाववश करता हूँ बाबू।'

'इतने दिनसे तो चोरी करते हो, अबतक अभाव दूर न हुआ ?'

'कहाँ दूर हुआ बाबू ? और यदि दूर भी हो जाय तो क्या इतने दिनका अभ्यास छूट पाता है ? पहले चोरी करता था पेटके लिए। धीरे-धीरे वही अभ्यास बन गया। वही अभ्यास अब स्वभावमें बदल गया है।'

'तुम तो उधर चोरी करने निकल जाते हो और कहीं इधर तुम्हारे घरमें चोरी हो किंवा कोई तुम्हारे स्त्रीपर कुदृष्टि डाले तो उसकी रक्षा कौन करेगा ?'

स्त्रीपर कुदृष्टि डालनेका नाम सुनते ही वह चौंक उठा। ग्राम-की जो अवस्था थी उससे वह परिचित था ही। उसपर था पड़ोस-के एक आदमीपर सन्देह भी। अनुपस्थितिमें वह मेरे घरपर तो नहीं आता ? इस इंगितके पीछे कोई तथ्य अवश्य है। अन्यथा डाक्टरसाहबके मुँहसे यह बात न निकलती। सोचते-सोचते उसका सर चक्कर खाने लगा। वहीं सिर थामकर बैठ गया।

'बैठ क्यों गये ? जाना चाहते हो तो जाओ।'

फिर भी न जा सका। कुछ देरतक चुपचाप बैठे रहनेके बाद उठा और चोरी करनेवाले सेंधमरनी आदि यन्त्रोंको नदीमें फेंक आया। उस रात वह चोरी करने न जा सका।

दूसरे दिन संध्याके घनीभूत होते ही फिर स्पृहा जगी। देह कसमस करने लगा। अन्तमें घरसे निकल पड़ा, किन्तु कुछ दूर जाते न जाते सन्देह उत्पन्न हो गया, लौट पड़ा। इस प्रकार कई रात उसने चोरीमें जानेका प्रयत्न किया, किन्तु सन्देहवश नित्य लौट आनेको बाध्य हुआ। वह चोरी करने जाय तो कैसे ? जिसके अन्तरमें बल नहीं होता, जिसे स्वयं करनेकी शक्ति नहीं रहती वही तो चोरी करता है। जो अन्तरसे शक्तिहीन होता है वही तो अपरके बलका चोरीकर अपनेको बलवान बनानेका प्रयत्न करता है ? उसके उसी बलशून्य हृदयमें आशंकाका भूत सवार हो गया है ? सन्देहसे उद्विग्न रहनेवाला क्या कोई काम कर सकता है ?

अन्तमें एक दिन अनुकूलचन्द्रजीके निकट आकर बिलख पड़ा। "तुमने यह क्या कर दिया भैया ? घरसे निकलनेपर तनिक स्वस्ति नहीं रहती। आशंकासे मन बेचैन रहता है ?"

आपने उत्तर दिया—'इससे क्या, अबसे चोरी न करोगे तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ?'

किन्तु चोरी छुड़ाकर कोई काम तो देना चाहिए ? कामकी खोजमें लगे अनुकूलचन्द्र और चार-पाँच दिनमें उसे काममें लगा भी दिया। कामके जोगाड़ करनेसे क्या होता है ? रात आते ही स्पृहा जग पड़ती, मन बेचैन हो जाता। स्पृहासे युद्ध करनेकी उसमें शक्ति कहाँ थी ? वह दौड़-दौड़ आपके निकट पहुँचता।

उसकी मानसिक अवस्था और बेकलीकी बातको और कोई समझे या न समझे अनुकूलचन्द्र खूब समझते थे। उनकी सुदर्शन-शक्ति उसके मर्मके वेदना को समझती और आप विश्राम करना छोड़कर बाहर निकलकर उससे रातभर बातें करते रहते। इस

प्रकार महीनोंके अहोरात्रि जागरण, अक्लान्त परिश्रम और सतत प्रचेष्टाके उपरान्त वह स्पृहापर विजय पा सका। चोरीकी इच्छा-शक्ति विलुप्त हो गई। चोर प्रवृत्तिके दुष्कर्मका विनाश हुआ। 'विनाशाय च दुष्कृताम्' की वाणी सार्थक हुई। वह स्वस्थ मनुष्य की नाई ईमानदारीकी कमाई करनेमें अपनी शक्तिको लगाने लगा। जो दुर्दमनीय प्रवृत्ति वह चोरीके कार्यमें लगाता था उसीको भरपूर शक्तिके साथ अर्थोपार्जन करनेमें लगाने लगा।

दुर्वृत्तोंके साथ मिलने-जुलने और अविश्रान्त परिश्रम करनेके पीछे जो महत् उद्देश्य था उस बातको न तो घरवाले समझ सके और न बाहरवाले। परिणामतः भीतर-बाहर दोनों ओरसे आघात होने लगा। कुलके हितैषीगण आकर माता-पितासे कहते—'अहा! इतना उपार्जनशील युवक कमाई-धमाई छोड़कर पथभ्रष्ट होता जा रहा है'

गांववाले भी विभिन्न प्रकारसे बदनाम करने लगे। माँ तो चिकित्सा-व्यवसाय त्याग करनेके कारण पहलेसे ही जली-कटी थीं। इस चोरसे मिलनेके कारण एक दिन बरस पड़ीं—"तुम घर-द्वारकी चिन्ता छोड़कर दिन-रात इस चोरके पीछे लगे रहते हो। घर कैसे चलेगा इसकी कोई चिन्ता ही नहीं? कुलका मान-सम्भ्रम कैसे बचेगा?"

उत्तरमें आपने कहा—'माँ, रोग कुछ और दवा कुछ, इससे तो रोग नहीं छूटेगा माँ। इतने दिनकी चिकित्सासे मुझे यह अभिज्ञता प्राप्त हुई है कि लोग मानसिक रोगके शिकार हैं। आध्यात्मिक अनावर्षणके कारण आत्मा सबकी अतृप्त, संकुचित और मुमुर्षु हो पड़ी है। तब उस प्रकारकी चिकित्सा करनेसे क्या होगा माँ?'

उत्तर सुनकर मां उस रोज तो चुप रह गयीं, किन्तु बदनामी की बात सुनते-सुनते ऊब गयीं। फलतः कई बार अपमान और

तिरस्कार भी किया। इसमें उनका भी क्या दोष ? कौन अपने बेटेको चोर-बदमाशका संग करने देना चाहता है ? किन्तु इन सारी बातोंकी उपेक्षा कर अनुकूलचन्द्र उनसे मिलते ही रहे। निन्दा, अपवाद और बाधाओंकी पर्वा न की। अपने उद्देश्य-साधनमें दुश्चरित्र और पतितोंके साथ प्राण खोलकर मिलते रहे। पापका नाश और मनुष्यका निर्माणकार्य जिसने अपने कन्धोंपर उठाया हो, क्या वह समालोचना और निन्दाकी पर्वा करता है ?

एकको पशुताकी पाशबद्ध अवस्थासे मुक्त करनेमें जब सफल हुए तो ग्रामके अन्यान्य दुष्कर्मियोंसे भी भिड़ गये। वह चोर ही अब बना आपके पापविनाशनयज्ञका प्रधान सहायक। चोरी, बटमारी और बलात्कारका वह ग्राम तो अड्डा था ही। वह चोर भी उस दलका सदस्य था। कहांपर क्या होनेको है इस बातका उसे पता लग जाता और अपने उद्धारक देवताके निकट आकर सारी बातोंका पता बता जाता। उसने एक दिन आकर सम्वाद दिया कि आज दल बांधकर एक सुन्दरी स्त्रीका सतीत्व नष्ट किया जायगा। दल इकट्ठा होनेके समय अकस्मात् अनुकूलचन्द्र उपस्थित। उनके कार्यमें विघ्न हुआ। सब एक दूसरेका मुँह देखने लगे। उनकी मानसिक अवस्थाको देखकर आपने कहा 'चलो, मैं भी साथ चलूँगा।' किन्तु वे राजी न हुए। आप भी साथ छोड़नेवाले नहीं। अन्तमें बाध्य होकर ले जाना पड़ा।

सब मिलकर एक गृहस्थके घरके निकट पहुँचे और जहाँपर कूड़ा कर्कट फेंका जाता था उसी जगह छिपकर बैठ गये। दलीची से स्त्री दीख रही थी। निश्चय किया गया कि बाहर निकलते ही उसको बलपूर्वक पकड़ ले जायगे। चारों ओर झाड़-जंगल। मच्छड़ काट रहे थे। और लोग तो मच्छड़का दंशन सहन कर रहे थे, किन्तु अनुकूलचन्द्रजीको सहन न हो सका। बेचैन होकर मच्छड़ मारने लगे। चटाख-पटाककी आवाज होने लगे। साथी

डाँटने लगे। कुछ देरतक तो आप चुप्पी साधे रहे, किन्तु असह्य हो जानेके कारण हठात् उठकर भाग चले। पैरकी थप-थप आवाज हो रही थी भयसे साथी लोग भी भागने लगे। अन्धकारमें भगदड़ मच गयी। पीछा करनेकी आशंकाके मारे सभी भागते जा रहे थे। दौड़ते-दौड़ते सब अड्डेके निकट आ पहुँचे। सबका दम फूल रहा था। कुछ क्षणके उपरान्त दृप्त कण्ठसे आपने कहना आरम्भ किया—"बाप रे बाप ! इस झाड़-झोप-जंगलमें मच्छड़के दंशनसे मरनेके लिये आज हमलोग गये थे। क्या हममें अपने प्राणोंकी ममता नहीं ? हमारा जीवन क्या इतना तुच्छ है ? पुरुष होकर हम लोग इस प्रकारके जघन्य कार्यके पीछे जंगल-जंगल मारे फिरेंगे ? हममें क्या लज्जा नहीं ? आत्म-मर्यादाका विसर्जन कर घृणित और कुत्सित रूपमें औरतके पीछे मारे-मारे फिरेंगे ? इतने नीच, इतने कमीने हो गये हैं हम लोग ? हमारे भीतर पौरुष हो, हमारे अन्दर शौर्य और वीर्य हो, तो औरतें हमारे रूप-गुणके पीछे दौड़ती फिरेंगी। तब न हमारी बहादुरी है ? सिंह क्या सिंहनीके पीछे घूमता है ? वह तो वीरकी नाईं छाती अँकड़ाये बैठा रहता है और सिंहनी उसके मुखको देख-देख तृप्त होती रहती है ? काले मेघको देखकर जिस समय मयूर पंख फैलाकर नृत्य करता है उस समय मयूरी उसके अंग-सौष्ठवको अनिमेष नेत्रोंसे देखती रहती है।"

यह कहते-कहते उनका मुख प्रकाशपूर्ण हो गया। तेजोदीप्त प्रकाशसे सारा शरीर भर गया। उस बलशाली तेज शब्दसे सबोंमें पौरुष जाग गया। अन्तर कुकृत्यकी अनुशोचनासे भर गया। इसके उपरान्त उनके चरित्रमें महान् परिवर्त्तन आ गया।

आपका तीसरा साथी कामलोलुप था। कामपरिपूर्ण दृष्टिसे स्त्रियोंके प्रति देखा करता। एक स्त्रीके प्रति उसका मन कामातुर हो गया था। एक दिन आकर आपसे कहने लगा—"तुम तो

बहुत बुद्धिमान् हो। स्त्री-वशीकरणकी कोई विधि बतलाओ। तुम इसमें थोड़ी मदद कर दो तो एक स्त्रीको हाथ लगा लूँ।

उत्तर मिला—'स्त्रियाँ क्या ऐसे वशमें आती हैं? उसका भी एक मन्त्र है।'

'रखो अपना मन्त्र-तन्त्र। बड़े आये हैं मन्त्रवाले। बाजी लगा कर दिखलावो तब मानूँ।'

ठीक उसी समय एक स्त्री घाटसे घड़ामें जल लिये आ रही थी। उसको दिखाते हुए अनुकूलचन्द्रने कहा—'देखोगे? उस स्त्रीको पलभरमें वशीभूत कर सकता हूँ।'

'चलो, चलो, तुम्हारे ऐसे कहनेवाले बहुत हैं। करके दिखाओ तो मानूँ?'

'अच्छा तो मैं दिखाने चलता हूँ। तुम दूरसे सब देखते रहना।'

इतना कहकर आप उस स्त्रीके निकट पँहुँचे और अपने स्वभावसुलभ मधुर कण्ठसे माँ कहकर पुकारा। मातृ-मन्त्रके पुजारी के मुखके मातृ-सम्बोधनमें न मालूम कितना माधुर्य्य था। उसके श्रवणमात्रसे उसका हृदय वात्सल्य रससे आप्लावित हो गया। स्नेहभरे स्वरमें वह बोली–'क्या है मेरे बेटे? क्या चाहिये बाबा?'

उसके साथ बालसुलभ मधुर भावसे बातें करते जाने लगे। उसके घरतक पहुँचा आये। उसके उपरान्त जब फिरने लगे तो स्त्रीने कहा—'बेटा, ऐसे ही जाते हो? माँका कुछ प्रसाद खाकर जाओ बेटा।'

आप ना-ना करते रहे, किन्तु वह न मानी। हाथ पकड़कर भीतर ले गयी और केला-मिठाई नाश्ताके लिये सामने ला रखी। पीढ़ापर बैठाकर खिलाती भी रही। उधर वह साथी देख-देखकर आश्चर्यमें पड़ा था। जिस समय उस स्त्रीने अनुकूलचन्द्रजी का हाथ पकड़ा उस समय उस कामलोलुपकी आँखें लाल-सी हो

गयीं। शिराओंमें उष्ण रक्त प्रवाहित होने लगा। साथ ही मन्त्र-शक्तिपर पूर्ण विश्वास हो गया। यह किसी प्रकारसे सीख लिया जाय तो गांवभरकी तरुणियोंको काबूमें लाया जा सकता है। इस बातका पूर्ण विश्वास जम गया।

नाश्ता करनेके उपरान्त अनुकूलचन्द्रजीने आकर कहा—'क्यों? देखा न मन्त्र-बल? इस मन्त्रसे पलभरमें आदमीको वशमें लाया जा सकता है।'

अब वह मन्त्र सिखलानेकी चिरौरी करने लगा। नित्य आकर मन्त्र बतलानेके लिये तंग करने लगा। अन्तमें एक दिन सत्याग्रह करके बैठ गया—'मन्त्र न सिखलाओगे तो तुम्हारे द्वारपर जान दे दूँगा।'

सत्याग्रहके इस नवीन रूपको देखकर पाठक हँसेंगे, पाठिकाएँ आश्चर्य करेंगी। किन्तु अनुकूलचन्द्रकी सुदर्शनशक्ति कामनाके इसी चरम मुहूर्त्तका मार्ग देख रही थी।

उसके हठपूर्ण वाणीको सुनते ही अनुकूलचन्द्रका रूप परिवर्त्तित हो गया। सहसा मुखाकृति भयंकर हो गयी। उसको लिये हुए पद्माके तटपर पहुँचे और अँजुलीमें जल लेनेको कहा। उनके उस भयंकर रूप और भीषण तेजस्वी आकृतिका दर्शन कर वह डर गया। डरते-डरते पद्माका जल अँजुलीमें लेकर सामने आ खड़ा हुआ।

निर्ज्जन नदीतटपर अनुकूलचन्द्रके मुखसे झंकार करता हुआ मातृ-मन्त्र निकलने लगा। समस्त वातावरणमें तड़ित ध्वनि होने लगी। उसमेंसे निकलनेवाले विद्युत्प्रवाहसे उसका रोम-रोम, स्नायुका तार-तार, हृदयका पर्दा-पर्दा थर-थर काँपने लगा। सारे शरीरमें अपूर्व सिहरन और कम्पन आरम्भ हो गया और कटे वृक्षकी नाईं जमीनपर गिरकर छटपट करता हुआ कहने लगा—'उफ, उफ, यह क्या कर दिया, यह क्या कर दिया?'

उसी दिनसे उस व्यक्तिकी जीवन-धारा आमूल परिवर्त्तित हो गयी।

इस प्रकारके दुष्कर्म-विनाशकी अगणित कहानियाँ हैं आपकी। उनके सुदर्शनचक्रकी गतिशीलता क्या आज भी बन्द है? मानवता पुंमैथुन, पशुमैथुनके चरम पतनतक आ गिरी है। कामोन्मादग्रस्तोंसे राष्ट्र भरता जा रहा है। राष्ट्रीय अधःपतनका रूप कितना भयावह और चरम पशुताके पर्य्यायमें पहुँच गया है इसके प्रति राष्ट्र निर्माताओंकी दृष्टि नहीं जाती। व्यभिचारी, वेश्या, मदकची, उद्भ्रान्त, पागल व्यक्तित्ववाले वीर्यहीन राष्ट्रकी रक्षा भगवान् ही करें।

किन्तु अनुकूलचन्द्र बैठे न रह सके। मनुष्यके बढ़ते हुए व्यभिचार, पाप और दुष्कर्मोंके विनाशकार्यमें लगे रहे। उन्होंने कितने नरपशुओंको मनुष्य बनाया, अमानुषको देवतामें परिवर्त्तित कर दिया। पाप करनेके कारण जड़वत् बने व्यक्तियोंको पापमुक्त और चैतन्य बना दिया। दुर्बलोंको शक्तिमान बनाया और आशा-हीनोंमें नवजीवन संचारित किया। किन्तु क्या वे सबके निमित्त एक ही प्रकारकी व्यवस्था करते थे? जिसकी आँत जिस चीजको पचा सकती है माता उसके लिये उसीकी व्यवस्था करती है। जैसा रोग होता है वैसा ही इलाज करते हैं आप।

बुद्धि द्वारा क्या उनकी सब बातें समझी जा सकती हैं? युक्ति द्वारा क्या उनके साधन-प्रक्रियाओंको समझाया जा सकता है? फिर भी उनके सम्पर्कमें आनेसे मूर्ख ज्ञानी बनते देखे जाते हैं, असंयमी संयमी बनते पाये जाते हैं और धर्मविरोधी धार्मिकके रूपमें परिवर्त्तित होते देखे जाते हैं। असम्भवको सम्भव आप कैसे करते हैं इसको युक्ति द्वारा कैसे समझाया जाय? क्या कभी युक्ति मूक नहीं हो जाती?

अष्टादश अध्याय

कीर्त्तनका रस मिलनेके उपरान्त किशोरीमोहन ग्राम-ग्राममें कीर्त्तन मंडलीकी रचना करते रहे। बारी-बारी उन मंडलियोंमें स्वयं भी योग प्रदान करते थे। इस बीच उन्होंने पागल हरनाथ ठाकुर नामक तत्कालीन एक महापुरुषसे सम्बन्धसूत्र भी संस्थापित कर लिया था। कीर्त्तनस्थलपर हरनाथ ठाकुरका चित्र और उनके उपदेशवाक्य टँगे रहते। कीर्त्तनारम्भके प्रथम आपके ग्रन्थों और उपदेशोंका पाठ होता। अनुकूलचन्द्र जब कभी जाते उपरोक्त हरनाथ ठाकुरके चित्रपटको साष्टांग प्रणाम करते।

किशोरीमोहनके सहयोगसे सब कीर्त्तनमण्डलियोंको तोड़कर एक बृहत्संकीर्त्तनदल निर्मित हुआ। विभिन्न ग्रामोंके जो छोटे-छोटे कीर्त्तनदल थे सब इसमें संयुक्त कर लिये गये। किशोरी-मोहनका गृह इस महासंकीर्त्तनदलका केन्द्रस्थल बना। वहाँसे निकलकर यह सैकड़ों आदमीकी सम्मिलित कण्ठध्वनि पद्मातीर-वर्त्ती प्रत्येक जन-पद, पथ-घाट और वन-भूमिको हरिनामके तुमुल कीर्त्तनसे मुखरित करने लगी। उस तुमुल निनादसे समग्र वाता-वरण गुंजरित रहता। अनुकूलचन्द्रके उस प्रेमोन्मादी कीर्त्तनके प्रभाववश सबमें भगवद्भक्तिका भाव हिल्लोल मारने लगा।

एक दिन कीर्त्तन करते-करते अनुकूलचन्द्र किशोरीमोहनके घरमें जोरोंसे फूट-फूटकर रोने लगे। उनके कमलके समान नयनके कोरसे धाराकी भाँति अश्रुकण गिर रहे थे। अबतक किसीने ऐसा प्रेमका आवेग तत्कालीन किसी महापुरुषमें नहीं देखा था। उनकी वह हृदयविदारक क्रन्दनध्वनि सुनकर सबकी आँखें छलछला आयीं। बाजा बन्द हो गया, सबके सब अचल मूर्त्तिवत् अश्रुपात करने लगे। विह्वल प्रेममें बार-बार यही कहते—'भगवान्! कहाँ हो तुम? इस आर्त्त मानवताकी रक्षा करने क्यों नहीं आते प्रभु?

आओ नाथ, रक्षा करो, हम पापतापी आर्त्त जनोंकी रक्षा करो।'
यह कहते-कहते आवेशमें आकर उन्होंने किशोरीमोहनको आलिंगन
पाशमें आबद्ध कर लिया। उस प्रेमालिंगनमें कुछ ऐसी शक्ति थी
जिसने किशोरीमोहन में पुलक और सिहरन उत्पन्न कर दिया।
उनके रोम-रोम खड़े हो गये। आँखोंसे गंगा-जमुना बहने लगीं।
इसके उपरान्त उन्मत्तकी नाईं वे कभी जोरोंसे रुदन करने लगे तो
कभी हँसने। इसके क्षणभर बाद ही उन्हें मूर्च्छा आने लगी।
अनुकूलचन्द्रको भी तनिक होश नहीं था,वे बेसुधकी भाँति भावमय
पदोंका गान करते और भगवानको रटते हुए अश्रुविसर्जन कर रहे
थे। उनके कमनीय कण्ठसे निकलनेवाली व्यथित हृदयकी उस
करुणध्वनिसे समस्त वातावरण मूक क्रन्दन करने लगा। वायुके
शिथिल प्रवाहमें रुदनध्वनि सुनी जाने लगी। उस करुण ध्वनिको
सुनकर उपस्थित स्त्री-पुरुष सबके सब हा हरि! हा प्रभु! कहकर
रुदन करने लगे। उस क्रन्दन-ध्वनिसे किशोरीमोहनका घर-द्वार-
छत सर्वत्रसे प्रतिध्वनि निकलने लगी। भीतर आँगनसे उनकी स्त्री
और अन्यान्य बहू-बेटियोंकी क्रन्दनध्वनि फुट पड़ी। दिशा-
विदिशा चतुर्दिक रोती-सी ज्ञात होने लगी। सर्वत्रके उस करुण
स्वरको सुनकर अनुकूलचन्द्रजीमें चेतना-सी दीख पड़ी। उसीके
साथ आप सिंहासनपर जा बैठे। पीछे हरनाथठाकुरका चित्र था
और उसके आगे आप। सिंहासनपर बैठते ही सारा गृह प्रकाश-
पूर्ण हो गया। मानो शत सूर्य और चन्द्र एक साथ गृहमें प्रकाश-
मान हो गये हों। उस दिव्य प्रकाशसे सबकी आँखें चकाचौंधमें
पड़ गयीं।

इसके क्षणभर बाद सब प्रकाश धीरे-धीरे सिमटता गया और
उसीके साथ अनुकूलचन्द्रजीके चतुर्दिक एक प्रकाशमण्डल छा
गया। उनके सर्व शरीरसे विभिन्न प्रकार और रंगकी प्रकाशरेखा
और स्फुलिंग निकल रहे थे। उस दिव्य प्रकाशस्वरूपको देखकर
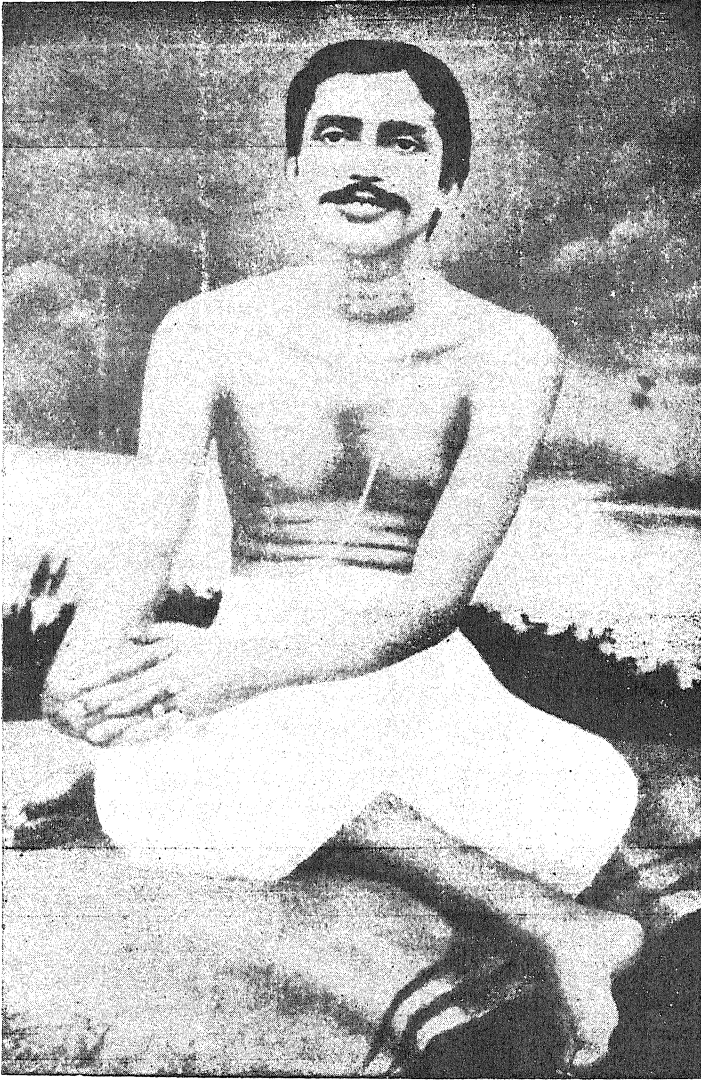
यौवनमें श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र
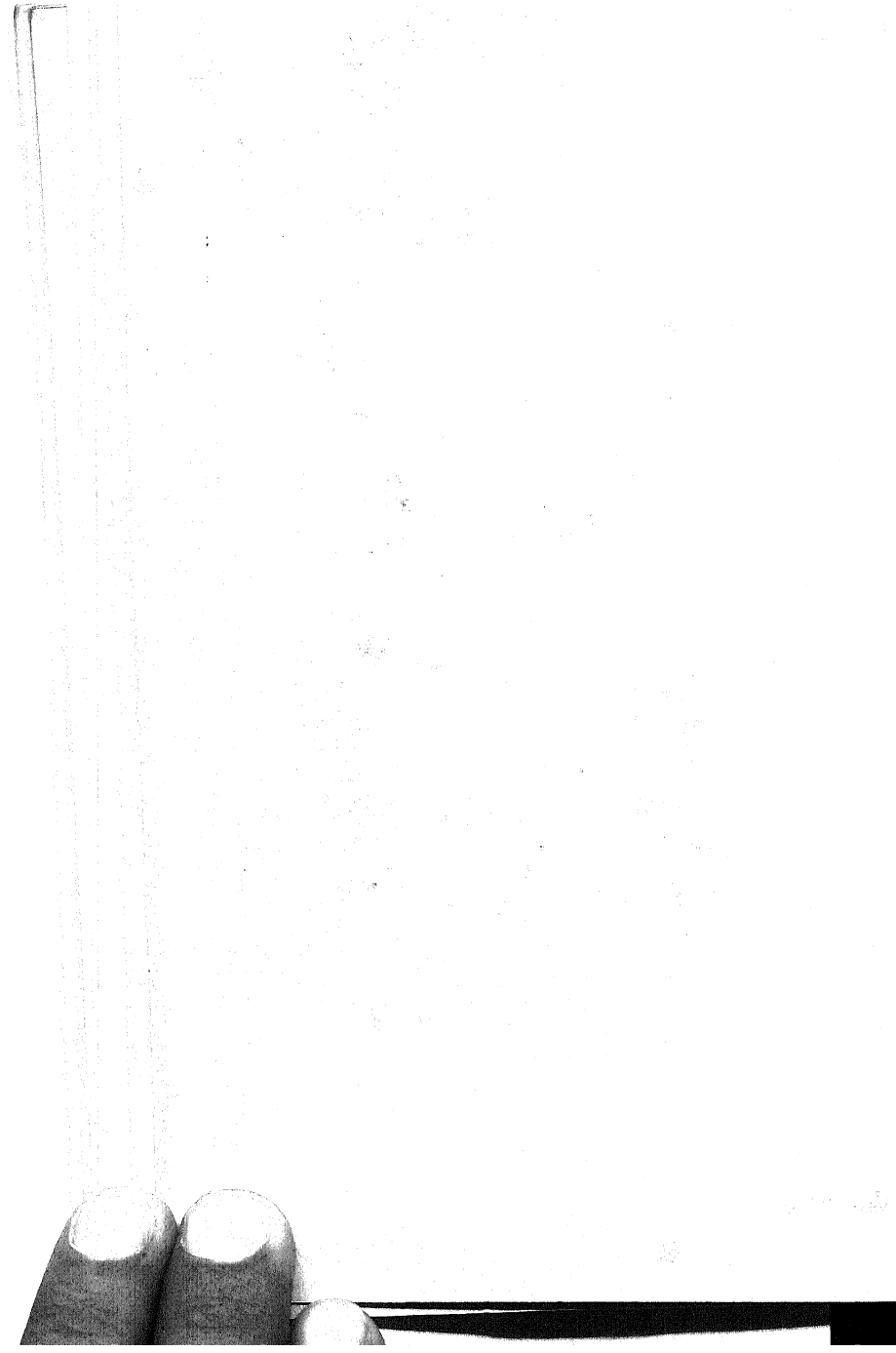
सबोंका शीश झुक गया किशोरीमोहन भी उनके श्रीचरणोंके नीचे साष्टांग प्रणाम करनेके निमित्त लेट गये।

इतनेपर भी वे विश्वास-अविश्वासके झूलेपर झूलते ही रहे। प्रत्यक्ष अभिज्ञतावश कभी समझते कि सर्वगुणाधार अनुकूलचन्द्रसे दीक्षा लेनेपर शान्ति और शक्ति पायी जा सकती है, किन्तु क्षणभर बाद पुनः मनमें सन्देह उत्पन्न होता, बचपनसे जिसके साथ खेलते आये हों उसको सर्वान्तःकरणसे गुरुरूपमें स्वीकार करना क्या उत्तम है ?

कभी किसी दिन अनुकूलचन्द्रको किशोरीमोहनने अन्याय करते न देखा था, बल्कि अन्यायकारीको सत्पथपर लाते, नाम-ध्यानमें विभोर रहते एवं अपरको भी उसपर चलानेका प्रयत्न करते ही देखा था। इतनेपर भी मन शंकाशील बना रहता। ईश्वरीय शक्तिसम्पन्न हैं कि नहीं इसके प्रति मन डाँवाडोल रहता।

एक दिन दोनों साथी टहलने जा रहे थे। कुछ दूर जानेपर ओं-ओंका करुण स्वर सुन पड़ा। ज्ञात हुआ मानों दम घुटते रहनेके कारण कहींसे कोई कातर ध्वनि निकल रही है। थोड़ी दूरपर एक गाय गढ़ेमें गिर गई थी और रस्सीका फाँस लग जानेके कारण उसके मुँहसे ऐसी आवाज निकल रही थी। उस करुण शब्दको सुननेके साथ ही साथ अनुकूलचन्द्रका मुख रक्त-शून्य हो गया। आर्त्त कण्ठसे बोले—"किशोरी, भाई उस गायको बचा।"

उनके उस अनुनयपूर्ण करुणवाणीसे ज्ञात हुआ मानो उन्हींके गर्दनमें फाँस लगी हो। किशोरीमोहन छूरी लेकर गढ़ेमें कूद पड़े। जल्दीसे गर्दनकी रस्सीको काट फेंका। किन्तु जल्दीबाजीमें गायको गर्दनमें जरा घाव लग गया। गायको बचाकर किशोरीमोहन जब ऊपर आये तो देखते हैं अनुकूलचन्द्रके गलेसे खून टपक रहा है और गर्दनमें ठीक उसी जगह कट गया है जहाँ गायका कटा था। विमूढ़की नाईं मुख देखते रह गये किशोरीमोहन! तब क्या

एकात्मबोध चरम अवस्थातक पहुँच गया है इनका ?

संसारमें पर-दुःख-कातर आदमीका अभाव नहीं। किन्तु ऐसा एकात्मबोध, स्पर्शानुभूति और शारीरिक परिवर्त्तन कितने आदमियोंमें देखा जाता है ?

इस बातको किशोरीमोहनने अपनी आँखों देखा था। यह कैसा विचित्र मनुष्य है—कहकर अवाक् भी हुए थे। फिर भी संशय नहीं जाता।

यह संशय नित्य बढ़ता ही गया। कारण, अनुकूलचन्द्र हरनाथ ठाकुरकी जै कहकर कीर्त्तनारम्भ करते थे। सिंहासनपर दिव्य प्रकाशमयी मूर्त्तिका प्रदर्शन करनेके उपरान्त भी आप पागल हरनाथके चित्रको प्रणाम करते थे। उनसे दीक्षा लेनेके लिए जो ही जाता उसको हरनाथ ठाकुर किंवा अपनी माँके पास भेज देते थे, स्वयं कभी दीक्षा न देते। इस अवस्थामें पड़कर किशोरीमोहन यदि संशयमें पड़े तो आश्चर्य ही क्या ?

शीत ऋतुमें संध्या समय दोनों टहल रहे थे। टहलते-टहलते कीर्त्तन-मन्दिरमें जा पहुँचे। उसके उपरान्त आधी रातको लौटते समय किशोरीमोहनको परीक्षा करनेकी सूझी। उन्होंने मन ही मन कहा—'यह अन्तर्यामी हैं तो इसी समय पद्मामें स्नान करें। तब समझूँगा कि अन्तर्यामी हैं,अन्यथा नहीं।' आगे-आगे अनुकूल-चन्द्र जा रहे थे। कुछ दूर जाते न जाते आप रुक गये। फिरकर किशोरीमोहनसे कहा—'पैरके नीचे न मालूम कौन चीज पड़ गयी, मन भिन्ना गया है। जरा स्नान कर लूँ।' इतना कहकर पद्मामें कूद पड़े और डुबकी लगाकर निकले। यह देखकर किशोरीमोहन तो अवाक् रह गया।

फिर भी संशयने पिण्ड न छोड़ा। इस परीक्षाके उपरान्त भी किशोरीमोहन निःसंशय न हो सके। कुछ दूर जाते न जाते मनने कहा—'सम्भव है कोई अपवित्र वस्तु पैरोंके नीचे आ पड़ी हो।

अच्छा, इस बार भी स्नान करें तो समझूँ।'

यह सोचनेके साथ ही साथ अनुकूलचन्द्र लौट पड़े और मुस्कुराते हुए बोले—'देखता हूँ एकबार फिर स्नान करना पड़ेगा, भिन्नाहट अबतक न गयी।' इतना कहकर आपने पद्मामें पुनः प्रवेश किया और चार-पाँच बार डुबकी लगाकर बाहर आये।

किशोरीमोहन मूककी तरह देखते रह गये। इतनेपर भी क्या विश्वास हुआ? इसके निमित्त अनुकूलचन्द्रको नवीन व्यवस्था करनी पड़ी। उन्होंने उनको पागल हरनाथ ठाकुरके यहाँ भेज दिया। वहाँ जाकर आप छः महीनेतक रहे। आप पहलेसे ही तंग थे कि अनुकूलचन्द्र सबको दीक्षा लेनेके लिए वहीं भेजा करते थे।

किशोरीमोहन बार-बार दीक्षा देनेके निमित्त आग्रह प्रदर्शन करते रहे, किन्तु उन्होंने एक न सुनी। पाबनासे जानेवालोंको कहते—गंगाका पवित्र जल छोड़कर तू कूएँका खारा जल क्यों पीने आता है? और लोग तो लौट गये, किन्तु किशोरीमोहन पीछे लगे ही रहे। एक दिन ठाकुर हरनाथने अनुकूलचन्द्रका माहात्म्य वर्णन करना आरम्भ किया।

किशोरीमोहनने प्रश्न किया—ठाकुर, प्रभु जगद्बन्धु, स्वामी निगमानन्द, भोलानाथ गिरि, प्रणवानन्द, दयानन्द, अतुलकृष्ण गोस्वामीके अतिरिक्त अनेक मुसलमान फकीरोंका नाम बंगालमें सुननेमें आता है। अब आप अनुकूलचन्द्रका भी नाम गिनाने लगे। तब आप ही बतलाइये, हमसे संसारबद्ध जीव इनमें कौन बड़ा है कैसे पहचान सकेंगे?

हरनाथ ठाकुर—देख, जगत्में दो प्रकारके महापुरुष होते हैं, देवकोटि और ईश्वरकोटि। ईश्वरकोटिमें भी अवतार और अवतारी ये दो विभिन्नतायें होती हैं। अनुकूलचन्द्रजी अवतारी हैं। स्वेच्छासे अवतीर्ण हुए हैं। उनसे बड़ा कोई नहीं है।

किशोरीमोहन—अवतारी और अवतारके विषयमें पूर्ण प्रकाश डालनेकी कृपा करें।

ठाकुर हरनाथ—जो अवतारोंके जन्मदाता होते हैं उनको अवतारी कहा जाता है। जब मानवताके विनाशका महा-संकट उत्पन्न होता है जब अंशावतारोंके बार-बार भेजते रहनेपर धर्मका विनाश होनेका चरम मुहूर्त्त आ जाता है उस समय अवतारी पुरुष स्वेच्छापूर्वक अवतीर्ण होते हैं और धर्मकी संस्थापना करनेके निमित्त नव-नव लीला और नव परिभाषा प्रदान करते हैं धर्म-ग्लानिके इस चरम संकटकालमें अनुकूलचन्द्रके रूपमें वह अवतारी पुरुष ही धरा-धामपर नर-कलेवरमें अवतीर्ण हुए हैं।

अनुकूलचन्द्रके विषयमें ठाकुर हरनाथके मुखसे आन्तरिक प्रशंसा सुनकर किशोरीमोहनको विश्वास हुआ। रास्तेभर सोचते आये—साधारण आदमी किसी महापुरुषको तो पहचान ही नहीं सकता तब अवतारी पुरुषको कैसे पहचान सकता है? अपने आपको वह यदि स्वयं प्रकटित न करें, अपने आपको स्वयं न परिचित करा दें, तो मनुष्यमें कौन-सी शक्ति है कि वह उनको पहचान ले। किन्तु हरनाथ ठाकुर ऐसे महापुरुषकी आँखें तो भूल नहीं कर सकतीं। जब आप कहते हैं तो अनुकूलचन्द्र अवतारी पुरुष निश्चय ही हैं।

किन्तु बेचारे किशोरीमोहन यह न जान सके कि अनुरागरूपी कसौटीसे बढ़कर महापुरुषके जाननेकी दूसरी कसौटी नहीं होती। यही एक कसौटी है जिसके सम्मुख भगवान झुकनेको बाध्य होते हैं।

भगवान रामचन्द्रको ब्रह्मर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्रके समान दिव्य शक्तिसम्पन्न साधकोंने जैसे पहचाना था, उसी प्रकार आध्यात्मिक शक्तिसे हीन जंगली हनुमानने भी पहचाना था। भगवान रामकृष्ण परमहंसदेवको केशवचन्द्र, विजयकृष्ण

गोस्वामी, तोतापुरी और भैरवी माताके समान उच्च साधकोंने जैसे पहचाना वैसे ही पहचाना आध्यात्मिक जगतसे अज्ञात और आख्यात गिरीश घोष ऐसे मदिरासक्तने। उनके अकपट, स्वच्छ, आन्तरिक प्रेमके सम्मुख प्रभुको अपना रूप प्रकटित करना पड़ा।

किशोरीमोहन अपने ग्राममें फिरे। फिरे तो ठीक, किन्तु एक बार और परीक्षा करनेका मन-ही-मन निश्चय किया।

एकोनविंश अध्याय

कीर्त्तनयुगमें जो सर्वप्रथम सहचर हुए वह थे अनन्तनाथ। आप बाल्य-जीवनके सहपाठी, डाकटरी जीवनके सहायक और कम्पाउण्डर थे तथा कीर्त्तनयुगके प्रधान सहयोगी बने।

डाक्टर अनुकूलचन्द्रने मनोरोग-चिकित्साके आरम्भमें डिस्पेन्सरीका समस्त कार्यभार आपके हाथोंमें दे दिया था। किन्तु हठात् स्त्री-वियोग हो जानेके कारण आपका मन संसारसे उखड़ चुका था। सन्तान-सन्ततिका ममताबन्धन भी न था। इससे आध्यात्मिक उन्नतिकी आशामें साधु-सन्यासियोंके पीछे फिरते रहे। भागीरथीके उपकूलपर रहते हुए भी एक बूँद जलके निमित्त तृष्णार्त्त चातककी नाईं चिल्लाते रहते।

अनन्तनाथमें भगवत्प्राप्तिकी आकांक्षा बहुत ही तीव्र थी। साधु-सन्यासियोंसे सीखकर नाना प्रकारका आसन-प्राणायाम और मन्त्रजाप करते रहे। साधना करनेके निमित्त ग्रामसे सुदूर एक साधना-कुटीर भी बनवाई थी। उसी एकान्त स्थानपर कठोर साधना करते रहते। चार-पाँच दिनतक बिना अन्न-जलके नाम-ध्यान होता आपका। इस कठोर साधनामें कभी-कभी तो हृदयस्पन्दन बन्द और नाड़ी विलुप्त हो जाती। उस समय समस्त शरीरपर लाल चींटियाँ चिमट जातीं, मक्खियाँ भिनभिनाने लगतीं। ऐसे कठोर तपस्वी थे अनन्तनाथ !

इसके फलस्वरूप अद्वैतानुभूति, शब्दश्रवण और ज्योतिदर्शन आदि बहुत-सी उपलब्धियाँ भी हो चुकी थीं। फिर भी तृप्ति न हुई, शान्ति न मिली। अनुभूति प्राप्त करनेके निमित्त तो वह तपस्या करते न थे, करते थे भगवत्प्राप्ति और भगवत्संगलाभके निमित्त। किन्तु इतनी कठोर तपस्याके उपरान्त भी वह प्राप्त न

हो सका। जिस शरीरसे भगवद्लाभ न हो उसको रखनेसे क्या लाभ ? उन्होंने शरीरपात करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया।

आत्महत्याके प्रथम एक बार और उन्होंने प्रयत्न किया। करुण कण्ठसे पुकार करना आरम्भ किया—'भगवान् तुम कहाँ हो ? मुझपर दया करो, दर्शन दो। शबरीको दर्शन दिया, अहिल्याको पदधूलि प्रदान करके तारा। तब मुझको दर्शन क्यों न दोगे ? कौन-सा ऐसा पाप किया है जिससे दर्शन नहीं देते ? हमें बतला दो, मैं प्रायश्चित करूँगा। इतने नयनाश्रु बहानेपर भी वह दूर न हुआ ? मैं स्त्री-पुत्रकी कामना नहीं रखता। उनको ले लिया इसके लिए मुझे तनिक दुःख नहीं। केवल आपको चाहता हूँ। दया करो। दर्शन दो।

दूसरे दिन भी रुदन, वही चीत्कार। 'प्रभो आजका दिन भी व्यर्थ गया। एक-एक करके नित्य जीवन नष्ट होता जा रहा है। कलका दिन भी वृथा चला गया। तुम न आये। इस सामान्य आयुके दिन क्या यों ही व्यर्थ हो जायँगे। मेरा रुदन क्या आप नहीं सुन पाते ? वह क्या आपके कानोंतक नहीं पहुँचता ? उसमें क्या शक्ति नहीं ? भगवन् ! आप कहाँ हैं ? आप क्या सचमुच हैं ? ना, सब कुछ माया है, मिथ्या है ? मनकी भूलभुलैया है ? मरीचिकामात्र है ? गीता, रामायण—यह सब क्या असत्य है, छलना है ? मीराने जब आपको देखा था, जटायुने जब आपका स्पर्श पाया था तब आपको छलना कैसे मानूँ।

पाँच दिन बीत गये एकान्त पुकार करते हुए। छठे दिन उन्होंने फाँसी लगाकर मरनेका निश्चय किया। धोती और चादर-को लपेटकर रस्सी-सी बनाया और धरनमें बाँधकर फाँसी लगानेकी तैयारी करने लगे

किन्तु भगवद्लीला अचिंतनीय और कल्पनातीत होती है। भगवान किससे क्या कराते हैं, किस क्षण कराते हैं, उसे कोई नहीं

जानता। जीवके भाग्याकाशमें उनके आविर्भावका शुभ लग्न कब आता है, वह तपस्याके माप-दण्डसे नहीं नापा जाता।

भक्तोंके सहित डिस्पेन्सरीमें बैठे अनुकूलचन्द्र तत्त्वालोचनामें व्यस्त थे। एकाग्रचित्तसे उनके अमृतोपम वचनोंका सभी पान कर रहे थे। बाहर तेज हवाके साथ टिप-टिप पानी गिर रहा था। अकस्मात् अनुकूलचन्द्रजीकी वाणी रुद्ध हो गयी, चिंतित रूपमें सर इधर-उधर घुमाने लगे। क्षणभर बाद ही हठात् बाहर मैदानकी ओर दौड़ निकले। अँधेरी रात, हाथको हाथ न सूझता था। बाहर प्रकृतिकी ताण्डव लीला चल रही थी। काशीपुर वहाँसे दो मीलकी दूरीपर था। किंतु अनुकूलचन्द्र दौड़ते चले गये और साधना-कुटीरके द्वारपर पहुँचकर दर्वाजेको धक्का देते हुए पुकारा—'अनंत रे, दर्वाजा खोल।'

अनन्तनाथके कार्यमें विघ्न हुआ। गलेकी रस्सीको निकालकर छिपानेकी जगह खोजने लगे। उधर किवाड़पर चोटपर चोट पड़ रही थी। संकल्पमें विघ्न हुआ। फाँस अभी छिपा भी न पाये थे कि किवाड़की अर्गला तोड़कर अनुकूलचन्द्रने उन्हें आ पकड़ा। आकस्मिक घटनासे अनन्तनाथ अप्रतिभ बन गये।

छातीसे उनको बाँधते हुए अनुकूलचन्द्र कहने लगे—'मुझको एकाकी छोड़कर क्यों भागनेकी चेष्टा करते हो भाई? भगवानके लिए? और भगवान जो दिन-रात तुम्हारे पीछे-पीछे घूमते रहते हैं उसके प्रति एक बार उलटकर देखते भी नहीं।'

विह्वल, विस्मितकी नाई मुँह देखते रह गये अनन्तनाथ। आँखोंसे अश्रुधारा गिरने लगी। उनका शीश अनुकूलचन्द्रके चरणोंमें झुक पड़ा। जीवनके चरम संकट मुहूर्त्तमें अपने आराध्य देवताको पा लिया।

दो मीलकी दूरीसे आत्म-हत्याके संकल्पको आप कैसे जान सके? इस बातका सुस्पष्ट उत्तर आप नहीं देते। बार-बार प्रश्न

करके भी साफ उत्तर न मिला। 'मनमें एक ऐसा ही भाव उठा था' यही गोल-मटोल उत्तर होता है आपका। किन्तु जब यह प्रश्न होता है कि, 'जिस बातकी खबर दूसरा नहीं पाता उसको आप कैसे जान जाते हैं ?' तो आप चुप रह जाते हैं। प्रश्नको ही टाल देते हैं।

आज उत्तर दें या न दें, किन्तु उस दिन कपड़ेकी रस्सी लपेटे हुए अनन्तनाथको जब माता मोहिनीदेवीके हाथोंमें मंत्र देनेके लिये कहा उस दिन सभी जान गये। तबसे आप लाख इन्कार करें अनन्तनाथने 'ठाकुर' कहकर सम्बोधन करना आरम्भ किया।

आप इस सम्बोधनको सुनकर संकुचित हो जाते हैं, दुःखी हो पड़ते हैं। किन्तु जिसने जाना है, देखा है, प्रत्यक्ष दर्शन किया है वह भी इनके अस्वीकार करनेके धोखेमें नहीं पड़ते। उत्तरमें कहते हैं—भगवान रामने क्या कभी अपनेको अवतार कहा था ? भगवान कृष्ण क्या कभी अपनेको भगवान कहते थे ? भगवान रामकृष्ण किंवा गौरांग महाप्रभुने अपनेको क्या अवतार बताया है ? यह तो भक्तोंके प्रेमके पत्थरकी रगड़में पड़कर जब आत्मस्थ अवस्था या आवेशावस्था हो जाती है उस समय बात प्रकटित हो पड़ती है। बाल्य-बन्धु अनन्तनाथ भी अपने प्राणको चरम संकटमें डालकर प्रेममयके असली रूपको उद्घाटित करनेमें समर्थ हुए थे।

मनमोहिनीदेवीने उसी रात अनन्तनाथको मंत्र प्रदान किया। इस प्रकार ठाकुरके सर्वप्रथम कृपा-किरणके अधिकारी आप ही हुए। प्रभुकी असीम अनुकम्पाके आदि अधिकारी आप ही माने जाते हैं।

विंश अध्याय

इस कीर्त्तनयुगके जो द्वितीय और तृतीय सहचर बने थे वे थे किशोरीमोहन और दुर्गानाथ सान्याल। दुर्गानाथजी तो अबतक जीवित हैं और ठाकुरके दर्शनकी आशामें वैद्यनाथ धाममें निवास करते हैं। हिमाईतपुर, नाजिरपुर, प्रतापपुर, छातनी और काशीपुर नामक जो ब्राह्मणोंके पञ्चग्राम पाबनाके निकट अवस्थित हैं, उन्हींमेंसे आपभी एक कुलीन ब्राह्मण हैं। नाजिरपुर आपका जन्म-स्थान था। नायबके पदपर काम करते थे। वयसमें ठाकुरसे आठ वर्ष बड़े हैं। उक्त पञ्चब्राह्मण ग्रामोंमें पारस्परिक खान-पान था। एक ही शाखाकी ब्राह्मण-मण्डली होनेके कारण सबमें आपसी सम्बन्ध था। इससे सबको सब जानते थे।

पाप और भ्रष्टाचारका राज्य बढ़ते देख धार्मिक ब्राह्मणोंने मिलकर ब्राह्मण-सभाका निर्माण किया था। बारी-बारीसे इन पञ्चग्रामोंमें सभा और कीर्त्तन प्रत्येक सप्ताह होता रहता। दुर्गा-नाथजीने आठ वर्षके वयसमें अनुकूलचन्द्रजीको कीर्त्तनमें गाते और थिरकते देखा था।

सब करके भी ब्राह्मणसभा कुछ न कर सकी। कीर्त्तन और सभामें व्याख्यान देनेवाले अधिकांश व्यक्तियोंमें मछली-मांस-अण्डाकी कौन कहे, मदिरातक प्रवेश कर चुकी थी। परिणामतः उनके लिये ब्राह्मणसभाका आयोजन गलेकी कलाबाजी-प्रदर्शनकी रंग-भूमि बन गया, धर्म-प्रचारका साधन नहीं। क्रमशः दल-बन्दियाँ बँध गयीं। सिर्फ हिमाईतपुर और नाजिरपुरमें ही यह कीर्त्तनकी दल-बन्दी एक सौ नौकी संख्यामें पहुँच गयी। इन सारी बातोंको दुर्गानाथने स्वयं देखा था।

वही दुर्गानाथ नियादी ज्वरसे आक्रान्त हो पड़े। दो मासतक ज्वर भुगतते रहे। ज्वर जब छूटा तब नाना प्रकारके पेट सम्बन्धी

रोग हो गये। इसके पीछे वर्षों दवा कराते रहे। कलकत्ताके बड़े-बड़े डाक्टर और कबिराजोंकी दवा भी करायी, किन्तु फल विपरीत हुआ। क्रमशः उनका विशालकाय लम्बा शरीर कङ्कालमात्र रह गया। अतिसारके कारण दिन-रात पायखाना दौड़ने लगे। पुराना चावल भी न पचा सकते। सर्वत्रसे निराश होकर बैद्यनाथ-धाम धरना देने आये।

सकलकामना पूर्णकारी वैद्यनाथ महादेवके अतिरिक्त अब कोई आशा न थी। वैद्यनाथ बाबाके आशीर्वादसे ही जन्म हुआ था उनका। उन्हींके निकट प्राणकी भिक्षा माँगने पहुँचे। चांद-सूर्य पण्डाके पुत्रको पत्र लिखकर मकान ठीक कराया और एक दिन स-परिवार देवघर स्टेशनपर आ पहुँचे। स्टेशनके निकट ही मकान था। वहाँसे डाक्टर्सलौज नामक सैनिटोरियममें कुछ दिनके उपरान्त चले आये।

सारा दिन वैद्यनाथ मन्दिरमें पड़े रहते और गुरुप्रदत्त शक्ति-मंत्रका जाप करते, यही दो काम था। धीरे-धीरे धरना देते महीना पार कर गया; किन्तु आशुतोषने आशा पूर्ण न की। शरीर छिन्नसे छिन्नतर होता गया, शरीरपर सूजनके चिन्ह प्रकटित हो गये। तब क्या जीवनका यही शेष है भगवन्? मन्दिरके सामने चिल्लाने लगे दुर्गानाथ

महादेवने तो कोई उत्तर न दिया, किन्तु दर्शनार्थियोंकी झुण्ड मेंसे किसीने कहा—'बैजूकी पूजा किये बिना औढरदानीका कमण्डलु नहीं खुलता। बैजूकी पूजा करें प्रथम।'

बैजूकी खोजमें लगे दुर्गानाथ। इसी खोजमें आप बालानन्द ब्रह्मचारीसे मिले। उनसे भी प्रार्थना की। उसके बाद तपोवनके स्वामी श्रीमोहनानन्दजीके चरणोंमें भी गिरे, किंतु कुछ भी न हुआ। रोग बढ़ता ही गया। एक दिन भग्न हृदय लेकर वैद्यनाथ भगवान्के सम्मुख बिलख पड़े—"जीवन दिया था एक दिन

तुमने। अपनी उस थातीको अब ले लो प्रभो। इतना दु:ख अब सहन नहीं होता। इस पार रखना हो तो रोगमुक्त करो और उस पार ले जाना हो तो बस आज उठा लो।

सचमुच प्रभुकी निद्रा भंग हुई। ढाई बजे रातमें औढरदानी वैद्यनाथ ब्राह्मणका वेश बनाये पहुंचे। उनके विशालकाय गौर शरीरपर श्वेत उपवीत विराजित था, पाँवमें खड़ाऊँ पहने खट-खट खटाखट करते दुर्गानाथके सम्मुख आ खड़े हुए। उनके रक्ताभ चरणोंसे दिव्य प्रकाश निकल रहा था। कुछ क्षण अनिमेष नेत्रोंसे दुर्गानाथके निष्प्रभ मुखकी ओर देखनेके उपरान्त बोले—"कोई भय नहीं, ठाकुर अनुकुलचन्द्रके यहाँ चले जाओ। वह तुम्हारे घरके निकट ही रहते हैं। उनके यहाँ जाकर नाम-जप करनेसे रोग छूट जायगा।"

यह नवजीवनप्रदायिनी वाणी सुनते ही दुर्गानाथकी बाहें वैद्यनाथ प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़नेके लिए बढ़ीं। किन्तु बीचहीमें नींद खुल गई। देखते हैं कि न तो वह दिव्य कान्ति सम्पन्न देवमूर्ति है और न उनका प्रकाशपूर्ण श्रीचरण ही। वह अपना हाथ फैलाये बिछावनपर बैठे हैं मात्र।

आनन्दका ठिकाना न रहा दुर्गानाथको। देवी पण्डाके घर चार बजेरातमें ही पहुँचे और उनको सोतेसे जगाकर प्रत्यादेशका वृत्तान्त सुनाया। उसके उपरान्त अपने तीर्थगुरुके श्रीचरणोंमें अर्घ्य चढ़ाकर उसी दिन बारह बजेकी गाड़ीसे रवाना हुए। उस समय वैद्यनाथ धामसे दिनमें केवल एक ही बार ट्रेन जाती थी। चार फरवरी उन्नीस सौ सतरहकी रात्रिमें उन्होंने स्वप्न देखा था और पाँव तारीखको वैद्यनाथधाम कोर्टके सामने सवार हुए। गाड़ीपर चढ़ते ही मुँहसे "जय, औढरदानी बाबा वैद्यनाथकी जय" स्वयमेव निकल पड़ा।

वैद्यनाथ भगवान्, तारकेश्वर महादेव और कलकत्तेकी माँ

काली आदि देव-देवियोंने जीवनसे हताश और विपन्न धरना देनेवाले कितने व्यक्तियोंको प्रत्यादेश प्रदान कर ठाकुरके शरणाश्रित होनेके लिये भेजा था उसकी क्या गिनती की जा सकती है? या इस जीवनीमें स्थान देनेकी जगह ही है? फिर भी यहाँ दो घटनाओंका बर्णन दिया जा रहा है।

इसी प्रकारका दूसरा प्रत्यादेश मिला था श्रीविनोदबिहारी घोषको। आप कालना ग्राम, पो० कालना, जिला बर्द्धवानके रहनेवाले हैं आप कपड़ेके बहुत बड़े व्यापारी हैं। इस समय भी आप सशरीर विद्यमान् हैं और आपकी वयस पचपन सालकी है।

आजसे तीस वर्ष प्रथम आपको न्युमोनिया हो गया था। उससे मुक्त होनेके उपरान्त दाहिने श्वासयन्त्र और रीढ़में सर्वदा दर्द रहने लगा। कभी-कभी यह वेदना इतनी तीव्र और असह्य हो जाती जिससे आप आत्म-हत्या करनेके निमित्त दौड़ पड़ते। ससुरालवालोंके कहने-सुननेपर आप भी बाबा वैद्यनाथके श्रीचरणों में शरण लेनेके निमित्त पहुँचे और उमाचरण पण्डाके प्रबन्धसे वैद्यनाथ मन्दिरके निकट एक दुमंजिला मकान किरायेपर लेकर रहने लगे। चलने-फिरनेमें बहुत कष्ट होता था, इसलिए छतपर बैठे-बैठे ही वैद्यनाथ भगवान्के मन्दिर और ध्वजाकी ओर कर जोड़े दिन-रात विनीत प्रार्थना करते।

इस प्रकार तीन मास व्यतीत हो गया, किन्तु चन्द्रशेखरने दया न की। निराश हो गये विनोद घोष। खाना-पीना सब छोड़ दिया। देवाधिदेव महादेवके मंदिरकी ओर देखते हुए अश्रुविसर्जन करते हुए कहने लगे—"दयानिधि, तुमने भी कृपा न की तो अब कहाँ जाऊँ? किसके शरणमें गिरूँ नाथ? इस असहनीय यन्त्रणासे कौन उबारेगा प्रभो? सब कहते हैं कि तुम्हारे द्वारसे कभी कोई वंचित नहीं होता। एक मैं ही अभागा तुम्हारे द्वारसे

वंचित होकर फिर जाऊंगा औढरदानी ?" इतना कहकर व्याकुल हो क्रन्दन करने लगे।

रात्रिमें प्रकाश करते एक दिव्य तेजोमय जटा-जूटधारी महापुरुष हठात् आ उपस्थित हुए। आनेके साथ ही कहा—"रुदन मत कर बेटा। यह प्रारब्धका फल है। समय आ पहुँचा है। सद्गुरुका हाथ पड़ते ही सब अच्छा हो जायगा। घबड़ानेकी बात नहीं।'

यह अमृतवाणी सुनाकर मूर्त्ति अन्तर्ध्यान हो गई।

इसके दूसरे दिन ही सद्गुरुकी खोजमें निकल पड़े विनोदबिहारी। खोज करनेमें बहुत दिन लगा। व्यवसायका सम्बन्ध जहाँ-जहाँपर था आपने सर्वत्र सद्गुरुकी खोज करनेको पत्र लिखा। स्वयं पता लगानेके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोंसे घूमते-फिरते नौगाँव जा पहुंचे। वहींपर आपकी ससुराल भी थी।

उस समयतक ठाकुर अनुकूलचन्द्रका नाम सर्वजन-विदित न हुआ था। उस स्थानपर न तो कोई उनका शिष्य ही रहता था और न कोई नाम ही जानता था। भाग्यक्रमसे विनोदबिहारी औषधि खरीदनेके उद्देश्यसे एक डिस्पेन्सरीमें गये। कम्पाउण्डरसे बातें करते समय अपने कष्टका वर्णन भी कर दिया। कम्पाउण्डर केष्टोचन्द्र दासने कहा 'आप ठाकुर अनुकूलचन्द्रके यहाँ क्यों नहीं जाते? वे पहुँचे हुए सद्गुरु हैं। मैं भी अपने परिवारके एक आदमीके रोगके लिये उनके चरणोंका दर्शन कर आया हूँ। लाभ भी हुआ है।'

अनुनय करते हुए विनोदबिहारींने कहा—'मैं अभी चलनेको प्रस्तुत हूँ। मुझको ले चलें। मेरा वह स्थान परिचित नहीं, आपके ठाकुरको पहचानता नहीं। वहाँ कहाँ रहूँगा?' इस निदारुण यन्त्रणासे दिन-रात चिल्लाता रहता हूँ। कौन मुझको अपने यहाँ रहने देगा? ज्ञात होता है मुझ दिशिहाराको मार्ग बतानेके लिये

ठाकुरने ही आपको भेजा है। कृपया मुझको वहाँतक पहुँचा दें।'

क्या जाने कैसे क्या हुआ, वह कम्पाउण्डर तैयार होकर उसी दिन पाबनाके लिये रवाना हो गया। यथासमय दोनों आश्रम पहुँचे। ठाकुर पद्माके किनारे दण्डायमान थे। विनोदबिहारीको देखते ही बोले—'आ गया तू, बहुत अच्छा किया।' इतना कहते हुए स्वभाव-सुलभ-विधिके अनुसार विनोदबिहारीको हृदयसे लगा लिया और पीठपर हाथ फेरते हुए कुशल-सम्वाद पूछने लगे। उनके स्नेहस्नात करुणापूर्ण हाथके आगे लोहा जैसे चुम्बकके सम्मुख निरुपाय हो जाता है वैसे निरुपाय हो गये विनोद। एक निरंकुश शक्ति यन्त्रणाके स्थानको खींचने लगी। किन्तु उसके आकर्षणमें क्षणभरके निमित्त यन्त्रणा केन्द्रायित होकर सहस्रगुण बढ़ गयी। पलभरके निमित्त उस विषम कष्टसे बेहोश-से हो गये। निमिषभरके बाद ही वह हस्त समस्त वेदना-यन्त्रणाको दूरीभूत करता हुआ वहाँसे हट गया। उसके हटनेके साथ ही साथ विनोद-विहारीका जन्मान्तर हो गया। यन्त्रणा, वेदना और कष्ट सर्वदाके निमित्त दूर हो गये।

डाक्टर बनबिहारी घोष, एल० एम० एस० फरीदपूर जिला-स्थित चण्डीदासी नामक ग्रामके कुलीन कायस्थ हैं। विद्यार्थी जीवनमें क्रान्तिकारी दलसे आपका सम्पर्क था। देश-मुक्ति-यज्ञके पुजारियोंका गीता एक प्रधान अवलम्ब थी। उसके पाठसे धर्मके प्रति आपकी प्रगाढ़ भक्ति हो गई। आप बेलूरमठ आने-जाने लगे। उस सयय श्री माता शारदादेवी जीवित थीं। तरुण वयस देखकर इनके प्रति माँका ममत्व बढ़ गया। ब्रह्मानन्दस्वामी भी कृपादृष्टि रखने लगे।

बेलूरमठके गमनागमनका पता आपके पिता विनोदबिहारीको लगा। अपने एकमात्र पुत्रका सन्यासियोंके दलमें आना-जाना उन्हें अच्छा न लगा। स्वामी विवेकानन्द बननेकी आशामें बंगाली

युवक धड़ाधड़ सन्यासी बन रहे थे उन दिनों। आनन्द-मठमें वर्णित सन्यासी-विद्रोहका प्रभाव भी तरुण बंगालियोंपर बहुत पड़ा था। उन्हें भय हुआ कि एकमात्र पुत्र कहीं सन्यासी न हो जाय।

विनोदविहारीजी थे काली भक्त। नित्य गंगास्नान और कालीघाट जाकर माँ कालीकी पूजा-अर्चा करना आपका नियम था। एक तो कुलीन कायस्थ उसपर शक्तिउपासक तब भला माँस-मछली न चले? उन्होंने पुत्रपर कड़ी दृष्टि रखनी आरम्भ की।

कड़ाई जैसे-जैसे बढ़ी पुत्रका मन बेलूर और दक्षिणेश्वरकी ओर वैसे-वैसे आकृष्ट होने लगा। अवसर मिलते ही वह मठकी ओर चल देते और वहाँके कीर्त्तनमें योग प्रदान करते। क्रमशः दीक्षा लेनेका दिन भी निश्चित हो गया। किन्तु स्वामी ब्रह्मानन्दके ज्वरसे आक्रान्त हो जानेके कारण तिथि बढ़ा देनी पड़ी।

इसी बीच प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नरेन्द्रनाथ बैनर्जीसे मुलाकात हुई। ग्यारह सालकी नजरबन्दीके बाद जेलसे निकले थे वे। बहुत दिनोंके उपरान्त मुक्ति-यज्ञके सहयात्रियोंसे मिलनेका अवसर आया था। बातोंके सिलसिलेमें भगवान रामकृष्ण और विवेकानन्दका भी जिक्र चल गया। बैनर्जी महाशयने कहा—रामकृष्ण परमहंस पुनः धरापर अवतीर्ण हो चुके हैं और अपने कथनानुसार उन्होंने पुनः ब्राह्मण वंशमें ही जन्म ग्रहण किया है। तुम्हें दीक्षा लेनी है तो उनसे लो। दोनों मित्रोंमें उन्नीस दिन तर्क-वितर्क चलता रहा। अन्तमें बनविहारी घोष नये अवतारके यहाँ जानेको तैयार हो गये।

किन्तु जानेका अवसर मिला चचेरी बहनके विवाहोत्सवमें। व्यवसाय छोड़कर आपके पिताजी घर न जा सकते थे, इसलिए इनको जाना पड़ा।

वनबिहारी घोस घर गये तो जरूर, किन्तु दूसरी ट्रेनसे ही

लौट आये और बीचमें उतरकर पावना-आश्रममें जाकर ठाकुरसे दीक्षा ले ली। पिताजीके आज्ञानुसार यथासमय कलकत्ता पहुँच भी गये। दीक्षाकी बात किसीको ज्ञात न हुई।

किन्तु एक दिन उनके पिताजीको सन्देह हुआ। आपने मछली-मांस खाना छोड़ दिया था। दो-चार दिन तो किसीको पता न चला, किन्तु एक दिन उनके पिताजीने पकड़ ही लिया। तबसे उनपर सख्ती बढ़ गई।

इसके कुछ महीने बाद विवाहादि कार्यसे निवृत्त हो विनोद बाबूके भाई जब कलकत्ता फिरे तो बात ही बातमें भण्डा फूट गया। विवाहके दिन घरपर दो-चार घण्टे रहनेकी बात खुल गयी। कालेजसे लौटकर जो बनबिहारी घोष डेरेपर आये तो अब कहाँ जाते हैं। मारपर मार पड़ने लगी, अन्तमें ठाकुरके यहाँ जाने और दीक्षा लेनेकी बात उन्हें कबूल करनी पड़ी।

विनोदबिहारी थे कट्टर शाक्त। बंगालमें मांस मछली न खाना अमंगलप्रद समझा जाता है। लगे आप मांस खानेपर जोर देने। लड़का भी प्रणपर अटल था। मारपर मार पड़ी फिर भी न हिला। अन्तमें विनोदबिहारीने नरेन्द्रनाथ बैनर्जीको कुलविनाशक शत्रु समझना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे यह मारपीट चरमसीमातक पहुँच गयी। किन्तु यह सब किया जा रहा था पुत्रके अमंगलकी आशंकावश। एक दिन यह मार-पीट सख्त हो गयी। अन्तमें बनबिहारी घोषने कहा—'पिताजी, मैं आपका एकमात्र पुत्र हूँ। मेरे सिवा आपको कोई दूसरा नहीं जिससे आप प्रेम कर सकें। उसी प्रकार आपके अतिरिक्त दुनियामें मेरा अपना कहलानेवाला कोई भी नहीं। माँ, भाई किंवा अपना दूसरा आदमी भी दुनिया में कोई नहीं जिससे मैं प्रेम कर सकूँ किंवा उनका प्रेम प्राप्त करूँ। आपके पितृ-हृदयमें वात्सल्य रसकी जो अन्तःफल्गु बहती रहती है वह क्या कभी

प्रकटित न होगी ? मैं क्या आपके उस प्रेमवारिसे सर्वथा वंचित ही रह जाऊँगा ?' पुत्रकी इस कातर उक्तिको सुनकर पिताकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये।

इसके कुछ ही दिनोंके बादकी बात है, बिनोदबिहारी घोषने स्वप्न देखा। उसके उपरान्त उन्हें नींद ही न आई। रातभर घरमें चहल-कदमी करते रहे। सबेरा होनेके साथ ही साथ उन्होंने अपने पुत्रको जगाया और बोले—"देखो, मैं गंगास्नान करके जबतक न लौटूँ, तुम बाहर मत जाना।'

गंगास्नान करके आप सीधे डेरेपर आ गये। कालीघाट जानेके नित्य नियममें उलट-पुलट होते देख पुत्रके मनमें आशंका हुई। धोती-गमछा सूखानेके निमित्त तारपर रखनेके उपरान्त आप बाजारकी ओर चल पड़े। एक दूकानसे फल-फूल खरीदनेके उपरान्त पुत्रसे बोले—'चल, मैं तेरे ठाकुरका दर्शन करने चलूँगा। महापुरुषके निकट खाली हाथ न जाना चाहिये, इसलिये कुछ फल-फूल भी खरीद लिया है।'

उन दिनों ठाकुर कलकत्तेमें ठहरे हुए थे। बनबिहारी घोषने इस बातकी खबर अपने पिताको न दी थी। वे बहुत चिन्तित हो पड़े। वहाँ जाकर कहीं गुरुदेवके साथ अभद्र व्यवहार न कर बैठें इस भयसे उन्होंने कहा—'आप ठाकुरके निकट किस उद्देश्य से जा रहे हैं, यह बात जबतक न कहियेगा, तबतक मैं न जाऊंगा। वहां जाकर मैं अपनी आँखोंके सामने इतर व्यक्तिकी नाईं व्यवहार कहले नहीं देखना चाहता।'

पिताने पुत्रको समझाते हुए कहा—'माँने आज कृपा की है। रात अभी जगा ही था कि झमझम पायजेबका शब्द करती मुक्तकेशी माँ काली उपस्थित हुईं और अपने स्वर्णकङ्कणयुक्त बाहुसे इंगित करती हुई ठाकुरसे मंत्र लेनेका आदेश प्रदान कर गई हैं। मैं

अपने काली माताके निर्देशानुसार मंत्र लेने जा रहा हूँ ! चल, मुझको अपने ठाकुरके यहाँ ले चल।

मार्गप्रदर्शनके निमित्त पिताने पुत्रसे अनुनय भरे शब्दमें प्रार्थना की। उसी दिन उनकी दीक्षा भी हुई। अस्तु।

वैद्यनाथधामसे चलकर दुर्गानाथ उसी दिन रातको घर पहुँचे। किन्तु उनकी आंखोंमें नींद कहाँ ? सूर्योदय होनेके साथ-ही-साथ मुँह-हाथ धोकर ठाकुरसे मिलनेके निमित्त चल पड़े। रास्तेमें ही अनन्तनाथका गृह पड़ता था। उनके पुष्पोद्यानके फाटकपर पहुँचते ही आंखें वहांका दृश्य देखकर अटक गयीं। दो दिव्य ज्योति-सम्पन्न मूर्त्तियां उद्यानमें टहल रही हैं। एकके हाथमें दोना है। हरिनाम कीर्त्तन करते हैं कभी-तो-कभी हाथ उठाये नाचते हैं। बीच-बीचमें दोनों दोनासे निकालकर मुखमें डालते भी जा रहे हैं। उनके इस आनन्दस्वरूपको देखनेमें लगे थे वे। इसी बीच उन लोगोंकी दृष्टि इनपर पड़ी। 'यह तो दुर्गानाथ भैया है' कहते हुए दोनों दौड़ पड़े।

कुशल सम्वाद पूछना तो दूर दोनों आकर दोनामेंसे चिउड़ा और खागड़ाई मिठाई दुर्गानाथके मुहमें ठूँसते हुए लगे कीर्त्तन करने। उस आनन्दतरङ्गमें आप भी बह गये। शारीरिक अवस्था विस्मृत हो गयी। आप भी हरि बोल, हरि बोल कहकर उस नृत्यमें सम्मिलित हो गये।

किन्तु व्याघात पड़ा अनन्तनाथके बड़े भाईके चिल्लानेपर। वे कहने लगे—'अरे, क्या करते हो तुम लोग ? उसकी जान लोगे क्या ? देखते नहीं उसका समस्त शरीर सूजा हुआ है ?'

वह लाख चिल्लायें यहाँ सुनता कौन है ? सभी तो अपनी धुनमें मतवाले थे। नाचते, थिरकते, एक दूसरेके मुँहमें चिउड़ा-खागड़ाई भरते प्रभुका नाम करते रहे। दुर्गानाथको शिवजीकी आज्ञा मिल ही चुकी थी, वह भी निर्भय खाते गये।

तीन बजे अनन्तनाथको अपने घरपर बुलावा देकर घर लौट पड़े। ठीक समयपर वह पहुँच भी गये। दुर्गानाथने अपने रोग-कष्टकी बात तो कही, किन्तु स्वप्नादेशकी बात गुप्त रखी।

अनन्तनाथने कहा—आपके आनेके उपरान्त ही ठाकुरने कहा है कि दुर्गानाथकी यह अवस्था उपवास करनेके कारण हुई है। जबतक पेटमें अन्न न जायगा तबतक आपके लिये यह संसार नीरस रहेगा—नीरस लगेगा।

इसलिये आप रसहीन जड़पिण्डवत् मत बनें। 'रसो वै सः' के राज्यको नीरस न बना दें अपनी उपस्थितिसे। इस राज्यसे महौषधि लें। जीवनको सरस बनावें। आनन्द करें, उपभोग करें।

वह रसराज महौषधि कहाँ मिलेगी?

रसकी स्रोतस्विनीके उद्गममें जो स्नात हो चुका है वही रसराजका पता जानता है। सद्गुरु ही रसके मूलका पता जानते हैं। उनसे युक्त हों, उनकी कृपा लाभ करें। रसमय जीवन हो जायगा आपका। नवमञ्जरी निकल पड़ेगी इस शुष्क काष्ठवत् रुग्ण शरीरमें।

आप क्या नया गुरु करनेकी बात कहते हैं? मैं एक बार मंत्र अपने कुलगुरुसे ले चुका हूँ। गुरु बदलनेकी बात मुझको न सुनावें। मैं क्षुधार्त हूँ, रोगसे जर्जरित हूँ, इसकी औषधि बतलावें।

'अरे कुलगुरुके त्यागकी बात मैं कहाँ कर रहा हूँ? मैं तो आपको मधुकर बननेको बता रहा हूँ। आज आप क्षुधाके लिये, एक मुट्ठी अन्नके लिए आर्त्त हैं। मैं आपको परमान्नप्रसाद पानेकी बात कहता हूँ। सद्गुरु उसी रसराज अमृतके अधिकारी होते हैं। उनकी स्नेहधाराका परश प्राप्तकर नव-जीवन हो जायगा। मैंने भी गुरु किया था, कुलगुरुका मैं भी पुजारी हूँ, किन्तु उनसे

अन्न तो मिला आत्माकी क्षुधा न मिटी। जल तो मिला तृप्ति न हुई। जिस दिन सद्गुरुलाभ हुआ उसी दिन अमृतधारामें स्नानकर त्रय-ताप दूरीभूत हुआ। इसीसे कहता हूँ, आप भी सद्गुरुलाभ करें। गुरुकी ग्रन्थिमें सुधापानसे वञ्चित न रहें।

फिर भी दुर्गानाथने न सुना। कट्टर ब्राह्मण संस्कारकी बात छोड़े तो कैसे ?

उस समय तक भी ठाकुरने मंत्र देना आरम्भ न किया था। जो कोई मंत्र लेना चाहता माँके निकट किंवा हरनाथ ठाकुरके निकट भेज देते थे।

दूसरे दिन दुर्गानाथ ठाकुरके घर पहुँच गये। भगवान भूतेश्वरका आदेश ! रुकें तो कैसे ? मनमोहिनीदेवीने कुशल प्रश्न किया। उनसे भी वही रोना आरम्भ किया। रोग छोड़ता नहीं, कुछ पचता भी नहीं। सब करके थक गया, अब क्या करूँ ? इसी समय ठाकुर भी पहुंचे। आनेके साथ माँसे बोले—'माँ, उपवास करते-करते दुर्गानाथ भैयाकी यह अवस्था हुई है। अन्तरका समस्त यन्त्र क्षुधाप्रपीड़ित हो गया है। भैयाको अपने हाथसे सुअन्न बनाकर खिला आज। जो कुछ अच्छा लगता हो इनको दे। भरपेट जब तक न खायँगे रोग न छूटेगा। डरनेकी बात नहीं, खूब खिला तो आज।

दुर्गानाथ मछली खाते थे वह भी उस दिन बनी। इसके अतिरिक्त मलाई, खीर और विभिन्न प्रकारका गुरुपाक तैयार किया गया। छः सालके उपरान्त यह सब भोजन नसीब हुआ था। ठाकुर प्रोत्साहित करते जा रहे थे। दुर्गानाथने तृप्तिभर भोजन किया।

तृप्तिभर भोजन करके घर लौटनेके उपरान्त जो नींद आई वह टूटी दूसरे दिन सूर्योदय होनेके बाद। न पेटमें दर्द हुआ, न उसका कोई लक्षण ही दीख पड़ा और न हड़-हड़ गड़-गड़का शब्द। उस

दिनसे आप ठाकुरके पीछे छायाकी तरह रहने लगे। अनन्तनाथके यहाँ कभी तो कभी किशोरीमोहनके यहाँ कीर्त्तन भी करते। सब होता, किन्तु वैद्यनाथ भगवानके स्वप्नादेशकी बात गुप्त ही रखी। ठाकुरके पीछे-पीछे गुरुप्रदत्त शक्तिमंत्रका जप करते रहते। डाक्टरोंके कथनकी उपेक्षा कर खान-पानका भी समस्त बंधन तोड़ दिया। धीरे-धीरे रोगका भी उपशम होने लगा।

एकोविंश अध्याय

ठाकुर हरनाथके साथ छः महीना तक निवास करके किशोरी-मोहन लौटे। सतत साधनामें रत रहनेके कारण मुखपर दिव्य आभा दीख रही थी। ठाकुरने जब इन्हें देखा तो सबोंको उनके दिव्य तेजको दिखाना आरम्भ किया। किशोरीमोहनको महा-साधक कहकर सम्बोधन किया !

स्वयं उनकी पदधूलि लेकर अपने मस्तकपर चढ़ा लिया। प्रदक्षिणा भी की। माँको भोजन बनानेके निमित्त कहा। तदुपरान्त अपने हाथों उनके समस्त शरीरमें तैल मर्दन किया। स्नान करानेके उपरान्त गमछेसे समस्त शरीरको पोंछ दिया। अपने हाथों उनकी धोती फींची।

ठाकुरकी बातें ऐसी ही विचित्र होती हैं। जब किसीकी प्रशंसा करते हैं तो दिल खोलकर करते हैं। जो ही मिलता है उनके सामने प्रशंसा करते हैं। तिलके बराबर गुण देखते हैं तो विराट् रूप देकर दिखलाते हैं। गुणकीर्त्तन करनेमें नहीं अघाते। उनकी इस विरुदावलीका फल यह हुआ कि सब लोग किशोरीमोहनको महापुरुषकी दृष्टिसे देखने लगे। रास्ता चलते सभी उनको हाथ जोड़कर प्रणाम करते। लोगोंने उनके नामके आगे दो श्री लगाकर सम्भ्रम प्रदर्शन करना आरम्भ किया। श्रीश्रीकिशोरीमोहनके नामसे विख्यात हुए।

ठाकुर जैसे-जैसे प्रशंसा करते गये वैसे-वैसे उनके भीतर मोहने राज्य फैलाना आरम्भ किया। फिर उनका विश्वास डगमगाने लगा। यह क्या सचमुच अवतारी हैं ? यह क्या सचमुच महा-मानव हैं ? इसका क्या प्रमाण ?

प्रमाण हैं हरनाथ ठाकुरसे महापुरुष। जिन्होंने उस दुनियाकी

खबर रखी है वे ऐसे आदमीका संग करो, उनके प्रति भक्ति रखो माँ की नाईं। वह जब कहते हैं कि वे पुरुषोत्तम हैं तो क्यों न मानोगे? असल वस्तु है विश्वास। महापुरुषके साथ छः महीने सत्संग करके भी जब उनकी वाणीपर विश्वास नहीं तब क्या समझा जायगा? इसका अर्थ हुआ किसीपर विश्वास नहीं, किसीसे प्रेम नहीं।

वही किशोरीमोहनके साथ हुआ। ठाकुर तो लोक-शिक्षा प्रदान करनेके लिये उनकी प्रशंसा करते रहे और आप लगे रहे अविश्वासके झूलेपर झूलनेमें। इन्होंने पुनः परीक्षा करनेकी ठानी।

जिनको कभी नाम-ध्यान करते नहीं देखा, कभी व्रत-उपवास जिसने नहीं किया, तीर्थ-व्रत करते जिसको कभी नहीं देखा गया वह अवतारी महापुरुष कैसे हो सकता है? जो कभी आसन-प्राणायाम न करे वह सिद्ध कैसे होगा?

किशोरीमोहनने कभी अनुकूलचन्द्रको अन्याय करते न देखा था। उलटा अन्यायकारीको सत्पथपर चलानेका प्रयत्न करते ही देखा था। सब ठीक, किन्तु ऐसे आदमीको ऐशी शक्तिसे सम्पन्न कैसे मानूँ? ऐसे आदमीको भला आदमी कहकर श्रद्धा की जा सकती है, सज्जन समझकर सम्मान किया जा सकता है। किन्तु सिद्ध महापुरुष हैं कि नहीं यह कौन कह सकता है? सर्वाधीश समझकर ग्रहण करनेमें कहीं भूल हो तब क्या होगा? यह पुरुषोत्तम हैं इसका क्या प्रमाण है?

रास्तेसे आ रहे थे। एक दुकानपर खजूरका बना सुन्दर सन्देश दीख पड़ा। उसको खरीदकर घर लाये और ठाकुर हरनाथकी फोटोके पीछे कपड़ेमें बाँधकर छुपा दिया। मन ही मन कहा—आज यदि ठाकुर बिना बुलाये आवें और स्वयं मांगकर इस सन्देशको खा लें तो समझूँगा कि वे ऐशी शक्तिसे सम्पन्न हैं।

दिन बीत गया किन्तु ठाकुरका पता नहीं। रातमें कीर्त्तनके

समय आये। यथासमय कीर्तन शेष होनेके उपरान्त घरके लिये रवाना भी हो गये। इधर निःश्वास फेंककर निश्चिन्त हुए किशोरीमोहन । मनका द्वन्द्व मिटा, नित्यके मानसिक द्वन्द्वका अवसान हुआ। हुक्का पीने लगे। आध घण्टाके उपरान्त देखते हैं ठाकुर फिर हाजिर।

—क्या है?

—बड़ी प्यास लगी है, जरा पानी पिलावो।

—इस पानी पीनेके लिये तुम घरके निकटसे फिरे आ रहे हो?

—तुम्हारे यहाँका जल अच्छा लगता है, इसीसे फिर आया हूँ किशोरीमोहनने एक लोटा जल प्रदान किया। ठाकुरने लोटा-भर पानी देखनेके साथ कहा—'अरे, भले आदमी, कहीं खाली जल दिया जाता है? कुछ इसके साथ बतासा-मिठाई लगती है।

मेरे घरमें इस समय तो कुछ भी नहीं!

आस्वादन, आलिंगन और चुम्बन करनेके निमित्त वे आये थे। उन्होंने आह्लादभरे स्वरमें कहा —दो न भाई, दोठो सन्देश हो तो दो।' 'सन्देश और मेरे घरमें? क्या कहते हो तुम?' किशोरीमोहनने कहा।

आलिङ्गनपाशमें बाँधते हुए बोले—'दे, दोठो खजूरका सन्देश ही हो तो दे।'—'ना भाई; घरमें मिठाई रहती तो क्या तुझको नहीं देता?'

'ना, मैं बिना मिठाई खाये नहीं जाता'—इतना कहकर ठाकुर चित्रपटके नीचे लेट गये। क्षणभरके उपरान्त साँप-साँप कहकर चित्रपटकी ओर इंगिति करने लगे। उस समय उनके मुख-आँख-पर जो भय और आशंकाके भावकी अभिव्यक्ति थी वह देखने योग्य थी।

किशोरीमोहनने कहा—'ना, ना, वह तम्बाकू बाँधकर रखा हुआ है। साँप-टाँप नहीं है यहाँ।' इतनेमें हाथ लगाकर ठाकुरने

कपड़ा खींच लिया और खोलकर दोनों सन्देश बाहर निकाल लिया तदुपरान्त बोले—'अहा, इतना सुन्दर सन्देश मेरे लिए रखे हो और मुझीको नहीं देते।'

अनुमतिकी अपेक्षा किये बिना मुँहमें रख लिया। आनन्द-विह्वल हो पड़े किशोरीमोहन। मुँहसे एक शब्द न निकल सका। खानेके उपरान्त उनको गलेसे लगाकर ठाकुर हँसते हुए चले गए।

उनके जानेके उपरान्त किशोरीने अपने आपको धिक्कार देना आरम्भ किया! इतना नराधम हूँ मैं, इतनी परीक्षा करनेके उप-रान्त भी मुझे विश्वास नहीं होता? मुझसे बढ़कर दूसरा कौन पाखण्डी है?

इसके दूसरे दिन सबेरे ही ठाकुरके यहां गये और अपने यहाँ भोजन करनेका निमन्त्रण दिया। कलकी घटनाकी अनुशोचनावश ही यह आयोजन किया गया था। ठाकुरने स्वीकार कर लिया और यथासमय आनेका वचन भी दिया।

बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ भोजनका आयोजन करने लगे। खाने पीनेकी बड़ी तैयारी की। लेह्य, पेय, चर्व्य, चोष्य कोई भी पदार्थ बाकी न रहा। ठाकुरको तृप्ति प्रदानकर अपने सारे दोषोंकी क्षमा-याचना करनेका विचार था।

ठाकुर ग्यारह बजे तक दुर्गानाथ और अन्यान्य व्यक्तियोंके साथ तत्वालोचना करते रहे। उसके उपरान्त स्नान करनेके लिए उठे। कुछ देरके बाद स्नानादिसे लौटकर बोले—दुर्गानाथ भैया! निमन्त्रण खाने चलिए। इतना कहकर दोनों आदमी चल पड़े। रास्तेमें दुर्गानाथने पूछा—'कहाँका निमन्त्रण है?'

उत्तरमें ठाकुरने कहा—'किशोरीके यहाँ। देखिए न, अवि-श्वास कितना प्रबल है। निमन्त्रण देते समय तो सप्रेम निमन्त्रण दे गया। किन्तु इस समय हठात् परीक्षा करनेकी ठान ली है। दो

आसन बिछाकर बैठा हुआ है। मैं अकेले दो आसनपर कैसे बैठूँगा, इसलिए आपको साथमें ले लिया है।'

यथासमय दोनों आदमी किशोरीमोहनके घर पहुँचे और धड़धड़ाते हुए भीतर चले गये। वहां पहुँचकर देखा दो आसन बिछाकर किशोरी बैठे हैं। देखनेके साथ पुकारकर बोले—भीतर ही चले आइये, सब तैयार है।' ठाकुर आसनके निकट पहुंचकर बोले—'यह आसन तो मेरा है और वह ठाकुर हरनाथका। वह जब नहीं हैं तो दूसरा कौन बैठेगा? हम दोनों तो एक ही हैं। इसलिये उनका भोजन मुझको करना पड़ेगा, दुर्गानाथ भैयाको सहायताके लिए बुला लाया हूँ। बैठिए दुर्गानाथ भैया, आप उस आसनपर बैठिये।'

इतना कहकर दोनों आदमी भोजन करनेमें प्रवृत्त हुए। जब-तक भोजन करते रहे किशोरीमोहनकी ओर किंवा इधर-उधर एक बार भी दृष्टि न डाली।

उधर किशोरीमोहनने एक विचित्र दृश्य देखा। उन्होंने देखा कि दुर्गानाथ नहीं स्वयं हरनाथ ठाकुर ही भोजन कर रहे हैं। आँख मलकर पुनः देखने लगे। देखा दोनों आसनोंपर हरनाथ ठाकुर भोजन कर रहे हैं ठाकुर किंवा दुर्गानाथ दोनोंमें कोई नहीं। दृष्टि-भ्रम समझकर पुनः कपड़ेसे आंख पोंछकर देखा दोनों आसनोंपर ठाकुर बैठे एकाग्र मनसे भोजन करनेमें व्यस्त हैं। इस विचित्र काण्डको देखकर उनके रोंगटे खड़े हो गये, दोनों नयनोंसे झर-झर अश्रुकण गिरने लगे। इसी बीचे ठाकुरने कहा—'आः, आज तृप्ति-पूर्ण भोजन हुआ।

यह सुननेके साथ ही साथ किशोरीमोहन भूमिपर गिरकर क्रन्दन करने लगे। ठाकुरके चरणोंको पकड़ लिया 'मेरी समस्त मनोकामना पूर्ण हुई। कितनी परीक्षा की, प्रमाण भी पाया, तो भी मनमें अविश्वास हो जाता। आज सबको विसर्जित किया।

अब आप ही मेरे सब कुछ हैं। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव।

आजतक जो दोष किया है, सब क्षमा करो। अपने श्रीचरणों में शरण दो।'

ठाकुर हाँ हाँ करते हुए कहने लगे—अरे डाक्टर, यह क्या करते हो। मेरे चरणको पकड़ते क्यों हो? यह बात लोग जान जायँ कि तुमने भगवान् समझकर मेरे चरणको पकड़ा था तब क्या होगा? नाम-बदनाम न होगा? उठो, उठो, हम तुम्हारे सखा हैं, भगवान्—टगवान् नहीं।

इतना कहकर ठाकुरने किशोरीमोहनको उठाया और अपने जूठे हाथको किशोरीमोहनके मुँहपर मलकर भाग चले। किशोरी उन्हें इस प्रकार भागते देखकर चिल्लाने लगे—अरे, हाथ-मुँह तो धोलो। यह रूप लेकर जाओगे तो लोग क्या कहेंगे?'

इस काण्डको देखकर दुर्गानाथ तो अवाक्!

उन्हें क्या पता था कि दो संशयात्माओंको निःसंशय बनानेके निमित्त यह लीला हो रही थी। दो गुरुमंत्र पानेवाले जीवोंको गुरुके गुरुत्वको समझनेका आयोजन चल रहा था। दोनोंने ही बातें छिपाई थीं। दोनों पर्देकी आड़में चल रहे थे। किशोरीने अपने गुरुदेवकी बातोंको छिपा रखा था तो दुर्गानाथने वैद्यनाथ महादेवके स्वप्नादेशकी बात गुप्त रखी थी।

मनमोहिनीदेवीने उसी दिन किशोरी मोहनको मंत्र प्रदान किया। इस प्रकार ठाकुरकी कृपा-किरणके आप द्वितीय अधिकारी बने।

द्वात्रिंश अध्याय

अहम् किसी प्रकार नहीं जाता। अहङ्कार मिटाये नहीं मिटता। बटवृक्षकी डालको चाहे कितनाहूँ काटा जाय दूसरे दिन उसमें अंकुर निकल ही आता है। धन-धान्यका अहम्, विद्या-बुद्धिका अहम्,पद और अधिकारका अहम् क्या छुड़ाये छूटते हैं? कोट-पैण्ट-टाई पहने मोटरपर चढ़कर अहमिकाकी मूर्ति ही तो गमनागमन करती रहती है

दूसरे प्रकारकी अहमिका होती है भक्ति और साधनाकी। साधनाके आरम्भमें साधक समझता है कि सांसारिक रोग-यन्त्रणा-का मूल यह अहं ही है। इस निमित्त प्रार्थना करता है—प्रभो, मेरे इस अहं बीजको उन्मूलित कर दो। इसीके कारण मैं तुम्हारी दयाके रूपको देख नहीं पाता—तुम्हारे सुधाके आवर्षणका अनुभव नहीं कर पाता।

लाख प्रयत्न करके इस 'अहम्, को प्रशमित करनेकी चेष्टा करें यह जाता नहीं, तनिक शक्ति आते ही अहङ्कारके रूपमें फूट पड़ता है मेरे समान सिद्ध, मुझ-सा भक्त, मुझ-सा ज्ञानी, मुझ-सा शास्त्रज्ञ, मुझ-सा पण्डित, मुझ-सा नैष्ठिकके रूपमें फूट पड़ता है। त्याग करके संसार छोड़ा तो सन्यासी और विरक्तके मदमें प्रमत्त हो जाते हैं। हेकड़ी किसी तौरपर नहीं जाती। आग निभ जाती है तो राख उड़ने लगती है और उसमें यदि कहीं एक चिनगारी छिपी हो तो वह उड़कर दावानलका सृजन करती है। गैरिक पहनकर मदमत्तके समान घूमते हैं, किन्तु कुचिन्तना मनसे नहीं जाती। नासूर ज्योंका त्यों बना रहता है। केवल गेरुआ या दूसरे किसी रंगके कपड़ेसे ढँकनेका काम लिया जाता है मात्र।

उसी प्रकारका एक अहङ्कार होता है भेष, गुरु, मन्दिर और धार्मिक ग्रंथोंका। इसके पीछे अवतारोंको जो कष्ट और विपत्ति

उठानी पड़ती है उसकी क्या गिनती की जा सकती है ? कभी-कभी तो अवतारोंको प्राण भी विसर्जन करना पड़ता है। भगवान् ईसामसीह तो अपने शिष्य द्वारा ही घातकोंके हाथ समर्पित किये गये थे और फाँसीपर चढ़ाये भी गये थे। रामायणमें कहा गया है कि—

जब जब होंहि धरमकी हानी
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी
करहिं अनीति जाई नहिं बरणी
सीदहीं विप्र धेनु सुर धरणी
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा।
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज स्रुति सेतु।
जस विस्तारहिं विसद जस राम जनमकर हेतु ॥
राम जन्म कर हेतु अनेका।
परम पवित्र एकते ऐका ॥
× × ×
कृपासिन्धु जनहित तनु धरहिं ॥

भगवान् कृष्णने कहा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

चैतन्य महाप्रभुने कहा—

"सर्वकाल तुमरा सकले मोर अंग।
एइ जन्म जेनोना जानिबा जन्म जन्म ॥
एइ जन्म जेनो तुमि सब आमार संगे।
निरवधी आछो संकीर्त्तन सुख रंगे ॥

ऐइ मत आछे आर दुई अवतार ।
कीर्त्तन आनन्द रूप होइबो आमार ॥
ताहातेउ तुमि सब ऐइ मत रंगे ।
कीर्त्तन करीबा महा सुखे आमा संगे ।

—श्री श्रीचैतन्य भागवत, मध्यम खण्ड, २६ वाँ अध्याय ।

अर्थात्—हे हमारे कीर्त्तनके पारषद्गण ! तुम लोग मेरे जन्म-जन्मान्तरके अंग हो । इस जन्ममें जिस प्रकार तुम लोग मेरे साथ सतत संकीर्त्तन सुखमें अलमस्त हो, वैसे ही मेरे अगले जो दो अवतार होगें उनमें भी रहोगे और मेरे साथ कीर्तनका महासुख लूटोगे ।

उस दिन रामकृष्ण परमहंस देवने कहा—'आर एक बार आस्ते होबे, ताइ पार्षद देर सब ज्ञान दीच्छिना ।' आर्थात् एक बार मुझे फिर आना है, इसलिए पार्षदोंको समस्त ज्ञान प्रदान नहीं करता ।

इसीके साथ आपने कहा—'कलिर शेषे कल्कि अवतार होबे ब्राह्मणेर छेले ।' अर्थात् कलिके शेषमें जब अवतार ग्रहण करूँगा ब्राह्मणका लड़का बनकर कल्कि अवतारके रूपमें आऊँगा ।

—कथामृत, ४ भाग, ६१ और १२४ पृष्ठ ।

अवतारगण मनुष्यकी मंगलकामना लेकर ही धरापर नर-कलेवरमें आते हैं । किन्तु उन्हें जो-जो उत्पीड़न और कष्ट सहन करना पड़ता है उसकी क्या गणना की जा सकती है ? नर-पशु और असुरकी कौन कहे भक्ति और धार्मिकताके रूपधारियोंके हाथों भी उन्हें कम कष्ट नहीं उठाना पड़ता ।

रावणीय दलके आक्रमणसे समस्त नारीत्वकी रक्षा करनेवाले रामचन्द्रको प्रतिमुहूर्त्त दुःख, कष्ट और व्यथाके आघातमें दीर्घ उसासें लेनी पड़ी थीं । शान्तिप्रतिष्ठाके पीछे भगवान् कृष्णको कितना लांछित और अपमानित होना पड़ा था ?

उनके उस अवदानके स्मृतिस्वरूप स्थान-स्थानपर भगवान् राम और कृष्णके मन्दिर बने हुए हैं। नाना प्रकारके ग्रन्थ और कविता की पुस्तकोंकी रचना हुई है। उनमें चिन्मय रूप धारण कर वे विराजित रहते हैं, ऐसा विश्वास भी किया जाता है।

किन्तु अपने कथनानुसार आज यदि भगवान् राम या कृष्ण नरकलेवरमें अवतीर्ण हों और कहना आरम्भ करें कि मैं आ गया हूँ, मुझको ग्रहण कर, मेरा अनुसरण कर तो कितने आदमी इस बातको सुननेको तैयार होंगे? अधिकतर आदमियोंके लिये तो मन्दिर और धर्म-ग्रन्थ ही ग्रन्थी बन जायगी और उन्हें स्वीकार करनेमें बाधा प्रदान करेगी। राम-कृष्ण अपने ही मन्दिर और ग्रन्थोंके नीचे प्राण विसर्जन करनेको बाध्य होंगे। लांछित होंगे, उपेक्षित होंगे। शेषमें राम-कृष्णका रट लगानेवाले उनको पागल समझकर ईंटा-रोड़ा वर्षाने लगेंगे। कोई यह न सोचेगा कि 'राम-प्रभु धरि विविध शरीरा' में आनेकी बात कह गये हैं, यही बात उन धर्म-ग्रन्थोंमें लिखी भी है। मानना और अनुसरण करना तो दूर, सब उनकी खिल्ली उड़ायेंगे, हज्जो करेंगे। श्रीकृष्णभक्त भक्तिकी अहमिकामें श्रीकृष्णके 'सम्भवामि युगे-युगे' की बात भूलकर उनको गालियाँ सुनायेंगे।

अभी उस दिन तो प्रभु चैतन्य और श्रीराम-कृष्णका नर-कलेवर धारण करके आये थे। किन्तु उनकी क्या दूसरी गति हुई? चैतन्य महाप्रभुने समुद्रमें डूबकर प्राण त्याग किया या विष द्वारा शरीर त्याग करनेको बाध्य हुए यह कौन जानता है?

उस युगमें हवा चली थी इस्लामकी। मुसलमानोंका राज्य था, लगे लोग मुसलमान बनने। राम-कृष्णका नाम लेना बन्द हो गया। राज्य-सत्ताके अनुसार धर्म-परिवर्त्तन होने लगा। हिन्दू-धर्मसे निकलनेवाले काला चाँद, काला पहाड़ बन गये और लगे हिन्दू-धर्म और हिन्दुओंपर अत्याचार करने। काला पहाड़ बनकर

अपने धर्मके विनाशकोंका दल बहादुरी दिखाने लगा। उस समय 'धर्म-संस्थापनार्थाय' चैतन्यदेवने कीर्त्तनारम्भ किया। सारे भारतवर्षमें कीर्त्तनकी बाढ़ ला दी। आज जो स्थान-स्थानपर कीर्त्तनका समारोह होता है उसका बीज उन्होंने ही वपन किया था। एकाकी समस्त भारतवर्षमें पैदल घूमते फिरे। किन्तु उसका फल क्या हुआ? क्या मुसलमान बननेकी भावना दूर हुई? उलटे धोतीपर पायजामा चढ़ा और जनेऊपर अचकन। पगड़ीकी जगह ली एकन्निया टोपीने। इस प्रकार तुर्कोंकी तुर्कानी भी रही और बापदादोंकी हिन्दुआनी भी।

दूसरी हवा चली अंग्रेजी अमलदारीमें। ईसाई बनो— क्रिश्चियन धर्म अपनाओका हल्ला हुआ। अंग्रेजोंका राज है तो अंग्रेजोंका धर्म अपनाओ। अंग्रेजी पढ़ो, अंग्रेजी पोशाक धारणकर साहब बनो। अंग्रेजोंकी तरह काँटा-चम्मचसे खाओ। उनकी तरह मुँहमें सिगार लेकर चहल-कदमी करो।

लगे लोग ईसाई बनने। कोट-हैट, शर्ट-टाईने ही घरमें प्रवेश नहीं किया, घरमें प्रवेश किया अंग्रेजी काट-छाट और रंग-ढंगने भी। इसके बिना अभ्यासके क्लबमें गुजर न होता, नौकरी मिलनेमें बाधा पड़ती।

हिन्दुओंमेंसे जो ईसाई बनें उन्होंने इस अमलदारीमें सफेद पहाड़का पार्ट अदा करना आरम्भ किया। किसी सफेद चमड़ेवालेके साथ काले चमड़ेवाले निकल जाते और लगते राम-कृष्ण आदि देव-देवियोंको गाली सुनाने! दल बाँधे ये काले चमड़ीवाले मेले-ठेलेमें हिन्दूधर्मका श्राद्ध करना आरम्भ किया करते। हिन्दूधर्म कोई धर्म ही नहीं! गाछ-वृक्ष, ईट-ढेला, मिट्टी-पत्थरके पुजारी हैं हिन्दू। स्त्रियोंको कोई स्थान ही नहीं इस धर्ममें। ऊँच-नीच, छोटे-बड़ेके भावमें मनुष्यमात्रको कुचला जाता है इस धर्ममें। वेद गड़ेरियेकी भाषा है। मानवताके एकमात्र उद्धारकर्त्ता मरिअम

पुत्र थे। कृष्ण चोर थे, गोपियोंके साथ व्यभिचार करनेवाला था। हजारों स्त्रियाँ उसके महलोंमें कैद थीं।

सस्ते दरपर मत्ती-समाचार बँटने लगा।

उधर सरकारकी ओरसे सांस्कृतिक विनाशका आयोजन चला। भारतीय सभ्यता और संस्कृतिने जगतको जो सभ्यताका पाठ पढ़ाया था इस गौरवबोधको नष्ट करनेका षडयन्त्र आरम्भ हुआ। राष्ट्रीय गौरवबोधकी जड़ उखाड़ फेंकनेका संगठित और सुकल्पित प्रयत्न आरम्भ हुआ। नैतिक बलको विनाश करनेवाली शिक्षा-पद्धतिको अपनाया गया। इसीके साथ-साथ प्रजनन सम्बन्धी विश्रृंखलता लानेका प्रयत्न आरम्भ हुआ। क्लब-जीवन, बारुणी और उन्मुक्त प्रेमका बाजार सरगर्म हुआ।

इससे बचानेके निमित्त राजा राममोहन राय,केशव सेन और देवेन ठाकुरने मिलकर वेदान्तके आधारपर ब्रह्मधर्मका प्रचार आरम्भ किया। मूर्त्ति पूजा हटाकर एकेश्वरबादका प्रचार आरम्भ हुआ। ईसाहीन ईसाई-धर्मकी स्थापना हुई। जातिभेद, वर्णभेद मिटा दिया गया। स्त्रियाँ मुक्त कर दी गई। लगे लोग ब्रह्मसमाज में घुसने और नाम लिखाने। पढ़े-लिखे कालेजके विद्यार्थियोंने तरुणियोंके अबाध संमिश्रणका अवसर पाया। क्लब-घरका मजा भी मिलने लगा। अंग्रेजोंकी क्रिस्तानी भी रही, और बाप-दादेकी हिन्दुआनी भी।

इसी बीच आये स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी। इस प्रचण्ड मार्तण्डके संस्थापित की हुई आर्य-समाजसे एकेश्वरबादकी भित्ती-पर और वेदके आधारपर संसारभरको ललकारा गया। सनातन धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्मकी समीक्षा होने लगी। समीक्षा क्या धज्जी उड़ायी जाने लगी। मूर्त्ति पूजा बन्द हुई। स्त्री-स्वातन्त्र्य, विधवा-विवाह और शुद्धिका बाजार गर्म हुआ। ऋषिहीन ऋषिवादकी पूजा आरम्भ हुई।

इस प्रकार आर्य-समाजने अँगरेजी फौजके सम्पर्कमें आनेवाले पंजाबियोंमें बढ़नेवाले अँगरेजिअतके रोकनेका पश्चिममें काम किया तो ब्रह्म-समाजने बंगाल और मद्रासमें बढ़नेवाले अँगरेजिअतकी रोक-थाम करनेमें हाथ बटाया।

एक अजीब खिचड़ी-सभ्यताकी भारतमें उत्पत्ति हुई। उसमें अँगरेजोंकी क्रुस्तानी भी थी और बाप-दादेकी हिन्दुआनी भी। पश्चिममें कोट-पैन्टके ऊपर पगड़ी चढ़ी, तो पूर्वमें कोट-शर्टके नीचे धोती।

एक जगह ईसा-विहीन ईसूका धर्म ग्रहण किया गया तो अपर स्थानमें ऋषिविहीन ऋषिमंत्रकी पूजा। एकने कहा हम सभी एक दयालु ईश्वरकी सन्तान हैं तो दूसरेने कहा हम आर्य ऋषियोंकी सन्तान हैं।

इसी समय आये रामकृष्ण परमहंसदेव। उन्होंने पुकार की देवी-देव सब ठीक हैं। जितने मत हैं, उतने पथ हैं। चाहिए भक्ति, चाहिए निष्ठा। करो तो पायगा। बिना किये क्या कृपा मिलती है? छोड़ अहँकार को, मैंने देखा है। मैं जो कहता हूँ कर, तू भी पायगा।

किन्तु उन्हें क्या मिला? किसीने कहा पागल है, किसीने कहा मूर्ख है। धार्मिक अहमिकावाले चैतन्य महाप्रभुके शिष्योंने गालियाँ सुनायीं। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे पण्डितोंने उपेक्षा की। द्वार-द्वारपर दौड़ते फिरे रामकृष्ण। उन्हें भोजनके बदले जूठे पत्तलको चाटते हुये दम तोड़ना पड़ा। उनकी धर्मपत्नी को जो पाँच रुपया महीना पेंशन मिलता था उसके बन्द करनेके लिए क्या-क्या न किया गया?

रामकृष्णको मिले मुट्ठीभर माननेवाले। उन्हीं लोगोंके जरिये धर्मसंस्थापन और रक्षणका चक्र उन्होंने चलाया। स्वामी बिवेका-

नन्द ही एकमात्र शिष्य थे जो अन्त समयतक अपने गुरुदेवकी मृत्युशय्याके निकट खड़े रहे।

वही विवेकानन्द जबतक बंगाल और भारतवर्षमें रहे दो बेला खाना भी न जुटा। जैसे रामकृष्णके साथ व्यवहार किया गया था वैसे ही उनके साथ भी किया गया। किन्तु जब चिकागोके पार्लियामेन्ट ऑफ रेलिजनमें वह विजयी हुए तो लोगोंने उनको अपना कहनाआरम्भ किया। बंगालने कहा रामकृष्ण हमारे थे।भारतवर्षने गर्व किया विवेकानन्द हमारे हैं। रामकृष्ण मिशन खुला। बहन निवेदिता आईं। बड़े-बड़े मठ-मन्दिर बनने लगे रामकृष्णके नामपर। किन्तु रामकृष्णकी आत्मा हँसती रही इस नये अहमिकाकी लीलाको देख-देख।

मठ-मिशनमें धड़ाधड़ सन्यासियोंकी बाढ़ आने लगी। विवेकानन्द सबके आदर्श बने। कालेज, स्कूल और परिवार छोड़-छोड़ लोग लगे सन्यासी बनने। सबकी इच्छा थी कि हम भी विवेकानन्दकी भाँति नामार्जन करेंगे। किन्तु रामकृष्ण कहाँ हैं जो विवेकानन्द बनावें? मिशन क्रिश्चियन मिशनरियोंकी भाँति बन गया। अस्पताल, स्कूल खुलने लगे। बाढ़, भूमिकम्प आदि प्राकृतिक उपद्रवग्रस्त मनुष्योंकी सहायता की जाने लगी। ईसाइयोंकी भाँति हिन्दू मिशन बने।

इसी बीच छपा आनन्दमठ और आया वंग-भंगका युग। आनन्दमठने अँगरेजोंके विरुद्ध युद्ध करनेवाले सन्यासियोंका दल बढ़ानेका प्रोत्साहन प्रदान किया। कर्जनने वंगभंगकी योजना बनाई। स्वदेशी आन्दोलन आगकी तरह फैल गया। कांग्रेसने भी बंगालके दुःखको अपनाया। बंगाली युवक 'बंग आमार देश, आमार प्राण' का तराना अलापने लगे। खड्गधारिणी दुर्गा और गीताकी शपथ ले लेकर युवक क्रान्तिकारी दलमें भर्त्ती होते गये। युगान्तर लानेवाले इस दलमें जो बंगाली युवक शामिल न होता

—वह कायर, क्रूर और देशद्रोही गिना जाता। 'गोरनको मारि मारि बोरन माँ भरिहों' की शपथ ली जाने लगी। जो धर्म रक्त स्नानके इस महायज्ञमें सम्मिलित न हो, उसे धर्महीन गिना-जाता।

तरुण अनुकूल उस समय हिमाईतपुरके चतुर्दिक ग्रामोंमें ताण्डव कीर्त्तन करनेमें लगे थे। रात-रातभर कीर्त्तन होता, दिन-भर होती तत्त्वालोचना। संध्या होनेके साथ कीर्त्तनमें योग देनेके निमित्त ठाकुर घरसे निकल जाते। एक दिन चाँदनी रातमें इसी प्रकार जा रहे थे। ज्योत्स्नाके शुभ्र रूपको देखनेमें मन विभोर था। अकस्मात् छूरा और पिस्तौलकी नली छातीके निकट चमकने लगी। दो तरुण क्रान्तिकारी पेड़की झुरमुटसे निकलकर बोले—अपने दल-बलके साथ हस्ताक्षर करके हमारे क्रान्तिकारी दलमें सम्मिलित होकर मातृ-मुक्ति-यज्ञमें योग दो, नहीं तो तुम्हारा सफाया कर दिया जायगा।

कुछ देरतक तो ठाकुर उन मारात्मक अस्त्रोंके प्रति देखते रहे। किन्तु क्रान्तिकारियोंके कथनके साथ-साथ एक विकट अट्टहासकी ध्वनि उनके मुखसे निकल पड़ी। ऐसे कराल-कालके समान अट्ट-हास्य आदमीके कण्ठसे हो सकता है इसकी धारणा क्रान्तिकारी युवकोंमें न थी। उस आवाजकी प्रतिध्वनिसे नदी प्रान्तर, आकाश, वाताश गूँजने लगा मारे भयके उनके हाथसे छूरा और पिस्तौल जमीनपर गिर गया। उसीके बाद जलद गम्भीर वाणी ठाकुरके मुखसे निकली—'हमारे पितृभूमिकी वाणी है जीवन-प्रदायिनी, वृद्धि-प्रदायिनी;भारतवर्ष अमृतत्व प्राप्तिकी माँग करता है। जाति जबतक उस अमृतत्वका पान न करेगी तबतक उसमें नवजीवन न आयगा। हमने अपने जातीय चारित्रिक बलको खो दिया है। हमारी जाति आज मेरु-दण्ड और मस्तिष्कहीन चरित्र-भ्रष्ट जातिमें परिणत हो गई है। इस मृत-प्राय जातिमें नवप्राण लाना है। इसके निमित्त चाहिये

चारित्रिक बल। इसी चारित्रिक बलसे ही आत्मबल उत्पन्न होगा। चरित्र-हीनताका जो कीटाणु हमारे राष्ट्रीय रक्त-धाराको विषाक्त बनाता जा रहा है उससे जबतक हम मुक्त न होंगे राष्ट्र जीवित न होगा। मैं उसी जीवनकी वाणी, अमृतत्वकी वाणीको सुनाता हूँ। मेरा दल आर्य्यावर्त्त के उसी अमृतवाणीको सुनानेवाला दल है। तुम लोग भी मेरे दलमें नाम लिखावो—अमृतकी निर्झरिणीमें स्नान करने आओ। देशकी मुक्ति उसीमें है।'

दोनों क्रान्तिकारी अपने दलके सर्दारसे पूछनेका वादा करके चले गये।

त्रयोविंश अध्याय

किशोरीमोहनके यहाँ जाकर दुर्गानाथने जबसे हरनाथ ठाकुर का निवेदित अर्घ भोजन किया तबसे आप भयानक मानसिक द्वन्द्वमें पड़ गये। हरनाथ ठाकुर प्रसिद्ध महापुरुष थे। उनका शिष्य होकर किशोरीमोहनने दुबारा ठाकुरसे दीक्षा ले ली, इस बातका भी मनपर प्रभाव पड़ा था। ठाकुरके अन्तर्यामी होनेमें उन्हें कोई शक न रहा। उन्होंने भी भगवान् वैद्यनाथके स्वप्नादेशके बारेमें सब बातें गुप्त रखी थी। मन ही मन डर भी रहे थे। इसी बीच पेटकी कुछ गड़बड़ी भी आरम्भ हो गई। दुर्बलतावश दो तीन दिन ठाकुरके यहाँ आ भी न सके।

रातमें दुर्गानाथ अपने घरपर सोये हुए थे। लगभग एक बजे रातके समय दुर्गानाथ भैया पुकारता हुआ कोई द्वारकी जंजीर खटखटाने लगा। कर्णपात कर गौरसे दुर्गानाथ सुनने लगे। ठाकुर-सा शब्द ज्ञात हुआ। बाहर निकलकर आये तो देखते हैं लालटेन हाथमें लिये ठाकुर खड़े हैं। उनको भीतर ले आये और एक आसनपर बैठाकर तम्बाकू चढ़ाने लगे।

ठाकुर बोले—'कई दिनसे आप नहीं गये, चिन्तामें पड़ गया था। इसीसे देखने चला आया हूँ। कैसे हैं आप ?'

प्रति उत्तरमें दुर्गानाथने कहा—'संध्या समय एक बार पायखाना हुआ था, उसके उपरान्त शरीर बहुत दुर्बल हो पड़ा है ? इसीसे न जा सका था।'

इतना सम्वाद लेकर ठाकुर जब जाने लगे तो उनके साथ आप भी चल पड़े। रास्तेभर नाना प्रकारकी बातें होती आई। अनन्तनाथ जिस कोठरीमें साधना करते थे वहाँतक दोनों एक साथ आये। वहाँसे दो पगडण्डी फूटी थी। एक जाती थी ठाकुरके घरकी ओर और दूसरीसे दस डेगके बाद अनन्तनाथका द्वार मिलता

था। ठाकुरने कहा—'आप अनन्तके निकट चलकर बैठिये, मैं जरा घरको देखता हुआ आता हूँ।'

इतना कहकर ठाकुर घरकी ओर चले गये और दुर्गानाथ अनन्तनाथके दर्वाजेकी ओर। जंजीर खटखटाते हुए अनन्तनाथको पुकारा। दर्वाजा खुला तो अनन्तनाथ और ठाकुर दोनों दीख पड़े। यह देखकर तो दुर्गानाथ अवाक्!

कुछ देर ठाकुरके मुखकी ओर दुर्गानाथ चकित दृष्टिसे देखते रहे। उसके बाद बोले—'ठाकुर आप कौन हैं? इस घरमें आप कैसे आये? अभी-अभी तो आप लालटेन लेकर घर देखने उस रास्ते गये थे तब यहाँ इस घरमें कैसे आ गये?'

ठाकुरको भी यह सब सुनकर कम विस्मय नहीं हुआ। अन्तमें उन्होंने कहा—'मैं तो यहाँसे कहीं बाहर न गया था दुर्गानाथ भैया। इसका साक्षी यह अनन्तनाथ है,इसीसे पूछ न लीजिये।'

'ना, ना, ठाकुर तो यहाँ मेरे साथ सोये हुए थे। कहीं बाहर नहीं गये। आपको स्वप्न-भ्रम हुआ होगा।'—अनन्तनाथने कहा।

'लालटेन लेकर कुण्डी खटखटाना, मेरे घरकी चौकीपर बैठना, तम्बाकू पीते हुए कुशल-समाचार पूछना,एक मीलतक बातें करते हुए आना—यह सब क्या स्वप्नभ्रम है मेरा? आज मैं नहीं छोड़नेका। तुम दोनोंकी चालाकीमें मैं नहीं आता।'

इतना कहकर दुर्गानाथने ठाकुर और अनन्तनाथका हाथ अपने काँखमें दोनों ओर दबाया और खींचते हुए मनमोहिनी देवीके घरकी ओर चले। दो-सौ डेगपर उनका घर था। वहाँ पहुँचकर माँ माँ कहकर पुकारने लगे। किन्तु सब प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न थे। कहींसे कोई प्रत्युत्तर न मिला।

इस आश्चर्यजनक व्यापारको देखकर दुर्गानाथ विह्वल हो पड़े। हठात् हाथ छोड़कर ठाकुरके चरणोंमें गिरकर कहने लगे—"तुम ही मेरी काली और दुर्गा हो। मेरे गौर-कृष्ण तुम्हीं हो।दया

करके इस अधमको अपने पाद-पद्ममें आश्रय प्रदान करो।"

पैर छुड़ाते हुए ठाकुरने कहा—'यह क्या करते हैं आप दुर्गानाथ भैया ? छोटे भाईका पैर छूकर इसे पापमें मत डालिये। आप स्वप्न देखकर भ्रममें पड़कर मुझको कुछ और समझ बैठे हैं। सम्भव है यह बाबा वैद्यनाथका ही खेल हो।'

वैद्यनाथ महादेवके नाम सुनकर तो बिलख पड़े दुर्गानाथ। रोते हुए बोले—"भूल हुई क्षमा करें। मैंने स्वप्नादेशकी बात गुप्त रखी। गुप्त न रखता तो आज सत्य रूप आपका जान न पाता। अबतक मैं भूलमें पड़ा था। मैं सरल ब्राह्मण हूँ। मुझको चरणसे दूर न करें।"

इसके उपरान्त दुर्गानाथ भला जान छोड़ें ? घर जाना बन्द कर ठाकुरके यहाँ पड़े रहने लगे। अन्तमें ठाकुरने माँसे मन्त्र देनेको कहा। उपर्युक्त घटनाके एक सप्ताह उपरान्त जननी मनमोहिनी देवीने मन्त्र प्रदान किया। इस प्रकार १९१७ सालके फाल्गुन महीनेमें दुर्गानाथपर ठाकुरकी कृपा-कोर पड़ी।

दुर्गानाथ सान्याल तीसरे व्यक्ति थे जिनपर कृपाकी दृष्टि पड़ी थी। दीक्षाके उपरान्त आप सर्वदा आश्रममें रहने लगे। ठाकुरको बीचमें सुलाकर अनन्तनाथ और दुर्गानाथ दोनों बगलमें सोते। गुरुके सान्निध्यमें बैठकर साधना करनेका सुअवसर भी प्राप्त होने लगा।

चतुर्विंश अध्याय

इस कीर्त्तनयुगमें जो चतुर्थ व्यक्ति आकर मतवाला हो पड़े वे थे पं० सतीशचन्द्र गोस्वामी विद्यारत्न। आप अबतक धराधामपर मौजूद हैं और स-परिवार ठाकुरके सान्निध्यमें निवास करते हैं।

आप अद्वैतवंशीय सन्तान हैं। बहुशिष्योंके गुरु और बहुजनों-के प्रणम्य हैं। कीर्त्तनमें सम्मिलित होनेके प्रथम ही हजारों-हजार आपके शिष्य थे। फलहारी बाबा कहलाते थे। पालकीमें ही आप-की यात्रा हुआ करती। अद्वैताचार्यके वंशजका बंगालमें सर्वत्र सन्मान है। गौर-धर्मके अद्वैताचार्य प्रधान स्तम्भ थे। गौर-लीलाओंके प्रथम प्रवर्त्तक, प्रबन्धक और संयोजक माने जाते हैं अद्वैताचार्य। बयोवृद्ध, विद्यावृद्ध और बुद्धि-वृद्ध होनेपर भी उन्होंने बाल गौरांगके पद-रजको अपने मस्तकपर चढ़ाया था। गौरांगके अवतीर्ण होनेके प्रथम ही संसारमें जन्म लेकर अनुकूल वायुमण्डलका सृजन किया था। गौरांगके अभिनयका लीलाक्षेत्र प्रस्तुत किया था। तदुपरान्त भक्तोंके साथ विविध प्रकारकी लीला करायी थी और उनके लीला-संवरणके साथ-साथ स्वयं तिरोहित भी हो गये थे। उसी अद्वैताचार्यका रक्त वहन करते हैं सतीशचन्द्र।

भाग्यवान ऐसे हैं कि किशोरावस्थामें भगवान् राम-कृष्णका दर्शन पा चुके हैं। इतना ही नहीं आपने उनके हाथका पुष्पमाल्य पहनने और प्रसाद पानेका भी सौभाग्य अर्जन किया है।

वही सतीशचन्द्र जब हरद्वार, वृन्दावन, अयोध्या आदि पश्चिमी तीर्थोंका पर्यटन करते हुए सपरिवार जहाजसे पहुँचे उस समय एक आश्चर्यजनक घटना संघटित हुई। उनका जहाज किनारेपर बाँधनेके लिये चालक द्वारा लोहेका सिक्कड़ फेंका जा चुका और पेड़से बाँधा जा चुका था, किन्तु जेटीमें आकर अभी

न लगा था। इसी बीच उनका एक शिष्य सिकड़ पकड़कर जहाज-पर चढ़ गया और उनकी पदधूलि लेकर बोला कि आज आपको श्रीश्रीकिशोरीमोहनके यहाँ कीर्त्तनमें चलना होगा, उन्होंने आपको एक मजेदार चीज दिखलानेके लिये बुलाया है।

उस केन्द्रस्थलसे अपनी बुलाहट सुनकर सतीशचन्द्रजीने कहा —किशोरीमोहन कहाँ है?

आपके शिष्यने कहा—वह तो अपने घरपर हैं। सबेरे ही मुझसे कह गये थे कि आज आप जहाजसे उतरेंगे। साथ ही यह प्रार्थना करनेका कार्यभार भी मुझको दिया। आपको कोई कष्ट न होगा, मैंने प्रबन्ध कर रखा है। कृपा करके मेरी कुटियाको अपने पदरजसे पवित्र करनेका कष्ट करें।

'अरे, तो किशोरीमोहन क्या इतना बड़ा अन्तर्यामी हो गया' —इतना कहते-कहते बीचहीमें आप चुप हो गये। शिष्यने जिस रूपमें जीभ निकाली और किशोरीमोहन शब्दोच्चारणके सुननेके साथ उस शिष्यने दोनों हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्ण सम्भ्रम प्रदर्शन किया, उसको देखकर आपमें बोलनेकी शक्ति न रही।

जहाज लगते ही पचासों आदमी पालकी लिये जहाजपर चढ़ आये और सपरिवार गोस्वामीजीको उतारकर ले गये। निर्धारित समयपर आप किशोरीमोहनके घर पहुँचे। कीर्त्तन-मण्डली पहले-से उपस्थित थी। उपस्थित व्यक्तियोंमें प्रौढ़ और वयस्कोंकी संख्या ही अधिक थी। किन्तु उन सबके बीचमें एक सुन्दर गौरकान्ति-सम्पन्न युवक बैठा था। गोस्वामीजीके प्रवेश करते ही युवकनें उठकर 'नमोनारायणाय' कहकर आपका स्वागत किया।

इसके क्षणभर बाद कीर्त्तन आरम्भ हुआ, जमा भी और यथा-समय समाप्त भी हुआ। किन्तु जिस चीजको दिखानेके निमित्त आमन्त्रण किया गया था, वह न दिखायी गयी।

सतीशचंन्द्र गोस्वामी स्वयं कीर्त्तनिआ थे। उन्होंने किशोरी-

मोहनसे उक्त चीज दिखानेको कहा। उन्होंने कहा 'ठहरो, चेष्टा करता हूँ।'

कीर्त्तन पुनः आरम्भ हुआ, किन्तु इस बार आरम्भ हुआ रणडंकाके साथ कीर्त्तन। डंकाके साथ ही साथ बजने लगा ढाक, ढोल, मृदंग और घण्टाका घननिनाद। कीर्त्तनकी ध्वनि चतुर्दिक आग-सी फैल गयी। इस बार युवक अविचल न रह सके। हठात् हुँकार देते हुए कीर्त्तनमें कूद पड़े। मुखाकृति लाल हो गयी, मुख-मण्डलके चतुर्दिक सूर्यप्रकाश-सी आभा विकीर्ण होने लगी। शरीर स्फीत हो गया। दुर्गानाथके कन्धेपर हाथ रख बीच-बीचमें सिंहके समान गर्जन करने लगे। कीर्त्तनके छन्दानुसार अपूर्व भंगिमा सहित नर्त्तन करते रहे।

मन्त्रमुग्धकी नाईं सतीशचन्द्र उनके मुखमण्डलकी ओर देख रहे थे। गर्ज्जनध्वनि सुनकर रह-रहकर समस्त रोममें सिहरन हो रही थी। उस दृश्यको देखकर उनकी आँखें सुदूर प्रसारी महा-प्रभुके नृसिंहा वेशकी ओर चली गईं। महाप्रभुके उस भयंकर नृसिंह वेशसे श्रीवासका समस्त परिवार भयभीत होकर उनके चरणोंमें गिर गया था। महाप्रभुके अपार्थिव कीर्त्तन और भाव-समाधिकी कथा परिवारमें सुनते आये थे, किन्तु उसका जीवन्त रूप अनुकूलचन्द्रजीके आजके इस दिव्य प्रकाशमें देखा।

आँख मल-मलकर वे उस अपार्थिव दृश्यको देख रहे थे। चतुर्दिक प्रकाश ही प्रकाश है। एक प्रकाण्ड ज्योतिर्मण्डल आकाशमें छाया है एवं उसमें सहस्र सर्चलाइटकी तरह आलोक निकल रहा है। उस ज्योतिर्मण्डलमें मनुष्यकी छाया-मूर्त्तियाँ ढोल-कर्त्ताल लिये नृत्य कीर्त्तन कर रही हैं। कभी युवकके सिंहगर्जनसे आँख नीचेकी ओर फिर जातीं तो कभी आकाशस्थ दैवीप्रकाश और दिव्य कीर्त्तन की ओर। आकाश और पृथ्वीपर होनेवाले इस दिव्य कीर्त्तनको देखकर उनका सिर युवकके श्रीचरणोंमें गिर गया।

पञ्चविंश अध्याय

हिमाईतपुरमें खर-बाँसकी बनी झोंपड़ी, गन्दगी और मनुष्यों-में मूर्खताके अतिरिक्त कोई विशेषता न थी। उत्तरी बंगालके चतुर्दिक मटीले गली-कूचे, झार-जंगल और मलेरियासे भरे जैसे ग्राम होते हैं यह ग्राम भी वैसा ही था।

किन्तु अन्यान्य ग्रामोंकी भाँति प्राण-हीन, घोर आलस्यपूर्ण जीवन न रह गया इस ग्रामका। वरंच जीवन, अमृतत्व, प्रेम और सृष्टितत्वकी आलोचनासे वहाँका वातावरण गुञ्जरित होने लगा—नृत्य-कीर्त्तन द्वारा वातावरण जीवनमय बना रहता।

इस नवजीवनके मूल स्रोत थे नवयुवक अनुकूलचन्द्र। चौबीस वर्षका वह गौर कान्तियुक्त तरुण पड़ोसियोंसे ईश्वर-तत्वपर बातें करते। ईश्वर और सत्य सम्बन्धी आलोचना करते समय उनकी आँखोंसे बिजली कौंधने लगती, चमक पैदा होती, वाणीसे आशा और विश्वास टपकता रहता। ज्ञात होता मानों प्रत्यक्ष देखकर, रोम-रोमसे सत्यका अनुभव करके बोल रहे हैं। प्रत्यक्ष और अनु-भवपूर्ण उत्तर होते उनके, किताबी नहीं।

परमपिता परमात्माका वर्णन करते-करते उनकी आँखें नाच उठतीं, हाथ उद्‌र्ध्वकी ओर उठ जाते, पैर थिरकने लगते और हरिनामका रव गगनका भेदन करता हुआ समग्र वातावरणको विमुग्ध बना देता। उनकी वाणीमें आकर्षण, पदनिक्षेपमें आकर्षण, रूपमें आकर्षण और नयनोंमें जादू था। उस आकर्षणकी तीव्रतामें सब आत्मविस्मृत हो खिंच जाते, कीर्त्तनमें मिल जाते और हरिनामके रवसे समस्त वनप्रान्तर गूँज उठता।

भावविह्वल मतवाला हो दिव्य कान्तिसम्पन्न युवक अनुकूलचन्द्र जब कीर्त्तन करने लगते, उनके शरीरसे अलौकिक आभा विच्छु-रित होने लगती। उस दिव्य प्रकाशके विद्युत्संस्पर्शसे हिमाईतपुर

के मृतप्राय शुष्क प्राणमें नवजीवन संचरित होता। आबाल-वृद्ध-वनिता "नाम" की उन्मादनामें आत्महारा बन दौड़ पड़तीं।

वे कभी उत्ताल भावकी अतिमात्रामें समागत व्यक्तिको हृद-यालिंगन करते, तो कभी मधुर चुम्बन। कभी किसीको कंधेपर चढ़ाकर नृत्य करते, तो कभी किसीकी गर्दनपर चढ़कर गान करते।

उस समय अद्‌भुत घटना संघटित होती। कीर्त्तन करते हुए दलबल सहित जब वह तरुण बाहर निकलते किनारेके पेड़ झुक-झुक पड़ते। ताल-तालपर उनके शरीरमें स्पन्दन और सिहरन होती! चट-चट करते कीड़े-फतिंगे उनके दिव्य शरीरमें आ सटते। कुत्ते, गाय और अन्यान्य पशु पर्यन्त आत्महार बनकर पीछे-पीछे घूमने लगते। उस अद्‌भुत दृश्य, मन-मुग्धकर दृश्य, अन्तर प्राणसे निकलनेवाले अमृत उच्छ्वासको जिसने नहीं देखा, नहीं सुना, वह इस बातको समझ ही नहीं सकता।

किन्तु सबसे आश्चर्यमय था उनका अमृतमय जीवन प्राप्त करनेका आवाहन। 'अमृतत्त्व प्राप्त करो, स्मृतिवाही चैतन्यशक्तिको खोज निकालो, मन्थन करके अमृतका पान करो। हृदय और मस्तिष्क-समुद्रका मन्थनकर सुधापान करो।'

तुम चिन्मय हो, चैतन्य हो, अमृतपुत्र हो, शक्तितनय हो। वह अमृत चैतन्यशक्ति कुण्डलिनी बाँधे तुम्हारे शरीरमें विराजित है। वहाँपर बैठी-बैठी दो क्रियायें संचालित कर रही है—एक है उर्द्ध-ध्वमुखी और अपर है अधोमुखी। अधोमुखी बनकर वह निर्माण, सृजन, रचना और विस्तारके जाल बुननेमें उलझ गई है। उसकी गति इतनी वेगवती है जिसके प्रवाहमें पड़कर तुम्हारा मन, बुद्धि, इन्द्रिय बरबस प्रवाहित होते जा रहे हैं। गंगोत्रीकी प्रखर धाराके समान इसका वेग है। इसके गतिको ऊर्द्ध्वमुखी करो। जगाओ, उठाओ ऊपरकी ओर इसको।—कैसे जगाऊँ? योगमें बैठकर। योग

माने ? युक्त होना ? किससे युक्त हों ? श्रेष्ठसे, आदर्शसे, सद्गुरुसे, ऋषिसे, जीवन्त शरीरधारी महापुरुष या अवतारसे। जो इस अधोमुखीके जाल पाशसे मुक्त होनेका कला-कौशलको जाननेवाले हों उनसे। जो अमृतवाहिना निर्झरिणीके मूल उद्गम स्थानसे सम्बन्ध कर चुके हों उनसे। जो स्रोतके, चिन्मयके, अमृतके मूल स्थानमें पहुँच चुके हैं उनसे। तुम्हारी अनुरागात्मिका शक्ति, तुम्हारी आत्मिक सुरत धारा लिपट जाय, चिपट जाय, सट जाय उनमें। इसीका नाम योग है।

इष्ट मूर्त्ति बनाले उनको। इष्टका ध्यान, इष्ट चिन्तन, इष्ट उपवेशन और इष्ट संस्पर्शसे मनकी गति उर्ध्व होती है, एकाग्र होती है, सुकेन्द्रित होती है। मानसिक एकाग्रता शक्ति बढ़नेके साथ-साथ सुरत धारामें अधोमुखी होनेके कारण जो चंचलता, विच्छिन्नता आ जाती है उसमें एकतानता आती है उसीके साथ-साथ आती है धारणाशक्ति। कारण इष्टानुरागसे वृत्तियोंका नियंत्रण और सुगठन होता है। वृत्तिनियंत्रण जितना दृढ़ होता है उतनी ही धृति बढ़ती है। धृति द्वारा आता है प्रणिधान। धी-शक्तिके सुकेन्द्रित होनेपर कुल कुण्डलिनी जाग्रत होती है, सुरत धारा उर्ध्वमुखी होती और अमृतपथके सिंहद्वारमें प्रवेश करती है। वहाँ वह सत्, चित् और आनन्दधारमें अवगाहन करती है। इस अमृत-वारिमें जैसे-जैसे अभिसिंचित होती है वैसे-वैसे प्रणिधान समाधि लाभ करती है। इसी अवस्थामें ऐटमका नर्तन—अणु-परमाणुका परिभ्रमण देखा और सुना जाता है। इसके उपरान्त ही कैवल्यकी प्राप्ति होती है। कैवल्यके साथ ही साथ तृष्णाका एकान्त निर्वाण हो जाता है। यह होता है अमृतके मूलमें प्रवेश करनेके कारण। अमृतस्नान होते ही अस्तित्वका महाचेतन समुत्थान होता है।

इस अमृतत्त्वसे विच्छिन्न करनेवाली भाटाकी ओर जानेवाली

यमुनामें ज्वार लाना पड़ता है। ज्वार लाना, उर्ध्वके साथ स्पर्श। अमृतके मूलमें प्रवेश। ब्रह्मसे साक्षात्कार। इस योगसे ही होता है।'

किन्तु यह अमृतमयी वाणी इस चन्द्रकान्तियुक्त तरुणके मुखसे कैसे निकलती है? उनके सोमोज्वल नयनसे स्नेहबिन्दुका सतत आवर्षण कैसे होता रहता है? क्या मातृप्रेम मनुष्यको प्रेममय, करुणामय, आनन्दमय बना देता है?

अनुकूलचन्द्रजीके प्रेम और आनन्दमय जीवनका आकर्षण बढ़ता ही गया। उनके निकट क्षणभर खड़ा रहनेवाला भी उस आनन्दतरंगसे अपनेको न बचा पाता। भाव विह्वल हो पड़ता। चोर, डकैत और शराबीके साथ गाढ़े मित्रके समान मिलते। आलिंगन और चुम्बनसे शराबोर कर देते। उनके स्पर्शमात्रसे एक दिव्य प्रवाह उनके शरीरमें प्रवेश करता, जो जीवनमें आमूल परिवर्त्तन ला देता। व्यभिचारी-व्यभिचारिणी, मद्यप-ठग, नीचातिनीच-अधमाधम भी उनके अपने स्वजन थे। उनकी भाव-लहरी मर्त्यकी नहीं स्वर्गीय होती। उस सरल आन्तरिक प्रेमसंस्पर्शमें जोही आता बदल जाता। स्वर्गीय भावसे आच्छादित हो जाता। हृदयस्पर्शी प्रेम चमत्कारपूर्ण प्रभाव विस्तार करता। सहृदयता हृदयोन्मुक्तता लाती। लोग हृदयके समस्त रुदन, परिताप और क्रन्दनको उनके श्रीचरणोंमें उड़ेलकर निश्चिन्त हो जाते। बोझ घटता, पथ मिलता, परिवर्त्तन होता, सुचरित्रता आती, सुगठन होता। मनस्ताप, कलंक और कामभावसे अहर्निश जलते रहनेवाले उनके विशाल नयनकी दिव्यशक्तिके प्रभावसे अपने मस्तिष्क कोषसे अमृतके समान मधु-बिन्दुका निःसरण होते देखते। उसको पानकर हृदय पंखुड़ियां खिल जातीं। ज्वाला प्रशमित हो जाती— परम तृप्तिका अनुभव करते। दाह और कामकी ज्वालाग्नि प्रशमित हो जाती। आनन्दतरंगसे रोमावली पुलकित हो जाती। अनन्त

रागिनी मुँहसे फूट पड़ती। उस अमृतोपम मधुका पानकर शरीर-का अणु-अणु नवजीवन प्राप्त करता।

कीर्त्तनके निमित्त जब खड़े होते विभिन्न प्रकारके स्फुलिंग शरीरसे निकलने लगते। दिव्य प्रकाशसे समस्त शरीर आच्छादित हो जाता। मुखमण्डल मानों सूर्यके आलोकसे आवृत्त हो गया हो। जो जिस देवताका पूजन करता उनके उस दिव्य मूर्त्तिमें उस देव-देवीका दर्शन पाता। माँ काली, शिव, राम, कृष्ण, क्राइस्ट उनको सामने खड़े दीख पड़ते।

स्वयम् अनुकूलचन्द्र भी मूर्च्छनामें बेहोश पड़ जाते। घण्टों मुर्देकी नाईं शरीर पड़ा रहता उनका। बहिर्चेतना लुप्त हो जाती। रोम-कूपसे तीव्र रक्त-धारा निर्गत होने लगती। कभी हठात् चेत-नाहीन मुर्देके समान शरीरमें एकपर एक आसन होने लगते। हड्डी अब चूर हुई तब, प्राण अब निकलेनेकी अवस्था हो जाती। बेहोश शरीरमें लोटन कबूतरकी नाईं समग्र आसन और मुद्रा एकपर एक होने लगते। कभी कूर्म्मासन कभी पद्मासन। कभी शीर्षासन कभी मयूरासन—इस प्रकार चन्द मिनिटोंमें शताधिक आसन स्वयमेव एकपर एक होते चले जाते। कभी अँगूठेके भारपर सारा शरीर शून्यमें झूलने लगता। कभी कच्छपकी भाँति हाथ-पाँव शरीरके भीतर घुसने लगता और कभी मछलीकी तरह उछल-उछलकर शरीर पृथ्वीपर धड़ाम-धड़ाम गिरता। उस समय ज्ञात होता मानों कोई अदृश्य शक्ति उस पवित्र शरीरपर अपनी क्रिया कर रही है।

आसन मुद्रादिके शेषमें शरीर बाह्य चेतनाहीन शववत् पड़ जाता। इसके उपरान्त ज्ञात होता कि दाहिने पैरका अँगूठा कुछ देरतक थर-थर काँपकर रुक जाता। उसके उपरान्त पुनः थर-थर काँपने लगता। ज्ञात होता अँगूठेके साथ किसी प्रकारके विद्युत तारका सम्बन्ध हो गया हो। कुछ देरतक काँपनेके बाद फिर

विराम आता। इसीके साथ बाह्य चेतना सम्पूर्णतः विलुप्त हो जाती। शरीर सर्द हो जाता। श्वास-यन्त्र और हृत्पिण्डकी क्रिया बन्द हो जाती। नाक फूल जाती, मुँह फूलकर द्विगुणित हो जाता।

काशीपुर ग्राममें ताण्डव कीर्त्तन करते समय जब अकस्मात् शरीर निःस्पन्द हो गया, भक्तगण दिशिहारा बन गये। पावना शहरके सबसे बड़े डाक्टरको लोग बुला लाये।

रोगपरीक्षा करनेके उपरान्त डाक्टरने उदास भावसे अभिमत प्रकाश किया—"हृदय स्पन्दनहीन है, और नाड़ी विलुप्त। शरीरमें प्राण नहीं।"

उस अभिमतके प्रतिवादमें भक्त चिल्ला उठे—"ऐसा कभी हो ही नहीं सकता, प्रभु हम लोगोंको इस प्रकार असहाय करके न जायँगे।"

उस भावाधिक्यको देखकर डाक्टर विद्रूप मुद्रामें बोले—"यथासमय शरीर समाधिस्थ न की गई तो सड़न क्रिया आरम्भ हो जायगी।"

विषादकी एक काली रेखा सबके मुखपर छा गयी। उदास भावसे सब उस महा परिणतिकी ओर देखने लगे।

अकस्मात् पैरका अँगूठा तनिक हिला—कुछ देर थर-थर करके थम गया। डाक्टरने फिर हृदयकी परीक्षा की। हृदयस्पन्दन अब-तक नहीं लौटा। देखते-देखते मुखका रंग परिवर्त्तित होने लगा। आरक्तिम आभासी दीख पड़ी। ललाट धीरे-धीरे दिव्य प्रकाशसे आवृत्त हो गया। होठ हिलने लगे। मुँहसे शब्द निकलने लगे। भारी, दूर, अति दूरसे आनेवाले शब्द! मृतक शरीरसे बोली! डाक्टरने जिसको मुर्दा करार किया हो उसके मुँहसे आवाज!

सुना है ऐसा विस्मयकारी व्यापार?

किन्तु ऐसी घटना बार बार संघटित होने लगी।

कहीं यह वह दुर्लभ समाधि तो नहीं है—यह कहीं अनुभूति-का वह सर्वोच्च स्तर तो नहीं जिसके विषयमें पूर्वावतार मूक और स्तब्ध हैं ? जहाँपर जाकर सब साधकोंका वाक्यारोध हो जाता है, वहाँपर किस स्तरके पार होनेके कारण आप वाङ्मय हो गये, यह कौन बतलावेगा ?

डाक्टर अपनी सब विद्या लगाकर इसका कारण निकालनेमें असमर्थ रहे। निकालें कैसे ? उनके चिकित्सा-शास्त्रमें नाड़ी और हृदयकी क्रियाहीन अवस्थाको मुर्दा तो कहा जाता है।

सबसे अधिक कठिनाईमें पड़े साधक और भक्तगण। किसी भी महापुरुषके जीवनमें ऐसी घटना संघटित होते नहीं देखी गयी। समाधि और महाभाव समाधिके इतिहासमें भी इसकी तुलना नहीं मिलती। तब क्या प्रमाण दें ?

जीवनमें आपने कभी आसन और प्राणायाम नहीं किया, तब आसन-मुद्राकी पुनरावृत्ति बार-बार कैसे होने लगी ? यह रहस्य दुर्भेद्य, विस्मयकर और अमिमांसित है। शास्त्रोंके मन्थन करने-वालोंका कथन है कि, "चरम आध्यात्मिक तत्वका जब स्थूल शरीरमें अवतरण होता है, उस समय चैतन्य ईश्वरीय शक्तिका आलोड़न होने लगता है। सम्भवतः उसीके अवतरणवश आपके पवित्र शरीरमें सहज आसनमुद्राका अपूर्व विकास देखनेमें आता है।"

यह सुनकर भी माँका प्राण नहीं मानता। मृगी-रोगकी चिन्तनामें पड़ी रहतीं।

श्वाँस रुद्ध, शरीर निथर, हृदय स्पन्दनहीन, फिर भी विश्व-रहस्यका उद्घाटन करनेवाली वाणी झङ्करित होती। वाणी भी निकलती विभिन्न स्तर और अवस्थाका मर्मोद्घाटन करनेवाली। कभी सृष्टि-तत्व, कभी धर्म-तत्व तो कभी सार्वजनीन भ्रातृबोध सम्बन्धी।

किन्तु संशयात्माका क्या संशय जाता है ? उन लोगोंने निर्दय रूपमें उस अपार्थिव शरीरकी परीक्षा आरम्भ की। चिकोटियाँ काटी गईं, पिन चुभाया गया, कील मारा गया।

क्रान्तिकारी युवकोंको विश्वास कहाँ ? कहने लगे—ढोंग है, बना हुआ है। पूजा कराना चाहता है। रहो, आज इसकी अग्नि-परीक्षा की जाय। इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो तो मानूँ।

टिकिया और कोयलेका लाल अंगार बनाया गया। उसके उपरान्त चिमटेसे उठाकर कलाईपर रख दिया गया। पर न हाथ हिला न रोंगटे खड़े हुए। हाथ पत्थरकी नाईं ज्योंका त्यों पड़ा रहा। रोएँ जले, चमड़ा गला और गलते-गलते शरीरमें गर्त्त हो गया। किन्तु न हाथ हिला और न वानी निकलना ही बन्द हुआ।

'ओ रे महापापी ! दौड़ आ। अपना सारा पाप-ताप मुझको दे, मेरे गले मढ़ दे। मैं भोक्ता हूँ, भोगनेके लिये आया हूँ। जो हत्याकारी, ब्रह्महत्याकारी, नरहत्याकारी, परस्त्रीगामी है वह अपना समस्त पाप-ताप मुझको दे। मैं सहन करूँगा—उसके बदले मैं कष्टवहन करूँगा। वह सुख भोगे, मैं कष्ट भोगूँगा। किन्तु नामकीर्त्तनमें कूद पड़। नाममय हो जा। श्यामकी बाँसुरी सुन, ओम्‌का जागरण देख।

समझ ले कि तू मुक्त है—बन्धनहीन है। पाप-ताप, भोग-ज्वाला, दुख-यन्त्रणा सब कुछ मैं तेरे लिये भोगूँगा। सब कुछ तेरे बदलेमें सहन करूँगा। मेरे मांससे अपनी क्षुधा मिटा, मेरे रक्तसे प्यास निवृत्त कर। तू आनन्द उपभोग कर, मैं तेरे पापोंको भोगूँगा।

नाम कर, नाम। संकीर्त्तनमें कूद पड़। देख, मनका गढ़ना कष्टकर व्यापार है। कीर्त्तनमें शक्ति है, मनको ऊपर उद्ध्र्वमें ले जाता है संकीर्त्तन...... ।"

उनकी नाड़ीपरका रखा अंगारा जलते-जलते राख हो गया।

आजन्मके लिये निर्दयताकी अमिट छाप पड़ गयी उस पुनीत शरीरमें ।

धीरे-धीरे संज्ञा उच्च स्तरसे स्वयमेव फिरने लगती । उस समय कातर स्वरसे जलकी माँग करने लगते । जलपान करनेके उपरान्त संज्ञा फिर आती । स्वस्थ मनुष्यकी भाँति बातें करने लगते ।

भाव-समाधिकी बात सर्वत्र फैल गयी । वाणी सुननेके लिये लोगोंका रेल-पेल होने लगा । उन्हींमेंसे कुछ लोगोंने वाणी लिपि-बद्ध करनी आरम्भ की । प्रथम कुछ दिनोंकी वाणी तो लिपिबद्ध ही न हो पाई । इसके अतिरिक्त तेजीके साथ निकलनेवाली वाणी और जो वाणी अज्ञात भाषामें निकलती वह भी न लिखी जा सकी । कुल एकहत्तर दिनकी वाणी पावना शहरके प्रसिद्ध वकील वृन्दावनचन्द्र अधिकारी बी० एल० अनन्तनाथ राय, किशोरीमोहन दास प्रभृति व्यक्तियोंकी चेष्टासे लिपिबद्ध हो पाई । वाणी कभी इतनी द्रुतगतिसे निकलती जिसे सुनकर लिख सकना कठिन होता । इसलिये कई आदमी एक साथ लिखते । हिन्दी, संस्कृत और अन्यान्य भाषाविदोंके अभाववश लिपिबद्ध ही न हो पाई । जो कुछ लिपिबद्ध की जा सकी थी वह 'पुण्य-पोथी'के नामसे प्रकाशित हुई है ।

चित्तवृत्ति, चिन्तनाशक्ति आदि सब मनुष्यशक्तियोंके विलुप्त हो जानेके उपरान्त समाधि अवस्था आती है । समाधिकी चरम अवस्थामें उपनीत होनेपर आदमीकी अपनी विशेषता और व्यक्तित्व विलुप्त हो जाता है । वहाँके अपूर्व आध्यात्मिक आनन्दमें अस्तित्वका लय हो जाता है । वहींपर परिसमाप्ति हो जाती है । किन्तु उस महानन्दावस्थासे जो प्रत्यावर्तन करके आते हैं वे समग्र विश्वके जीवन होते हैं । उनकी आत्मा विश्वात्माके अन्तस्थलमें विराजित रहती है, इसीलिये वे होते हैं विश्वपति । निखिल जग-

जीवके जीवनकी उनकी आत्मामें स्पन्दनानुभूति होती है।

इतिहाससे समाधि, भावसमाधि या महाभावसमाधिका कुछ-कुछ परिचय प्राप्त होता है। महापुरुषोंके जीवनका गम्भीरतापूर्वक यदि अध्ययन किया जाय तो श्रीकृष्ण, श्रीबुद्ध, श्रीचैतन्य, श्री रामकृष्ण परमहंसदेवके नाना प्रकारकी भाव-समाधिका विवरण पाया जाता है। किन्तु सम्पूर्ण बाह्यचेतनाशून्य, हृत्स्पन्दनहीन अवस्थामें इतनी गम्भीर तत्वपूर्ण वाणी अनर्गल निकलते रहना यह एक नवीन वस्तु है, इसका परिचय मनुष्यके इतिहासमें कभी नहीं पाया गया। जो बात आध्यात्मिक जगतके इतिहाससे भी बाहरकी है उसकी व्याख्या विज्ञान क्या करेगा?

किन्तु इसी भाववाणीमें अनुकूलचन्द्रका निजस्वरूप भी प्रकट हो पड़ा। वह अपने आप व्यक्त हो पड़े—"प्रकाशकी सृष्टि उस समयतक न हुई थी, अन्धकार भी न था और न जगतकी सृष्टि ही हुई थी। वे एकाकी थे, सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छा हुई और सब कुछकी सृष्टि हुई। वे थे और था मैं......"

"मैं, मैं, मैं। मेरा अपना 'मैं' जगतको प्रेमके सूत्रमें बाँधनेके निमित्त है। नवीन पुरातन नहीं, बहु बार आया था, पुनः आया हूँ। मेरा स्थूल रूप ही प्रेम है। शिरा-शिरा, तन्तु-तन्तु में, प्रत्येक केन्द्रमें जिस कम्पनका अनुभव किया जाता है, वह प्रेम ही मेरा स्वरूप है। शान्तिराज्यके उस विराट सिंहद्वारकी कुञ्जी मेरे पास है—वह कुञ्जी प्रेम है।"

"मुझको जो एक बार स्पर्श कर लेता है—उसको मैं स्वर्गके राज्यमें उठा देता हूँ। उसके उपरान्त मेरा सारूप्य लाभ कर लेता है।"

"I am Supreme soul—the Parabrahma."

"चरममें कल्किका चरम प्रकाश होता है।"

"आदिमें मैं एकाकी था, कुछ भी दूसरा न था, तदुपरान्त हुआ

विकार, पुनः निर्विकार होनेकी इच्छा होती है। इसीसे कल्कि अवतार बना हूँ। अपने मैंको बटोरकर पूर्णत्व प्राप्त करूँगा। देख, तुम लोगोंके लिए कितना भाग, कितना महाभाग बना हूँ—यह हुआ हूँ केवल बटोरनेके लिए।"

"जब तू ब्रजलीलाके नित्यरासमें मतवाला होता है उस समय मैं प्रति घट-घटमें श्रीकृष्ण बना रहता हूँ। और जब तू नदियाके पथ घाटपर हरि बोल, हरि बोल करता हुआ उन्मादग्रस्त बनकर नृत्य करता है उस समय सर्वघटमें मैं श्री चैतन्यके रूपमें चैतन्य दान करता हूँ। मैं नित्य साक्षीस्वरूप हूँ। मैं ही श्रीकृष्ण, मैं ही श्रीचैतन्य, मैं ही राम-कृष्ण हूँ। मैं ही सब हूँ, मैं ही सब हूँ।"

"मेरा मैं जग पड़ा है। जीव! तुझको चिन्ता क्या है? तुझे अब शोक, दुःख कैसा?"

"अभी अभी भी—यह देख, परमात्माका पूर्ण विकास अन्तर अन्तरमें प्रवेश करता जा रहा है। परमात्मा तुम्हारे लिये व्याकुल बने हैं। जो कभी हुआ न था, बहु कष्ट करके भी लोग जिसको न ला सके थे, इस बार तुमको वही मिला है।"

"Try to draw your attention upon the current of spirit that is going on at the junction of the two eyes, at the root of the nose. It is thc spirit current onward. Children, you must fix your attention at the root of the nose. This was my practice when I was Jesus. You can search Holy Book."

अर्थात्

जब मैं जीसस था उस समय मैं त्रिकुटीपर ध्यान किया करता था। इस बातका अनुसन्धान तुम होलीबुकमें पा सकते हो। बच्चो,

त्रिकुटीपर जो शक्तिधारा प्रवाहित हो रही है उसपर ध्यान रखो। यह बहिर्गामी शक्तिधारा है।

—"मैं अनन्त धारा हूँ, मैं सत्यपुरुषकी धारा हूँ, मैं शब्द हूँ। मैं ईश्वर हूँ, मैं ज्योति हूँ, मैं ही सृष्टि भी हूँ।"

षड्विंश अध्याय

अनुकूलचन्द्रके हृदयमें जो असह्य ज्वाला थी वह कौन जाने? इसी ज्वालाके कारण स्कूल-पाठशालाके विद्यार्थी जीवनमें मन न टिका। अर्थकरी डाक्टरी विद्याके मान-सम्मान और आयमें मन न लगा। सब कुछ छोड़छाड़ कर कीर्त्तनमें लग पड़े। उसमें मन कितने दिन टिकता है कौन जाने? एक दिन रंज होकर माँने पूछा—कीर्त्तनसे क्या खाना जुटेगा?

खानेके निमित्त ही यदि डाक्टरी करनी पड़े तो ऐसी डाक्टरी से हमें काम नहीं। चारों ओरके हाहाकारको सुन-सुनकर मेरा हृदय जल रहा है। इसके मारे किसी काममें मन नहीं लगता। जो काम मेरे मन और हृदयकी ज्वालाको जुड़ा सके उस काममें क्या लगा सकती हो?

इस बातका माँ क्या उत्तर दें, कुछ सूझ न पड़ा। मनमें हुआ, इसके मस्तिष्कमें कोई गड़बड़ी जरूर हो गई है, अन्यथा मनके ज्वालाकी बात न करता।

उस समय आप यह कैसे विश्वास करतीं कि उनके विकृत मस्तिष्क अनुकूलचन्द्रके मनमें, विश्वकी चरम समस्या नीहारिका की नाईं वाष्पज्वालाका उद्‌गीरण कर रही है। आप यह कैसे समझ पातीं कि उनके पागल पुत्रके हृदय-प्रदेशमें विसूवियस अग्नि-विस्फोट करनेका प्रयत्न कर रहा है?

पारिवारिक अवस्थाको दिखलाते हुए अर्थोपार्जन करनेकी बहुचेष्टा और अनुनय-विनय करके भी जब माँने देख लिया कि पागलको किसी काममें नहीं लगाया जा सकता, तब हताश होकर उन्होंने चेष्टा करना ही बन्द कर दिया। पिताजीपर भी इस बातका प्रभाव न पड़ा हो, ऐसी बात नहीं।

किन्तु अनुकूलचन्द्र थे सर्वथा मजबूर। एक अज्ञात शक्ति

उनको उद्भ्रान्तकी तरह नचाती रहती थी। इसके बारेमें आप कहीं दो दण्ड स्थिर न रह पाते, जहाँ-तहाँ मारे फिरते थे। उनके मनमें कौन चीज हाहाकार कर रही है, इस बातको वह खुद भी समझ न पाते थे। ज्ञात होता कोई अदृश्य शक्ति उनको हरदम खींचती रहती है। मानों कोई एक अज्ञात ध्वनि सतत पुकार रही है। इनके मारे उन्हें नींद न आती। आँखें लगी नहीं कि सारा शरीर रह-रहकर काँप उठता। नींदमें बड़बड़ करते रहते। ज्ञात होता आप किसीसे बातें कर रहे हैं। किन्तु वह कौन है, क्या है, यह क्या कोई समझ पाता?

और वह अज्ञात शक्ति उन्हींको जो पुकारती थी इसका कारण क्या है? वह कौन है जो पुकारती रहती है? उनके मन और हृदयमें जो ज्वाला थी उसीका कारण क्या है? जिस वस्तुको पाकर लोग हँसते-खेलते और आनन्द मनाते हैं, वह आपको भी क्यों अच्छा न लगता था? आप जो एकाकी पद्माके वनप्रान्तमें मारे फिरते हैं, इसका कारण क्या है?

माता-पिता इसके प्रति ध्यान दें या न दें, शिष्यको चैन कहाँ? आपकी इस उद्भ्रान्त अवस्थाको देखकर अनन्तनाथ और दुर्गानाथ छायाकी तरह पीछे-पीछे घूमने लगे।

उस रात उन्मत्तकी नाईं पद्माके किनारेवाले जंगलमें घूम रहे थे अनुकूलचन्द्र। आकाशस्थ एक तारापर आँखें निबद्ध थीं, किन्तु पैर चल ही रहे थे। सामने काँटा है या गड़हा, साँप है या बाघ, किसी बातका होश नहीं। निस्तब्ध रात्रि, झींगूरकी झनझन और पद्माकी कलकल ध्वनि केवल सुनी जा रही थी। चार डेगके आगे ही एक भयानक गड्ढा था, गिरनेपर फिर पता न लगता। किन्तु आप आँखें आकाशपर लगाये चले जा रहे थे। अनन्तनाथने दौड़कर पकड़ लिया। तब जाकर बचे।

इसके उपरान्त दोनों शिष्योंने आपके पुनीत शरीरकी पहरे-

दारी आरम्भ की। गुरु-देवके कुटीरमें ही दोनोंने अपना स्थान बनाया ! जबतक आप जगे रहते, नाना प्रकारकी तत्वालोचनामें उनको भुलाये रखते। आप जब विश्राम करने जाते दोनों या तो आपके दोनों पार्श्वमें लेट जाते किंवा दर्वाजेके दोनों किनारेपर बैठकर पहरा देते।

भक्त और भगवानकी लीला जिस प्रकार चलती है वैसे ही गुरु-शिष्यमें चलने लगी। भक्तका कार्य जैसे भगवानके बिना नहीं चलता वैसे ही भगवान्का काम भक्तके बिना नहीं चलता। कभी भक्त रसमय बनते हैं तो भगवान् रसिक और कभी भगवान् पद्म तो शिष्य भ्रमर। रसानन्दके लोलुप दोनों ही होते हैं। रसानन्द न हो तो लीला-खेल ही बन्द हो जाय, जीवन शुष्कतामें परिणत हो जाय। भगवान्ने इसीसे अपने रसमाधुर्य्यका पान करनेके निमित्त दो रूप बना रखा है। गुरु और शिष्य, माँ और पुत्र, प्रभु और दासका रूप बनाकर लीला-विस्तार कर रखा है। चाहे जो हो, किन्तु शिष्योंके इस नयी पद्धतिके अपनानेसे अनुकूलचन्द्र-जीकी मानसिक अवस्थामें बहुत परिवर्त्तन आया। उन्होंने पूर्ण मनोयोगके साथ शिष्योंके हृदयमें रससिंचन करना आरम्भ किया। वे लोग भी आस्वस्त होकर गुरु-सेवाकी साधनामें लगे।

इन्हीं दिनों एक दूसरी लीला वहाँपर होने लगी। साधु-संन्यासी, औलिया-फकीर, कापालिक और भैरवियोंका आना-जाना बढ़ गया वहाँ। पेटू साधु-संन्यासी नहीं, खूब ऊंचे दर्जेके पहुँचे हुए साधु-संन्यासी। कोई आ रहा है हिमालयसे तो कोई गिरनारसे। कुछने श्मशानकी ओर डेरा डाला तो किसीने अनुकूलचन्द्रजीकी विश्राम-कुटीरके बगलमें ही धूनी रमाई! कहाँसे आते हैं, क्यों आते हैं, कौन जाने ?

किन्तु मुफीज औलिया और भैरवीके मारे अनन्तनाथ बेचैन हो गये। यह औलिया फकीर दिनभर कहाँ रहता यह तो पता न

चलता, किन्तु रात घनीभूत होते ही कुटीरके सामनेवाले बराम्दामें आकर बैठ जाता। चुप बैठा रहता भी तो अच्छा होता, किन्तु वह तो पागलकी तरह अल्ला हू, अल्ला हू की रट लगाता रहता। दो बजते न बजते उसकी आवाज तेज हो जाती। रह रहकर चिल्ला पड़ता—'उठ जाग मुसाफिर रैन गई, अब नाम करो, बस नाम करो।' उसके मारे अनन्तनाथ न तो नाम-ध्यान कर पाते और न एक पल सो ही सकते। अन्तमें उसको हटा देनेकी माँग करने लगे। यह सुनकर अनुकूलचन्द्रजीने कहा—'वाह जी, मैं उसको कैसे हटाऊँ? रातभर वह जो अल्लाका नाम करता रहता है यह तुम नहीं देखते?'

और भैरवी? उसकी बात न पूँछें। वह कभी षोड़शीदेवीके घरमें घुस जाती तो कभी अनन्तनाथकी कुटीरमें। घुस तो जाती ही थी, उसपर कुछ ऐसा भाव-भंगी करती जो अनन्तनाथको सह्य न होता। ज्ञात होता मानों वह किसी चीजको सूँघ रही हो।

आँधीकी तरह वह कब आ पड़ेगी, इसका पता किसीको न रहता। भरी जवानी, लोग देखकर सन्देह करेंगे इस भयसे अनन्तनाथ सूख जाते। कब कहाँ रहती है, यह उन्हें ज्ञात न था। अन्यथा वे उसको समझानेका भी प्रयत्न करते।

उन्हीं दिनों पहुँचे स्वामी कालिकानन्द सरस्वती। आपने हिमाचलकी कन्दरासे निकलकर हिमाईतपुरके दक्षिण दिशास्थित श्मशानभूमिमें अपना त्रिशूल गाड़ा। सूर्योदयसे सूर्यास्तपर्यन्त पद्मासन मारे सूर्याभिमुख त्रिशूलपर बैठे रहते।

अधरस्थित ऐसे तापसका दर्शन करने भला लोग न आवें? भीड़ बढ़ती गई। पैसा, रुपया और सिरनीका अम्बार लग जाता, किन्तु आप उधर भ्रूक्षेप न करते, आँखें सूर्यकी ओर ही लगी रहतीं आपकी।

अनुकूलचन्द्रजीके शिष्योंने भी आना-जाना आरम्भ किया।

इनके पहुँचनेपर सन्यासीकी आँखें झुक जातीं, मुखपर हास्यरेखा फूट पड़ती। आप अधरसे बैठकर कहते—'अरे, सीखले, सीखले, हठयोग सीख ले। बड़ा उपकार होगा तुम लोगोंका।'

अनन्तनाथने जो सम्वाद पाया तो एक दिन कीर्त्तनके साथियोंके साथ मिलने जा पहुँचे। अभी जंगलसे बाहर न हुए थे कि कानोंमें दो आदमियोंकी बातचीतकी आवाज आई। झाँककर देखा तो भैरवी और सन्यासीमें बातें हो रही हैं। उसके प्रति आपकी धारणा पहले ही खराब हो चुकी थी। आप वहीं खड़े होकर दोनोंका कथोपकथन सुनने लगे। भैरवीने कहा—'छै महीनासे अधिक परिश्रम करते बीत गया, पर किसी महापुरुषका पता न लगा।'

सन्यासी :—तब यह दिव्य-सौरभका सुगन्ध कहाँसे आता है? कोई महापुरुष जरूर यहाँपर हैं। खोज, ढूँढ़।'

भैरवी—'मैं तो खोजते-खोजते हार गई। अब खोजना हो तो तुम्हीं खोजो।'

सन्यासी—'क्यों रे साली! मेरे बारह वर्षकी तपस्याकी सिद्धिमें जब केवल तीन दिन बाकी थे उस समय तो हिमालयकी गुफामें तपस्या भंग करने पहुँच गयी और यहाँ गृहस्थोंके गृहसे निकलनेवाले सुगन्धका मूल उत्स कहाँ है इसका तू पता नहीं लगा सकती? आसन छोड़कर अब द्वारपर मुझे मारा मारा फिरना पड़ेगा? अन्तमें तू मेरी मिट्टी पलीत करके मानेगी। जा, मैं तेरा मुख नहीं देखना चाहता।'

इसके उपरान्त भैरवीको कम देखा जाने लगा। वह कहाँ रहती है, क्या करती है कुछ भी पता न चलता।

इसी बीच वहाँ एक कापालिक आ उपस्थित हुआ। पुत्र देने, रोग छुड़ाने आदि विभिन्न कारणोंके पीछे काली स्थानपर यज्ञ-याज्ञ होम होने लगा। एक दिन उसने काली माँके सन्मुख बकरा

चढ़ानेकी व्यवस्था की। गाँवके सैकड़ों आदमी बलिप्रदान यज्ञको देखनेके निमित्त आ जुटे। स्नान करानेके बाद उसे फूलसे विभूषित करके यूपकाष्ठके सम्मुख खड़ा कर दिया। खड्गधारी कापालिककी विकट मूर्त्ति देखकर बकरा कातर कण्ठसे में-में, माँ-माँ करने लगा।

पश्चिमी वायुके साथ माँ-माँका वह आर्त्त स्वर अनुकूलचन्द्रके कानों तक आया। विरहज्वालाके जगानेमें घृताग्नि पड़ गई। बेचैन होकर आनेवाले शब्दकी दिशाकी ओर दौड़ पड़े। उनके पीछे कीर्त्तनमें आने-जानेवाले दस-बीस आदमी भी दौड़ते पहुँचे।

कापालिकके निकट पहुँचकर अनुकूलचन्द्रने विनीत स्वरमें कहा —"मैं ब्राह्मण हूँ, आपसे एक भीख चाहता हूँ।' कापालिक लाल आँख किये बोला—'क्या माँगते हो ?' आपने उसी प्रकार करुणाभरे स्वरमें कहा—'मैं इस बकरेको चाहता हूँ।'

'यह माँका भोग है, इसे नहीं दे सकता।'

'माँ यदि रक्त चाहती हैं तो मेरे गलेको चढ़ाइये।' ठाकुरके दुःखसे दुःखित एक ब्रह्मचारी शिष्यने कहा।

कापालिक राजी न हुआ। अनुकूलचन्द्र उपस्थित एक-एक व्यक्तिकी चिरौरी करने लगे। जमीन्दारके यहाँ भी दौड़े गये।

इसी बीच तरणीको आवेश आ गया। सैकड़ों आदमियोंके बीचसे बकरेको गोदमें लेकर फाँदकर निकल गया।

कापालिक अनुकूलचन्द्रको शाप देता चला गया। किन्तु माँ जैसे शिशुको छातीसे लगाये रक्षा करती है वैसे बकरेको छातीसे लगाये रक्षा करते रहे। एकका चार दाम देकर उन्होंने उसका प्राण बचाया।

एक दिन अनुकूलचन्द्रजी रात्रिके समय अपने पद्मातीरस्थ कुटीर में सोये हुए थे। उनके शरीररक्षक दोनों शिष्य द्वारके दोनों ओर बैठे नाम करते थे। इसी समय अनुकूलजीके मुखसे बिड़बिड़ शब्द

होने लगा। कुछ क्षणके उपरान्त हठात् आप उठ बैठे और द्वार खोलकर बाहरकी ओर निकल पड़े। अनन्तनाथ और दुर्गानाथने भी पीछे-पीछे दौड़ना आरम्भ किया। घोर अन्धकार रात्रि, हाथको हाथ न सूझता था। रह-रहकर अनुकूलचन्द्र कहते जा रहे थे —'हे परमपिता परमात्मा ! तुम्हारा कार्य कैसे करूँ ? आदमी नहीं पाता नाथ ! जीवन व्यर्थ गया।

उसी शब्दके पीछे दोनों शिष्य भी दौड़ते गये। शब्द धीरे-धीरे पद्मातीरवर्त्ती श्मशानकी ओर बढ़ता गया। ये लोग भी वहाँ पहुँचे ! पहुंचनेके उपरान्त देखा अनुकूलचन्द्रजी दोनों हाथ प्रसारित किये चिल्ला रहे हैं। उनके मुख-मण्डलसे सर्च लाइटके समान एक अपूर्व आलोकज्योति निकलकर आकाशतक छा गयी है। उस प्रकाशसे आकाशस्थ मेघ लाल हो गये हैं। इसी बीच वह चिल्लाकर कहने लगे—'हे परमपिता ! आदमी न मिला। मैं आपका काम कैसे करूँ ? जिस जीवनसे आपका काम न कर सका उसको क्यों रखूँ ? मैं अब प्राण देकर आपके चरणोंमें आ रहा हूँ।' इतना कहकर जैसे ही आप पद्मामें कूदनेके लिये बढ़े कि दोनों शिष्योंने पैर पकड़कर रुदन आरम्भ कर दिया।

पैर पकड़नेके साथ-साथ अनुकूलचन्द्रका शरीर काँपने लगा और शनैः शनैः, तिल-तिल करके मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। दोनोंने अपने हाथसे उस पवित्र शरीरको धर लिया और आश्रमकी ओर ले चले।

ठीक इसी समय झाड़-झुरमुटसे निकलकर भैरवी हँसती हुई भागी। भागते समय वह कहती जाती थी—'जिस सुगन्धकी खोजमें एक वर्ष लगी थी, उसको पा लिया। वह प्रकाश आज देख लिया। अब सब काम हो जायगा।'

यह पुनीत घटना सन् उन्नीस सौ सतरहके श्रावण मासके डेढ़ बजे रात्रिमें संघटित हुई थी।

सप्तविंश अध्याय

संकीर्त्तनमें बल है। संकीर्त्तनमें महान् शक्ति है। उस शक्तिसे एक प्रकारके उत्तापका सृजन होता है जो मेरे मस्तिष्ककोष और स्नायुमें बलसंचार करता है। इसके दिव्य उत्तापसे हृदय और मस्तिष्ककोषकी पँखुड़ियाँ विकसित हो पड़ती है। संकीर्त्तनसे इस प्रकारका गम्भीर उद्दीपन उत्पन्न होता है जो विच्छिन्न मनको उद्‌र्ध्वकी ओर बरबस खींच ले जाता है। मनको संकीर्त्तनमें सतत मतवाला बनाये रखने, विभोर रखनेसे चित्तविकार प्रशमित होता है। मन एकाग्र होता है। ध्यान-धारणाकी शक्ति बढ़ती है। मानसिक रोग, दुर्बलता और क्लीबताको दूर करनेमें संकीर्त्तनके समान दूसरी सहज साध्य औषधि संसारमें नहीं है। कीर्त्तनरूपी कस्तूरीका प्रयोग करनेसे मरे मनुष्यमें नव-जीवन प्राप्त होता है, नवप्राणका जागृरण होता है। अनुकूलचन्द्रजी हिमाईतपुरके चतुर्दिकके ग्रामोंमें इसके बलपर नव-जीवन ले आये थे। इस बार सामूहिक प्रयोग करनेका निश्चय किया।

इसी कीर्त्तानासवमें उन्मत्त बनाकर चैतन्य महाप्रभुने विधर्मीके प्रचण्ड प्रभावको अवरुद्ध करनेमें आर्य-जातिको समर्थ बनाया था।

उनके उत्तरकालीनने भी वही चिरन्तन प्रणाली अपनायी!

इस महासंकीर्त्तन अभियानके प्रथम अनुकूलचन्द्रने अपनी सुरत सम्हाली, अपना रूप स्मरण किया। देखते-देखते उनके प्रत्येक अङ्गकी परिचालनभंगी, चरणद्वयके विश्व-विमोहन नर्त्तन और ठुमक चालकी गति,आरक्तिम वदन-मण्डलका ज्योति:विकरण अत्यधिक तीव्र हो गया। उनके शरीरके चतुर्दिक एक तीव्र तड़ित् मण्डल विराजित रहने लगा उसमेंसे सतत तीव्र विद्युत् कण और विद्युत स्फुलिंग रेखा निकलने लगी। उस समय आपके सन्निकट जो ही पहुँचता पतंगकी नाईं कीर्त्तनाग्निमें कूद पड़ता। उनके

चुम्बन-आलिंगनके प्रभाववश उनके पार्षदगणोंमें भी एक अभूतपूर्व शक्ति बढ़ गयी। किशोरीमोहन, अनन्तनाथ, गोस्वामी सतीशचन्द्र, नफरचन्द्र, तरणी, कोकन, दुर्गानाथ प्रभृति शिष्योंमें एक विचित्र उन्माद उत्पन्नकारिणी शक्ति भर गयी। किसी-किसीके मुख-मण्डलसे दिव्य ज्योतिका प्रकाश निकलने लगा। किशोरीमोहन और सतीश गोस्वामीकी अवस्था तो और भी विचित्र हो गयी। कीर्त्तनका रण-वाद्य सुनकर ही इनका शरीर स्फीत हो जाता। सर और दाढ़ीके बाल तीरकी तरह तन जाते। रोमावली खड़ी हो जाती। समग्र रोमकूपसे श्वेत धारा निर्गत होने लगती। कभी-कभी तो रक्त भी निकलने लगता। वाद्य-यन्त्रोंके तुमुल निनादको सुनकर किशोरीमोहन हुङ्कार मारते हुए चतुर्दिक दौड़ने लगते। चतुर्दिक अग्निकी नाईं कीर्त्तनध्वनि प्रसारित होने लगती। उस आवेगमें पड़कर नगारा डङ्का बजानेवाले मतवाले होकर बाजा बजाते रहते। देखते-देखते किशोरीमोहन हनुमानकी तरह कूदने लगते। उनके उस नाच-कूदके साथ ताल मिलाकर डङ्का गर्जने लगता। कभी-कभी तो आप डङ्कापर कूदकर खड़े हो जाते। इतनेपर भी तरणीका हाथ न रुकता। वह किशोरीमोहनके साथ डङ्काको गलेसे लटकाये मतवालेके सदृश बजाता रहता। डङ्काके वज्र निनादसे रुद्रताल निकलने लगता। उस गगन विदारी नादसे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लताकी कौन कहे आकाश-पाताल भी काँपता-सा दीख पड़ता।

देखते-देखते कीर्त्तनानन्दकी ज्वार तीव्रतम होती गई। हिमाईतपुरसे उठनेवाला महा-संकीर्त्तनका वह गैरिक स्रोत नाना देश और प्रान्तोंमें प्रसारित होने लगा। भगवती भागीरथीकी जो धारा पद्मा कहलाती है उसको आप्लावित करता हुआ वह नदिया जिलेके कुष्टिया नगरीके बहिर प्रान्तमें पहुँचा। अनन्तनाथ, किशोरीमोहन, दुर्गानाथ, गोस्वामी सतीशचन्द्र, नफरचन्द्र, चारुचन्द्र,

सप्तविंश अध्याय

संकीर्त्तनमें बल है। संकीर्त्तनमें महान् शक्ति है। उस शक्तिसे एक प्रकारके उत्तापका सृजन होता है जो मेरे मस्तिष्ककोष और स्नायुमें बलसंचार करता है। इसके दिव्य उत्तापसे हृदय और मस्तिष्ककोषकी पँखुड़ियाँ विकसित हो पड़ती है। संकीर्त्तनसे इस प्रकारका गम्भीर उद्दीपन उत्पन्न होता है जो विच्छिन्न मनको उद्‌र्ध्वकी ओर बरबस खींच ले जाता है। मनको संकीर्त्तनमें सतत मतवाला बनाये रखने, विभोर रखनेसे चित्तविकार प्रशमित होता है। मन एकाग्र होता है। ध्यान-धारणाकी शक्ति बढ़ती है। मानसिक रोग, दुर्बलता और क्लीबताको दूर करनेमें संकीर्त्तनके समान दूसरी सहज साध्य औषधि संसारमें नहीं है। कीर्त्तनरूपी कस्तूरीका प्रयोग करनेसे मरे मनुष्यमें नव-जीवन प्राप्त होता है, नवप्राणका जागृरण होता है। अनुकूलचन्द्रजी हिमाईतपुरके चतुर्दिकके ग्रामोंमें इसके बलपर नव-जीवन ले आये थे। इस बार सामूहिक प्रयोग करनेका निश्चय किया।

इसी कीर्त्तनासवमें उन्मत्त बनाकर चैतन्य महाप्रभुने विधर्मीके प्रचण्ड प्रभावको अवरुद्ध करनेमें आर्य-जातिको समर्थ बनाया था।

उनके उत्तरकालीनने भी वही चिरन्तन प्रणाली अपनायी !

इस महासंकीर्त्तन अभियानके प्रथम अनुकूलचन्द्रने अपनी सुरत सम्हाली, अपना रूप स्मरण किया। देखते-देखते उनके प्रत्येक अङ्गकी परिचालनभंगी, चरणद्वयके विश्व-विमोहन नर्त्तन और ठुमक चालकी गति,आरक्तिम वदन-मण्डलका ज्योति:विकरण अत्यधिक तीव्र हो गया। उनके शरीरके चतुर्दिक एक तीव्र तड़ित् मण्डल विराजित रहने लगा उसमेंसे सतत तीव्र विद्युत् कण और विद्युत स्फुलिंग रेखा निकलने लगी। उस समय आपके सन्निकट जो ही पहुँचता पतंगकी नाईं कीर्त्तनाग्निमें कूद पड़ता। उनके

चुम्बन-आलिंगनके प्रभाववश उनके पार्षदगणोंमें भी एक अभूतपूर्व शक्ति बढ़ गयी। किशोरीमोहन, अनन्तनाथ, गोस्वामी सतीशचन्द्र, नफरचन्द्र, तरणी, कोकन, दुर्गानाथ प्रभृति शिष्योंमें एक विचित्र उन्माद उत्पन्नकारिणी शक्ति भर गयी। किसी-किसीके मुख-मण्डलसे दिव्य ज्योतिका प्रकाश निकलने लगा। किशोरीमोहन और सतीश गोस्वामीकी अवस्था तो और भी विचित्र हो गयी। कीर्त्तनका रण-वाद्य सुनकर ही इनका शरीर स्फीत हो जाता। सर और दाढ़ीके बाल तीरकी तरह तन जाते। रोमावली खड़ी हो जाती। समग्र रोमकूपसे श्वेत धारा निर्गत होने लगती। कभी-कभी तो रक्त भी निकलने लगता। वाद्य-यन्त्रोंके तुमुल निनादको सुनकर किशोरीमोहन हुङ्कार मारते हुए चतुर्दिक दौड़ने लगते। चतुर्दिक अग्निकी नाईं कीर्त्तनध्वनि प्रसारित होने लगती। उस आवेगमें पड़कर नगारा डङ्का बजानेवाले मतवाले होकर बाजा बजाते रहते। देखते-देखते किशोरीमोहन हनुमानकी तरह कूदने लगते। उनके उस नाच-कूदके साथ ताल मिलाकर डङ्का गर्जने लगता। कभी-कभी तो आप डङ्कापर कूदकर खड़े हो जाते। इतनेपर भी तरणीका हाथ न रुकता। वह किशोरीमोहनके साथ डङ्काको गलेसे लटकाये मतवालेके सदृश बजाता रहता। डङ्काके वज्र निनादसे रुद्रताल निकलने लगता। उस गगन विदारी नादसे मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, लताकी कौन कहे आकाश-पाताल भी काँपता-सा दीख पड़ता।

देखते-देखते कीर्त्तनानन्दकी ज्वार तीव्रतम होती गई। हिमाईतपुरसे उठनेवाला महा-संकीर्त्तनका वह गैरिक स्रोत नाना देश और प्रान्तोंमें प्रसारित होने लगा। भगवती भागीरथीकी जो धारा पद्मा कहलाती है उसको आप्लावित करता हुआ वह नदिया जिलेके कुष्टिया नगरीके बहिर प्रान्तमें पहुँचा। अनन्तनाथ, किशोरीमोहन, दुर्गानाथ, गोस्वामी सतीशचन्द्र, नफरचन्द्र, चारुचन्द,

तरणी, कोकन प्रभृति भक्तोंके साथ कीर्त्तनकी अमियवारिसे अभिसिञ्चित करनेके निमित्त स्वयं अनुकूलचन्द्र कुष्टिया घाटपर उतरे ।

उतरनेके साथ ही साथ डङ्का बज उठा। उसीके साथ बज उठा ढोल-मृदङ्ग, झाल-कर्त्ताल और घण्टाका घननिनाद । आनन्द में उन्मत्त अनुकूलचन्द्रजी आकाशकी ओर हाथ उठाये कुष्टियाके गली-कूचेको हरिध्वनिसे मुखरित करने लगे। उनके मुख-मण्डलसे दिव्य प्रकाश निकल रहा था। कमलके समान बड़े नयनोंसे धारा की नाईं अश्रु गिर रहा था। कभी हँसते, कभी रोते हरि-हरि कहते मतवालेकी तरह झूमते जा रहे थे। अपने नवनीतके समान सुकोमल करोंसे कभी किसीका पैर पकड़ लेते तो कभी किसीको आलिंगनपाशमें आबद्ध कर लेते।

उनके उस सुकोमल स्पर्शमें कैसी विद्युत्मय झङ्कार थी जिसके कारण सभी हँसते, गाते और अश्रु गिराते,एक दूसरेकी चरणधूलि लेने लगते प्रेमके उस मनमुग्धकर दृश्यको देखकर सभी विमुग्ध हो जाते। छज्जोंसे उलूध्वनि होने लगती।

कीर्त्तनके प्रेमाकर्षणमें कुष्टियावासी अपने आपको भूल गये। हिन्दू-मुसलमान सबके सब कीर्त्तनमें खिंच गये। किसीको तन-बदनकी सुधि न रही। प्राणोंमें मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाली स्वर-लहरीको सुनकर सब लोट-पोट करने लगे। प्रेममें विभोर गौहर अली नालेमें पड़ा अल्ला-अल्ला कर रहा था। उसीको आलिङ्गन में बाँधे विष्टोदास हरि-हरि कर रहे थे। कुछ देरके उपरान्त दोनों यह भी कहना भूल गये। रह-रहकर उन दोनोंके मुखसे आह शब्द निकलता रहा मात्र। उधर अब्दुल जब्बार बस थिरकता जा रहा था। मुँहसे गाज निकल रही थी, आँखें उन्मीलित थीं उसकी। सैकड़ों आदमी भूमिपर लोटकर औंधे मुँह पड़े थे। हरि बन्द होकर मात्र "र" का उच्चारण हो रहा था उनके मुखसे। उस

प्रेमोन्मादकारी दृश्यको जिसने न देखा हो वह इसको कैसे समझेगा ? इस प्रकार कुष्टियाका कोना-कोना हरि बोल स्वरसे गूँज उठा।

दूसरे दिन किशोरीमोहन हरिनाम वितरण करनेके निमित्त द्वार-द्वार घूमने निकले। द्वारपर पहुँचते ही हरि बोल ध्वनि करते। लोग भिखारी समझकर भिक्षा देने आते। उस समय आप गिड़गिड़ाते हुए कहते—हमें हरिनामकी भूख है। आप एक बार हरि बोलकी भिक्षा प्रदान करें।

इनकी हृदयस्पर्शकारी मार्मिक याचनाको सुनकर भिक्षा देनेवाले भावान्वित हो जाते और उच्च स्वरसे संकीर्त्तन करने लगते। इस द्वार-कीर्त्तनदलके साथ लोगोंकी भीड़ साथ हो लेती। रास्तेभर नामकीर्त्तन होता जाता। इस प्रकार मुहल्लेके घर-घर और दुकान-दुकानसे हरिनामकी सुमधुर गूँज सुनाई देने लगी।

नित्यके इस कीर्त्तनप्रचारसे हरिनाम ध्वनि सर्वत्र सुनी जाने लगी। खेतमें काम करते समय कृषकके मुखसे हरिनाम निकलने लगा। गृहस्थके घर-घरसे हरिबोलध्वनि सुनी जाने लगी। रास्ता चलते फेरीवाले हरिबोलका स्वर अलापते रहते। खेल-कूदमें बच्चे बच्चियोंके मुखसे हरिबोल शब्द निकलता रहता। ढेंकी चलाती हुई स्त्रियाँ ढेंकी-शालामें हरिबोल करती रहतीं। नावपर बैठे मल्लाह हरिबोलका कीर्त्तन करते रहते। इस प्रकार जल-स्थल, महल-कुटीर, पथ-घाट सर्वत्रसे हरिबोलकी ध्वनि उठने लगी।

हिन्दू तो हिन्दू, मुसलमान भी हरिबोल करने लगे। लोग कीर्त्तनमें इतने मतवाले हो गये थे कि मुहल्ले-मुहल्लेमें कीर्त्तनमण्डलियाँ संस्थापित हो गईं। कीर्त्तनका नशा लग गया कुष्टिया नगर-वासियोंको। लोग कीर्त्तनके नशेमें इतने उन्मत्त हो जाते कि मृदङ्ग फट-फट जाता, बजानेमें हाथसे रक्त निकलने लगता।

बिहारीलाल हालदर नामक एक मछुआ नावपर बैठा मछली

मार रहा था। साथमें उसका सम्बन्धी नावका दाँड़ पकड़े था। बिहारीलाल हाथसे जाल तो फेंकता जा रहा था, किन्तु मुखसे हरिनाम करता जा रहा था। कीर्त्तन करनेमें इतना विभोर था कि शरीरका तनिक होश न था। नाम करते-करते जालके साथ स्वयं भी नावसे गिरकर पानीमें डूब गया। मछुआ तैरना जानते ही हैं, साथीने समझा शीघ्र ही पानीसे निकल आवेगा।

इस बीच वह आग सुलगाकर तम्बाकू पीने लगा। पीकर जब उसने आग फेंक दिया तब उसे चिन्ता हुई। वह बाँसके सहारे ढूँढ़ने लगा।

उधर बिहारी गिरा तो सीधे पानीके नीचे जमीनपर जा पहुँचा। उसे देहकी तो कोई खबर थी ही नहीं। पानीमें भी वह नाम करता रहा। साथीके द्वारा पानीसे निकालकर जब नावपर लाया गया तब उसे चेतना हुई। कपड़ा भींगा देखकर उसे अपने सम्बन्धीपर सन्देह हुआ। क्रोध भरे शब्दोंमें बोला—"तुमने हमको भिंगो क्यों दिया ?" साथीने जब पूर्ण विवरण सुनाया तब तो वह उन्मत्तकी तरह हाथ उठाये नावपर ही नाचने लगा।

अनुकूलचन्द्रजीकी कीर्त्तन-कालीन अपूर्व भङ्गिमा एवं समाधि-अवस्थाकी मुखनिःसृत महाभाववाणीको सुनकर कुष्टियानिवासी विस्मयविमुग्ध हो पड़े। अहोरात्रि कीर्त्तन होता रहता। कीर्त्तन और तत्वालोचनासे प्रफुल्लोबाबू वकीलका गृह सर्वदा मुखरित रहता।

शत-शत हिन्दू और मुसलमान आपके शिष्य बने। आपके आदेशानुसार श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीबुद्ध, श्रीचैन्तय, श्रीराम-कृष्णके साथ प्रभु ईसा और हजरत मुहम्मद प्रभृति महापुरुषोंका कुष्टियामें जन्मोत्सव मनाना आरम्भ हुआ। अवतारी महापुरुषोंके उपदेशोंका प्रचार होता और दरिद्रोंको भोजन कराया जाता।

हजारोंकी संख्यामें हिन्दू और मुसलमान आपके शिष्य बने। आपके आदेशानुसार शिष्यमण्डलीने अवतार-मंचका सम्मेलन

करना आरम्भ किया। महापुरुषोंके जन्म दिनपर अवतारविशेषके उपदेशोंका प्रचार किया जाता। इसीके साथ दरिद्रोंको अन्न-वस्त्रका वितरण भी होने लगा।

इस प्रकार वह गैरिक स्रोतधारा चौबीस परगना, जैसोर, मजिलपुर, चक्रतीर्थ, बराहनगर, नैहाटी, पुरीधाम, साक्षीगोपाल, भुवनेश्वर, रंगपुर, बारादी, नौगाँव, दूधकुमरा, वरैचरा, खोखसा जानीपुर, बलहराचन्द्र, कमलापुर, बगुड़ा, बदरगंज, फरीदपुर, हरिणाकुण्ड प्रभृति ग्राम, नगरी और प्रान्तोंमें फैलती गयी।

किशोरीमोहन तो कीर्त्तनकी एक मण्डलीको लेकर पुरलिया, वैद्यनाथधाम होते हुए काशीधाम जा पहुँचे। काशीकी पुनीत नगरी उनके भावोन्मत्त कीर्त्तनसे मुखरित होने लगी। गंगासे स्नान करके लौटते समय विश्वनाथ मन्दिरका स्वर्णकलश और ध्वज देखते ही उन्हें आवेश आ गया। आँखें लाल हो गयीं, शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। हरहर बमबम करते हुए मन्दिरकी ओर दौड़ने लगे। उस विकट रुद्रमूर्त्तिको देखते ही सबने रास्ता छोड़कर किनारा लिया। त्रिशूलपाणि भगवान् विश्वनाथकी मूर्त्ति देखते ही बज्रकी नाईं हुँकार-ध्वनि उनके मुखसे निकलने लगी। उसीके साथ-साथ हठात् छलांग मारकर काशीपति शंकरकी मूर्त्ति-पर चढ़ गये। ऊपर चढ़ते ही सिंहकी नाईं दहाड़ने लगे। उस भयानक आवाजसे मन्दिरकी छत, दीवाल, गुम्बज सब गूँजने लगे। उपस्थित भक्त-मण्डली थर-थर काँपने लगी।

आशंकासे पण्डा-पुजारीका दल व्याकुल हो पड़ा। हाथ जोड़-कर कातर स्वरमें रुद्रमूर्त्तिका स्तवन करने लगे।

स्तवन सुनकर किशोरीमोहन प्रसन्न हुए। मूर्त्तिपरसे उतरे और कीर्त्तन करते हुए बाहर निकल आये। वहाँसे फिरनेके उपरान्त अनुकूलचन्द्रजीको साष्टांग प्रणाम कर उनकी चरण-रजको शीशपर चढ़ाया।

अष्टाविंश अध्याय

उस महासंकीर्त्तनके प्रबल स्रोतमें पावना डूबने और कुष्टिया भसनेकी अवस्थामें आ गया। लोग आनन्दप्राप्तिके निमित्त नृत्य-कीर्त्तन न करते थे उस समय, करते थे प्रेमानन्दमें प्रमत्त हो जानेके कारण। कुछ देर जाते न जाते कीर्तनका झङ्कार बन्द हो जाता, तदुपरान्त न तो शब्दमें लहरी रहती और न छन्दबद्धता। चित्त-मुग्धकारी भावका समावेश भी किसी प्रकारका न रहता। कीर्तन न रहकर नमस्कारमात्र बन जाता। अर्द्ध उन्मीलित नयन सबके हो जाते। इसके उपरान्त गानमें सुरयोजनाका वैचित्र्य किंवा कौशल भी किसी प्रकारका न रहता और न रहता नृत्य-कलाका नयनाभिराम विभंग। किन्तु सकल आनन्दके जो आनन्द-प्राण हैं, उनका पूर्ण मात्रामें आत्म-प्रकाश रहता। महाशक्तिधर अनुकूलचन्द्रजीके शक्तिसंक्रमण-कारी गुणवश आनन्दका महाप्रकाश विराजित रहता। उस आनन्दमय महाशक्तिका प्रभाव गायक, नर्तक, श्रोता और दर्शकोंके मन, प्राण और शरीरमें पूर्ण मात्रामें रहता, लोग आनन्दके अतिशयतावश मूर्च्छनामें पड़ जाते, लोट-पोट करने लगते। किसीको तन-बदनकी सुधि न रहती।

कुष्टियाके उस महा-संकीर्तनका वर्णन शब्द द्वारा नहीं किया जा सकता। उस मन-मुग्धकर दृश्य,उस आनन्दप्रद दृश्यका वर्णन कौन कर सकता है? वह कीर्तन नहीं नमस्कार था। आत्माको आत्माका प्रणाम जनाना था। गान नहीं चरणवन्दना थी।

आनन्दमूर्च्छनाके उस घन विग्रह मूर्त्तिके मनमुग्धकर आकर्षणमें लोग दही, पुष्पमाला, अक्षत-चन्दनसे चरणबन्दना करने लगे। कुष्टियाके सम्भ्रान्त व्यक्ति भी उस शक्ति-तरंगमें खिंच आये। डाक्टर गोकुल नन्दी, एल. एम. एस., डाक्टर सतीशचन्द्र जोआ-

रदार, सर्जन, डाक्टर सत्येन्द्रकुमार दत्तके साथ-साथ श्रीप्रफुल्लो-कुमार वकील, श्रीत्रैलोक्यनाथ वकील, अश्विनीकुमार विश्वास, मुख्तार, वीरेन्द्रनाथ राय, मुख्तार प्रभृति सम्मानीय व्यक्ति भी उस परम पावन चरणके नीचे शीश रगड़ने लगे। इनके अतिरिक्त गौहर अली, अब्दुल जब्बार, घूघुर अली, पाँचूमियाँके साथ इन्कमटैक्स औफिसर खलिलुर्रहमान प्रभृति मुसलमानोंने भी उस आनन्दमयके पाद-पद्मकी पूजा की। इनके अतिरिक्त ईसाई धर्म-प्रचारक गिरीन्द्रभूषण विश्वास और निकोलस प्रभृति ईसाइयोंने उस आनन्दघन मूर्त्तिकी आरती उतारी और गिर्जामें ले जाकर अर्चना-बन्दना की।

कुष्टियाकी लीला-भूमि पुरुषोत्तमतीर्थमें परिणत हुई। विश्वके समस्त अवतारी महापुरुषोंकी उत्सव-वेदी वहाँपर रचित हुई। महामानव-पूजन करनेका शंख-निनाद कुष्टियासे आरम्भ हुआ। महामानव मानवताके रक्षक, पोषक और परिवर्द्धक होते हैं। वे जीवन-वृद्धिके पथको दिखलाने आते हैं। वे एक और अभिन्न होते हैं। एक ही वार्त्ताके वाहक होते हैं। वे प्रेमका राज्य, शान्तिका राज्य संस्थापित करने आते हैं। उनके प्रति श्रद्धा, भक्ति और सम्मान करो—की वाणी कुष्टियासे विघोषित होने लगी।

इसका सक्रिय प्रदर्शन भी प्रारम्भ हुआ। हजरत मुहम्मद और प्रभु ईसाके जन्म-दिनके साथ भगवान राम और भगवान कृष्णका जन्मोत्सव भी मनाया जाने लगा। पुरुषोत्तम वेदीपर संसारके सब अवतारोंका मिलन-क्षेत्र रचित हुआ। प्रेमके उस परिप्लावनमें समस्त देव-देवो और अवतार पुरुष समग्र मानवताके बन गये। अवतारोंत्सवकी उस वेदीके धूलि-कणको हिन्दू-मुसलमान-ईसाई मिलकर शीशपर धारण करने लगे।

हिन्दू-मुसलमानके नामपर, ईसाई-सिखके नामपर जो एक संकीर्णता आ गई थी, जिस साम्प्रदायिक भावकी सृष्टि हुई थी

वह दूरीभूत होने लगी। चतुर्दिकसे लोग दल बाँधकर आने लगे। दलके साथ बजता आता शत-शत मृदंग, झाल और कर्त्ताल। इन वाद्ययन्त्रोंकी ध्वनिके साथ दशो दिशाओंको कँपाता हुआ पुरुषोत्तम-वेदीसे वन्दे पुरुषोत्तमम्का नारा उठने लगा।

उस बीच अनुकूलचन्द्रजीका भुवन-विमोहन नृत्य और गीत प्रेमसिन्धुका मन्थन करता हुआ तरंगपर तरंग आनन्दकी उठाता रहता। तरङ्गके उत्थान-पतनके ताल-तालपर उनके सुरीले मधुर-कण्ठका आलाप, बाहुद्वयकी विक्षोभ भंगिमा और चञ्चल-चरण-की मूर्च्छना उत्पन्न करनेवाली ठुमुक गतिको देख सभी विमुग्ध बन जाते, एक अनिर्वचनीय आकर्षणमें सब-के-सब सराबोर हो जाते। उसमें स्नात होकर सबका मन-प्राण मधुमय हो जाता।

आप जब कीर्त्तन करनेके निमित्त खड़े होते उनके गौर-कान्ति मुखमण्डलसे प्रकाश विकीरण होने लगता। उनके छरहरे नव-नीतके समान सुकोमल बदनकी कमनीयता सबके मनको विमुग्ध बना देती। उस कोमल कमनीयताके बीच एक विचित्र शक्ति भी विराजित रहती। उसके दर्शन स्पर्शनसे सबके भीतर प्रेमानुराग हिल्लोल मारने लगता।

कुष्टिया नगरीमें उस दिन जो प्रेमकी रिमझिम वर्षा आरम्भ हुई वह धीरे-धीरे बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक बढ़ती गई। पाँच वर्षसे कुछ अधिक कालतक आप पैदल देश-देशान्तरमें हरि-नामका वितरण करते फिरे। भक्त, भगवान और नामकी त्रिवेणी धारामें विभिन्न ग्राम, जिला और प्रान्त अवगाहन करते रहे।

जिस मार्गसे आपकी कीर्त्तन-मण्डली निकलती, जहाँका जन-पद आपके सुमधुर-कण्ठका तराना सुनता नवरंगमें रंग जाता। गायक, वादक, श्रोता सबोंके मन-प्राणमें रंग लग जाता। शत-शत कण्ठोंसे हरि-ध्वनि निकलने लगती।

इस रंगमें रंगकर कुछ बाहरी जिलोंके लोग भी आ जुटे।

सर्वप्रथम आये सुशीलचन्द्र वसु, बी.ए. और तदुपरान्त त्रैलोख्योनाथ चक्रवर्त्ती। आप दोनों पावना जिलाके बाहरके रहनेवाले हैं। आपलोगोंके आगमनकी कहानी भी विचित्र है।

उस महासंकीर्त्तन युगमें जो-जो लीलायें संघटित हुई थीं उन्हें अलौकिक, अद्भुत और अतिमानवीय कहा जा सकता है। उस समयके विचित्र काण्डोंका वर्णन करनेके निमित्त लीला-कीर्त्तन युग नामक ग्रन्थ ही लिखना पड़ेगा।

जबसे ठाकुरने अपना रूप सम्भाला, अपनी सुरत सम्हाली, विचित्र काण्ड संघटित होने लगे। एक अतिमानवीय शक्ति लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करने लगी। किसीको स्वप्नमें मंत्र मिलने लगा तो कोई स्वप्नादेश प्राप्त करने लगा। किसीने आपके मुख-मण्डलपर अपने इष्टदेवी-देवताओंका प्रत्यक्ष दर्शन किया तो डाक्टर गोकुलचन्द्र नन्दी एल. एम. एस. ने आपके मुखसे हजारों वंशीधारी मूर्त्तियोंको निकलते देखा।

उसी महा आकर्षणमें खिंचकर सुशीलचन्द्रजी और त्रैलोख्योनाथजी भी आये थे। त्रैलोख्योजीने तो न्यूमोनियाकी मुमुर्षु अवस्थामें स्वप्नमें मंत्र भी पाया था। ये दोनों-के-दोनों किसी एक अज्ञात शक्ति द्वारा कुष्टियामें खिंचकर आये और अनुकूलचन्द्रजीके निर्देशानुसार धर्म-प्रचारमें जीवन उत्सर्ग कर दिया। इसमें सुशीलवसुजी ही प्रथम व्यक्ति थे जो पाबना आश्रममें आकर रहने लगे थे। अपना घर-द्वार और जर-जमीन्दारी सब कुछ त्यागकर आप हिमाईतपुरमें बस गये। आपके हाथों सत्संग आश्रम, तपोवन विद्यालय और अन्यान्य विभागोंका कार्यारम्भ भी हुआ था। आपने सन् १६१७ के नवम्बर मासमें दीक्षा ली थी।

होमियोपैथिक रिसर्च लेबोरटरीके अध्यक्ष और बहु पुस्तकोंके प्रणेता डाक्टर त्रैलोख्योनाथ चक्रवर्त्ती तो बंगालके जिले-जिलेमें

ठाकुरप्रदत्त धार्मिक भावधाराका प्रचार करनेवाले सर्वप्रथम व्यक्ति हैं। इस आर्य-धर्मका प्रसार-प्रचार करते हुए आप सुदूर बर्मातक पहुँच गये थे और वहाँ जाकर आर्य-धर्मका झण्डा गाड़ा था। आज उस झण्डेने बृहदाकार धारण कर लिया है। वहाँपर हिन्दू-मुसलमानके अतिरिक्त बर्मी स्त्री-पुरुष दस हजारकी संख्यामें आर्य-धर्ममें दीक्षित हुए हैं।

एकोनत्रिंश अध्याय

भावावेशके समयके अतिरिक्त अनुकूलचन्द्रजी भक्तोंके साथ साधारण मनुष्य, विनयके अवतार, दीनातिदीनके समान रहते थे। आपका बात-व्यवहार अत्यन्त प्रेममय और सरस होता। किसीके आगमनपर आनन्दका ठिकाना न रहता। कितने दिनका अपना बिछुड़ा हुआ स्वजन आ गया हो—ऐसा भाव हो जाता आपका। कभी हृदयालिंगन करते, तो कभी मुख चुम्बन। कभी नासिकाग्रसे चिबुक और कपोलका मर्दन करते तो कभी गोदमें बैठाकर बाँध लेते। अपनी बिछुड़ी सन्तानको देखकर व्याकुल उन्मादनामें पड़कर स्नेहमयी जननी जिस प्रकार बच्चेको आलिंगनपाशमें आबद्ध कर लेती है ठीक वैसी ही अवस्था हो जाती आपकी। कभी चुम्बन करते तो कभी आलिंगन, कभी आँखमें आँख मिलाकर मधुर स्वरमें पूछते, 'मैं कैसा लगता हूँ भैया ?'

इस प्रश्न और भैया सम्बोधनमें जिस आन्तरिक माधुर्यका निदर्शन रहता वह अकथनीय होता। प्रश्न करनेकी वह सरल भंगिमा हृदयको विमुग्ध कर देती। सुशीलचन्द्रजीके गलेमें हाथ डाल और आँखमें आँख मिलाकर जिस समय आपने उपर्युक्त प्रश्न किया आपका हृदय विह्वल हो पड़ा। उनके समान उदासीन और चरित्रवादी (moralist) के मुँहसे निकल पड़ा —आप हमारे कबके अपने परिचित प्रेमीजन-से ज्ञात होते हैं। अपने परम आत्मीयका प्रिय दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ आज।

इतना सुननेके साथ अनुकूलचन्द्रजीके हृदयका प्रेम-बन्धन खुल पड़ा। आनन्दके मारे सर्वांग नाच उठा। गलेसे लिपटकर लोटपोट करने लगे। अकस्मात् सुशीलजीके हृदयपर खड़े होकर नृत्य-कीर्त्तन करने लगे।

उस सरल प्रेमके उच्छ्वासमें पड़कर आपका ऐश्वर्य-धन,मान-सम्मान, विद्या और चरित्र्याभिमान सब कुछ बह गया। उस चुम्बन, केलि और प्रेमालिंगन प्रवाहमें कुछ ऐसी अलौकिक रसानुभूति सुशीलचन्द्रने पायी जिससे उनका समस्त संकोच, समस्त आभिजात्यबोध दूरीभूत हो गया। उन्होंने दीक्षा ले ली। दीक्षा ही नहीं ली वरंच घर-द्वार, जर-जमींदारी सब कुछ त्यागकर अपने प्रियतमके साथ अहर्निश रहने लगे। उन्होंने अनुकूलचन्द्रजीके भीतर सख्य-प्रेमका रसास्वादन किया है। उसमें निःसंकोच स्नान किया है। कभी उनके कन्धेपर चढ़े हैं तो कभी अपने कन्धेपर चढ़ाकर चड्डी खेली है।

प्रेमके साकार रूप हैं अनुकूलचन्द्रजी। उनके परम प्रेममें—उनके रसाल प्रेममें पड़कर भक्तका समस्त मानसिक सन्ताप, थकान, आलस्य और विषण्णता क्षणभरमें काफूर हो जाती है। उनके चुम्बनमें माधुर्य,उनके आलिंगनमें माधुर्य,उनके गलबहियाँमें मिठास है। जो उस मधुरके मधु सम्पर्कमें आता तद्गत हो जाता, अपनापन विस्मृत हो जाता उसका।

अर्द्ध रात्रिमें कभी-कभी हठात् अनुकूलचन्द्र उठ बैठते और ताली बजाते हुए नाच-कीर्त्तन आरम्भ कर देते। दोनों बगलमें जो शिष्य सोये रहते उनके हृदयपर चरण-निक्षेप होने लगता। ताल-तालपर उठने और गिरनेवाले उन कमलचरणोंके पद-निक्षेपका मधुर रसास्वादन शिष्यगण पड़े-पड़े लेते रहते। उनका हृदय एक अज्ञात अनिर्वचनीय माधुर्यमें परिपूर्ण हो जाता।

घरपर हों या बाहर कीर्त्तन-प्रचार-कार्यमें, स्नान-भोजन करते हों या तत्त्वालोचना उनका यह सरस रूप सर्वत्र प्रगटित रहता। कभी म्लान न होता।

डाक्टरी जीवन समाप्त करनेके उपरान्त शिष्योंके भोजन-छाजनका समस्त भार आपकी धर्मपत्नि षोड़शीदेवीपर आ पड़ा।

किसी-किसी दिन आँचल कमरमें बाँधे उन्हें रन्धनशालामें खटना पड़ता। अथक परिश्रम करती जातीं। वह अपनी सन्तान-सन्तति-को भूल बैठें तो कौन देखेगा ?

भूख-प्यास और थकावटसे चुर कितनी दूरसे प्रभुके शिष्यगण चले आ रहे हैं। आप बैठी रहें तो कैसे ? घरमें खाने-पीनेकी वैसी संस्थिति नहीं। फिर भी तो इनके मुँहमें कुछ देना होगा ? कुछ न रहता तो गहना बन्धक रखकर सामान मँगा लेतीं और पिल पड़तीं काममें। चावल-दाल हुआ तो खिचड़ी बनी और कुछ कमी न रही तो 'फेन-भात'। अर्थात् एक सेर चावलमें दस सेर पानी और नमक ! बहुत भाग्य हुआ तो किसी-किसी दिन दाल-भातके साथ साग बन जाता। वह भी अल्प मात्रामें। घरमें बैठी-बैठी षोड़शीदेवी इन सबको मिलाकर पिण्डिका बनाकर रखती जातीं और स्वामी-शिष्यके स्नानसे लौटनेका मार्ग देखती रहतीं।

एक दिन कुष्टियासे चालिसके लगभग शिष्य आ जुटे। अनुकूल-चन्द्रजीके आनन्दका ठिकाना नहीं। भीतरसे स्नान करनेका जब सन्देशा आया तो आपने कहा—'चलिये, पद्मामें ही स्नान किया जाय। गर्मीके कारण बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है।'

सभी तेल आनेकी राह देखने लगे। तेल आनेपर अनुकूल-चन्द्रजीने मधु-मिश्रित स्वरमें कहा—'आज सबके बदनमें मैं ही तेल लगाऊँगा।' कहनेके साथ ही साथ तेल लगाने बढ़े।

एक तो ब्राह्मण, उसपर गुरु ! सबने एक स्वरमें अस्वीकार कर दिया।

'आज अपने हाथों तेल लगानेकी साध जगी है। आपलोग तो मेरी इतनी सेवा करते हैं, आज सेवा करके मुझको आनन्द लूटने दें। इस सुखसे मुझको वंचित न करें।' वाक्य नहीं मधु झर रहा था उस वाणीमें। सब पिघल गये उस मधुर स्वरके आगे।

उधर कहनेके साथ ही कार्यारम्भ हो गया। समर्थन-प्राप्तिकी

कौन अपेक्षा करता है ? एक-एक करके सबको तेल लगाने लगे। कोई सिहर रहा था, तो कोई रो रहा था। फिर भी आप न माने, सबको अपने हाथों तेल मर्दन किया।

तेल मर्दनके उपरान्त सभी खाली पैर स्नानके निमित्त चले। आपने कहा—'ना, ना, बालू उत्तप्त है। जूता पहनकर चले।'

किनारेपर जूता रखकर सब पानीमें घुस गये, किन्तु अनुकूल-चन्द्रजी और अनन्त महाराज ऊपर ही रहे।

जलमें प्रवेश करके जब आपकी खोज पड़ी तब ज्ञात हुआ आप अभी ऊपर ही हैं। किनारेकी ओर लोगोंने देखा तो सबका जूता साफ कर रहे हैं। सेवा और प्रेमके उस मूर्त्त आदर्शको देखकर सब एक दूसरेका मुँह देखने लगे।

स्नानके शेषमें जब एक-एक करके सब बाहर निकले आप गमछासे सबका शरीर पोंछ-पोंछ जूता पहनाते गये।

यह देखकर सुशीलचन्द्रजी दूसरे किनारें भाग गये। मन ही मन प्रण कर लिया कि गुरुके हाथों जूता न पहनूँगा।

नाव भेजकर उनको पकड़वा मँगाया। इस बीच लोग बार-बार कह रहे थे—'देरी हो रही है, आप स्नान कर लें।'

उत्तरमें आपने कहा—'ठहरो भाई, सुशील भैयाकी तरह पद्मा तो हमको छोड़कर नहीं भागती। जरा उनको ठीक कर लूँ तब स्नान करूँगा।'

अन्तमें सुशीलचन्द्रको जूता पहनाकर तब आप पानीमें घुसे। जलमें प्रवेश करनेके प्रथम मधु-मिश्रित कण्ठसे कहा—'जो देर हुई इस हरिणाकुण्डके जमीन्दारके कारण हुई है। हैं तो इतने बड़े आदमी, किन्तु अपनी पद-सेवा करनेका अवसर देनेमें हैं घोर कृपण !

उधर पिण्डिका बनाये षोड़शीदेवी अपेक्षा कर रही थीं। सब आकर जब बैठ गये तब माता मनमोहिनी देवीने पिण्डिका

वितरण करना आरम्भ किया। थालमें नहीं, पत्तलमें भी नहीं, सबके हाँथोंमें पाँच-पाँच पिण्डिका दी गईं। पंक्तिमें अनुकूलचन्द्रजी भी विराजित थे। इसके उपरान्त ईश-वन्दना हुई, तदुपरान्त चला भोजनपर्व।

स्वामी और सन्तानको एकत्र भोजन करते समय पर्देकी आड़से दो बड़ी आँखें अनिमेष देखती रहतीं। इतनी थाली-वाटी कहाँ थी कि सबका समादर हो? इसकी कसकसे अन्तरसे एक अवरूद्ध निःश्वास निकल पड़ता उस देवीके।

किन्तु उधर तो मधुरानन्दका वितरण होने लगता। गुरु-शिष्य परम तृप्तिके साथ उस पिण्डिकाका भोजन करते। उस प्रसाद-ग्रहणमें जो परितृप्ति प्राप्त होती वह क्या स्वर्ण-थालमें पाई जा सकती है? मातृहस्तका प्रसाद पड़नेके साथ ही साथ आनन्द-बाजार बस जाता। सभी सानन्द प्रसाद ग्रहण करने लगते।

एक संग भोजन, एक संग शयन, एक प्रकारके प्रसाद-ग्रहणके कारण जो एकात्म-बोध उत्पन्न हुआ था, वही सत्संग-आश्रम-निर्माण और सत्संग-आन्दोलनके प्रचार-प्रसारका प्राण-केन्द्र था। आनन्द बाजारका वह 'समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः' का 'साम्य'-भाव ही सत्संगका शक्ति-केन्द्र था। उस समय सब सबके लिये थे। इससे समत्व अपनत्व और एकात्म-बोधकी भाव-लहरी सबके मन-प्राणको उद्वेलित करती रहती।

ऐसा ही होता था उन दिनों। महा-संकीर्त्तन-युगकी यही विशेषता थी। कभी सब शिष्य मिलकर अपने गुरुदेवके शरीरमें तेल मर्दन करते तो कभी गुरु शिष्योंके। जलमें प्रवेश करनेके साथ जल-केलि आरम्भ हो जातीं। तदुपरान्त एक दूसरेकी धोती फींचनेका प्रेम-कलह प्रारम्भ होता। शेषमें सब मिलकर आनन्द-बाजारमें बैठकर पिण्डिका, फेन-भात किंवा खिचड़ी प्रसाद ग्रहण करते। जो कुछ होता एकत्र, एक संग और एक पंक्तिमें बैठकर।

उन दिनोंकी कहानी सुनाते समय आज भी भक्त शिष्योंके नयन अश्रु-पूर्ण हो जाते है। गुरु-शिष्योंकी वह मधुर लीलाएँ उनकी आँखोंके सामने नाच उठती हैं। उनकी विस्तीर्ण आँखें सुदूर अतीतकी ओर चली जाती हैं। एक अपूर्व स्मृति-चिह्न आँखोंपर छा जाता है। आजके नवागत शिष्य जब इसपर विश्वास करना नहीं चाहते तो उस समय उस मधुर लीला-युगके सखा-वृन्द कह उठते हैं—'अरे अभागे! परम-प्रेमका प्रेमालिंगन और मधुर चुम्बन तूने पाया ही नहीं तो तू कैसे समझेगा? प्रेमासवका जब तूने पान न किया तब तो अमृतासवके होनेमें आशंका करेगा ही। किन्तु हम कैसे करें? हमारे इन अधरोंने परम प्रियके अधरका मधुर रसपान किया है, उनके कोमल चरणका मधुर परस पाकर हृदयकी पँखुड़ियाँ जुड़ा गई हैं। परम प्रेममयकी प्रेमवारिमें हमारी आत्मा स्नानकर चुकी है। उस मधुर आलिंगन मधुर चुम्बन,मधुर स्नेहवारिमें अवगाहन कर मन-प्राण अंग-प्रत्यगं मधुर रसका पानकर मधुरिम हो उठा है। उस मधुर मूर्त्तिका क्या वर्णन किया जा सकता है? अरे उनका सब कुछ मधुर था।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं,
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं,
पावनाधिपतेरखिलं मधुरम्॥

त्रिंशत् अध्याय

अनुकूलचन्द्रजीकी पैनी दृष्टि कीर्त्तनके लाभालाभ और आत्मिक उन्नतिकी दिशामें भी चल रही थी। आप गम्भीरता-पूर्वक कीर्त्तनके लाभालाभका पर्य्यवेक्षण भी कर रहे थे। इससे भावुकता और नैराश्य उत्पन्नकारी कीर्त्तनको छोड़कर बल, वीर्य और नवजीवन सञ्चार करनेवाले ताण्डव कीर्त्तनका आरम्भ किया था।

महासंकीर्त्तनमें शत-शत आदमी बढ़ते गये। क्रमशः यह संख्या अमित बन गई। कीर्त्तनमें सभी मतवाले तो हो जाते हैं, किन्तु उसके बाद? उन्मादनका नशा उतर जानेके उपरान्त वे क्या करते हैं, कौन जानता है?

सामयिक भावोन्मत्तता और आवेशके उतर जानेके उपरान्त लोग जो अवसाद-ग्रस्त हो पड़ते हैं इसका कारण क्या है? कीर्त्तनमें जो शक्ति जाग्रत और चैतन्य हो जाती है वह आध्या-त्मिक शक्ति पुनः स्तिमित क्यों हो जाती है? क्षण ही चढ़े, क्षण उतरे वह तो शक्ति नहीं कहला सकती। इस जाग्रत भाव सम्पद और आवेशको स्थायी सम्पदमें कैसे परिणत किया जा सकता है? अपने भीतर यदि जाग्रत चैतन्यशक्तिको आयत्त और अधिकारमें लानेका बल न हो तो दूसरेके शक्ति-प्रदर्शनसे क्या लाभ?

एक वैज्ञानिककी भाँति अनुकूलचन्द्रजी इसके विश्लेषण और गवेषणामें लगे। स्थायी कल्याणकारी साधना-पद्धतिके आविष्कार-की दिशामें आपकी दृष्टि फिरी।

उन्होंने देखा कि भावोच्छ्वास और कीर्त्तन-कालीन जाग्रत शक्तिको स्थायी सम्पद बनानेके निमित्त नित्य अनुष्ठानिक तपस्या आवश्यक है। जाग्रत शक्तिको बलवती बनानेके निमित्त साधना जरूरी है। साथ ही अनुरागात्मिका शक्तिको सुकेन्द्रित और दृढ़

बनानेके निमित्त नित्य अनुष्ठेय आचार-पद्धतिका अनुसरण और प्रतिपालन करना अनिवार्य है। इस निमित्त मनुष्य-निर्माणकी जिस वैज्ञानिक योगपद्धतिका ऋषियोंने आविष्कार किया था उसीका अनुकूलचन्द्रजीने प्रवर्त्तन किया।

कुष्टियामें आश्रम बनानेकी जो तैयारियाँ की गईं थीं उसको बन्द कर हिमाईतपुरमें ही आश्रम बनाना ठीक किया गया। आश्रमके लिये वहाँपर जमीन खरीदी जा चुकी थी, किन्तु आपने उसकी परवा न की। इतना ही नहीं कुष्टियावासी भक्तोंने पुण्य पोथी, सत्यानुसरण और अमियवाणी दो खण्डोंमें प्रकाशित भी किया था। किन्तु आपने उधर ध्यान ही न दिया। शिष्योंके अनुनय, विनय और आक्रोशकी परवा किये बिना अपने जन्म-स्थलसे कार्यारम्भ कर दिया। हिमाईतपुर आकर वैज्ञानिक दीक्षा-विधिका प्रवर्त्तन किया। इस नवीन दीक्षा-विधानमें मनुष्यके अन्तर्निहित संस्कार-शक्तिको जगाने, उद्भिन्न करने और बलवती बनानेपर विशेष दृष्टि रखी।

नवीन अध्यायका आरम्भ हुआ। जप और ध्यान, ध्यान और जपकी अहर्निश साधना की जाने लगी। ध्वनि-श्रवण और ज्योति-दर्शनके अन्वेषणमें वैज्ञानिककी भाँति लगे शिष्यगण। अनुभूति और प्रवृत्ति-नियन्त्रणके साथ दूरदर्शन और दूरश्रवणका अध्याय चला। सब कुछ होता अन्वेषात्मक दृष्टिसे। साधक अपने नित्य जीवन यापन-प्रणाली और साधनाकी अनुभूतियोंका विवरण लिखकर दिखलाने लगे।

इस साधनामें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही शामिल थे। ह्रीं, क्लीं, ऐं, ओं, अल्लाहू आदि अनाहत नादका दर्शन और अनुभूति-क्रिया चलती रही। स्तर-स्तरके सूक्ष्म विभेदोंका विश्लेषण किया जाने लगा। वैज्ञानिक सत्य जब दो नहीं होते तो आध्यात्मिक सत्य और तत्व भी दो नहीं हो सकते। आध्यात्मिक पद्धतिका

अनुसरण जब हिन्दू-मुसलमान सच्चे रूपमें करने लगे तो दोनोंकी अनुभूति भी एक ही होगी। सत्यका रूप दोनोंके लिए समान होगा, कारण सत्यके अन्वेषण और आध्यात्मिक अनुभूति-प्राप्तिका यन्त्र शरीर ही है। शरीर द्वारा प्राप्त अनुभूतिके कारण दोनोंमें एकात्म-बोध उत्पन्न होगा। उस सच्चे एकात्मबोधसे सब धर्मवाले एक ही तत्व और तथ्यमें उपनीत होंगे। उस समय धार्मिक समन्वय किंवा यत मत, तत पथ कहकर वे पूर्ण विराम न देंगे वरंच सब 'यत मत सवार एक ही पथ' की उद्‌घोषणा करेंगे। जितने मत उतने पथ कहकर वे चुप न होंगे बल्कि सब मतोंका एक ही पथ है की उद्‌घोषणा करेंगे। एक ही सत्य संसृष्ट जगतको देखकर सबमें प्रेम उत्पन्न होगा। प्रत्येक धर्मके सत्यद्रष्टा महापुरुषोंके प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होगा। मन्दिर, मस्जिद, गिरजा और गुरुद्वाराके नामपर जो रक्तपात होता है बन्द हो जायगा।

'तुम शक्तिके भण्डार हो, शक्तितनय हो। परमपिताने तुम्हारे भीतर कम शक्ति नहीं दी है'—इस बातकी शिक्षा देते आते थे आप। साधनामें अग्रसर होनेके साथ व्यक्तिगत शक्ति-भण्डारको खोलनेमें लगाया। सर्वप्रथम श्रान्ति और दुर्बलतासे संघर्ष करनेमें लगे। थकावट और कमजोरियोंके बन्धनसे जबतक मुक्त न हों तबतक क्या आध्यात्मिक राज्यमें प्रवेश किया जा सकता है? लोग नींद और कमजोरियोंसे युद्ध करने लगे। रातभर साधना की जाती, दिनभर आलाप-आलोचना और पठन-मनन होता। शक्तिके नवीन स्तर अपने आप खुलने लगे। लोग जिस श्रान्ति या थकावटके नामपर घुटना टेक देते थे उसके विरुद्ध ताल ठोंककर खड़ा होने लगे। इसीके साथ-साथ नवीन शक्तिका गुप्त स्तर खुलने लगा। अपने भीतर आत्म-विश्वास और आत्म-बलका जागरण

हुआ। श्रान्ति, अवसाद और अवसन्नताको मिटानेमें नवीन जोश-के साथ लोग लग पड़े।

प्रथम एक सप्ताहतक निद्राके साथ युद्ध चला। क्रमशः बढ़ाते-बढ़ाते उसे छः महीनेतक पहुँचा दिया गया। छः महीने पर्यन्त किसीने एक पल झँपकी न ली। फिर भी किसीमें थकावट या कमजोरी नहीं। उलटे सभीमें स्फूर्ति-तरंग खेलती रहती। नींद, आलस्य, श्रान्ति, अवसाद और अवसन्नतावश जो जीवनी शक्ति छिन्न, स्तिमित, संकुचित और संकीर्ण बनी थी उसमें महाविप्लव आया। अंग-अंग, बोटी-बोटी नवीन शक्तिसे फड़कता रहता। कर्मप्रेरणा और कर्मशक्तिमें महा स्फुरण आया। जीवनके पल्लव-पल्लवमें नव-जीवन संचारित हुआ—नवीन बल फूट पड़ा। लोग सोत्साह दुर्बलताओंको मसलते हुए जीवन ज्वारके साथ बढ़ने लगे। कुछ दिनोंके उपरान्त तो निद्राकी बात ही विस्मृत हो गई। छः महीनेके उपरान्त जब अनुकूलचन्द्रजीने स्मरण दिलाया तो उन्हें याद आयी।

तदुपरान्त आपने स्मृतिवाही चेतना फिराने और जगानेकी पद्धति बतलानी आरम्भ की। पिछले जीवनकी स्मृति और चेतना-की छाप प्रत्येक मनुष्यके मस्तिष्कमें मौजूद रहती है। किन्तु उस शक्तिका प्रयोग न करनेके कारण स्मृति स्तिमित हो जाती है, कुछ स्मरण नहीं रहता। विगत दिनकी घटनाको आदमी जैसे भूल जाता है, वैसे अपने विगत जीवनकी बात भी भूल बैठता है। इस स्मरण शक्तिको क्रियाशील और तेज बनाया जाय तो पिछले जीवनका समस्त चित्र मानसपटपर चमकने लगता है। आवश्य-कता है स्मरण शक्तिको जाग्रत करनेकी। जैसे-जैसे आदमी पिछले दिन, सप्ताह, मासकी घटनाओंका स्मरण करता जायगा स्मृति-शक्ति तेज होती जायगी। धीरे-धीरे अभ्यास करनेपर पिछले जीवनकी बातें भी याद आयेंगी।

विस्मृतिके गहन तलमें स्मृतिशक्ति लगानेंकी कला सीखनेंमें लोग भिड़े। क्रमशः जन्म-धारण करनेकी बात तक लोग पहुँचे। अवतार ग्रहण करनेके सन्धिक्षणके विस्मृत योग-सूत्रके साथ सम्बन्ध संस्थापित करनेमें कठिनाई होने लगी। फिर भी आप उत्साहित करते रहे। मनको एकाग्र रूपसे स्थिर करके लगानेकी बात बतलाते रहे। किसीको कहते, अरे, अभी तो विगत जीवन-की ओर स्मृतिशक्तिको आप लगा रहे हो, इस जगहपर यदि थककर बैठ जाओगे तो कैसे काम चलेगा? तुम्हें तो इस स्मृति-वाही चेतनाशक्तिको भविष्यके गर्भमें भी लगाना है। भूत और भविष्यकी बात न जान सके वह साधक कैसा?

इसके सम्बन्धमें आपने जीवन-मृत्युका रहस्य बतलाना आरम्भ किया। मृत्युके समय क्या होता है? कतिपय भाव एक-पर एक स्मरण होने लगते हैं। किन्तु जबतक मन किसी खास-भावमें तल्लीन रहता है मृत्यु नहीं होती। किसी एक विशेष भावमें जैसे ही आदमीका मन विभोर हो जाता है—मनोनिवेश जैसे ही होता है ज्योति चमकने लगती है। उस ज्योतिमें इतनी तेजी होती है कि आदमी चकाचौंधमें पड़कर जिस विशेष भावमें मनोनिवेश किये रहता है उसका पूर्व्ववर्त्ती किंवा परवर्त्ती coming ideas या आगन्तुक विचारसरणिके योगसूत्रसे विच्छिन्न हो पड़ता है। इसीके साथ-साथ अपने वर्त्तमान आमित्वमें भी विस्मृति आ जाती है। एवं इसीके साथ ही साथ विशेष भाव जिसमें वह मनो-निवेश किये रहता है उससे भी वियुक्त हो जाता है। जैसे ही विशेष भावसे cut off वा अलग हो जाता है वैसे ही मृत्यु हो जाती है।

पर्य्यायक्रमसे जितने भावरूप मस्तिष्कमें अंकित रहते हैं उनमेंसे किसी एक भावमें निमग्न होते ही स्मृतिका योगसूत्र नष्ट हो जाता है और उसीके साथ-साथ मृत्यु होती है। हमारे जीवन-

में शैशवके आमित्त्वकी जब मृत्यु होती है तब यौवनका आमित्त्व उत्पन्न होता है। चूँकि इस परिवर्त्तनमें स्मृतिका योगसूत्र एकदम विच्छिन्न नहीं होता, इसलिए मृत्यु नहीं हो पाती। परिणामतः आमित्वमें परिवर्त्तन संघटित नहीं होता।

इसीको यदि मृत्यु-रहस्य कहा जाता हो, तब तो कौन व्यक्ति किस भावमें निमग्न होकर मरा था, उसके इहजीवनके कार्यकलाप-से जाना जा सकता है। जीवनके कार्य और व्यवहारमें व्यक्तिके अन्तर्निहित मूल भाव ही परिस्फुट होते हैं। उस भावको जान लें तो उसके पूर्व-मृत्युके समय जो प्रधान भाव था उसको भी जाना जा सकता है। और उस प्रधान भावके साथ कौन-कौन भाव-लहरी chain cf ideas आयी होगी उसके भी association of ideas के law या नियमानुसार infer या अनुमान किया जा सकता है। इससे पूर्व जीवनका clue या कथासूत्र भी आवि-ष्कृत किया जा सकता है। इस प्रकार मृत्युके समय प्रधान भाव-से संयुक्त होकर जो छोटी-छोटी भावराशि मनमें उत्पन्न हुई थी उसको भी निकाला जा सकता है। इस प्रकारसे पूर्वजन्मकी बात स्मरण करनेमें लगाया जाय तो उसके आगे जन्मका इतिहास अनुमान द्वारा ही निकाला जा सकता है। इस तरह विस्मृतिके गर्भमें प्रवेश करनेकी शक्ति जब प्राप्त हो जाय तो आदमी उस शक्तिको भविष्यजीवनके जाननेमें लगा सकता है।

इसीके साथ-साथ जगत्के समस्त महापुरुष, अवतार, पैगम्बर, सद्गुरु और ऋषियोंकी अनुभूति, साधना, शिक्षा-पद्धति और कर्मधाराके साथ अनुकूलचन्द्रजीकी व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनु-भूतिके साथ वैज्ञानिक और तात्त्विक दृष्टिसे तुलनात्मक आलोचना होती रहती। परिणामतः यह ज्ञात हुआ कि सबने मनुष्य-निर्माण और विकासकी एक ही पद्धति बतलायी है। देशकाल और पात्रा-नुसार सबने खान-पानमें तनिक हेरफेर किया है, किन्तु मनुष्य-

निर्माणकी पद्धति सबकी एक ही प्रकारकी रहती आयी है। उसमें तनिक भी विभेद नहीं। इस तुलनात्मक विवेचनाका फल यह हुआ कि साधकवर्गमें सब महापुरुषोंके प्रति श्रद्धा और विश्वास भर गया। कारण, सबने मानव-निर्माण और मानव-बिकासके निमित्त एक ही सत्य-पथको उन्मुक्त किया था। राम हों या रसूल, कृष्ण हों या क्राइस्ट—सबने एक ही राजपथको बतलाया है। उसमें कहींपर तनिक भी विभेद नहीं। पूर्वावतारके आध्यात्मिक साधन और अनुभूतिमें परवर्त्ती अवतारोंके अनुभूतियोंमें कहीं तनिक विभेद नहीं, परवर्त्ती अवतारोंने पूर्वावतारकी वाणी और शिक्षापर विशेष प्रकाश डाला है। उनके भावको अधिक पुष्ट और परिस्फुट ही किया है। साथ ही साथ उनके प्रति श्रद्धाभाव प्रदर्शन करनेकी शिक्षा भी आप देने लगे।

इस महासत्यको जानकर अनुकूलचन्द्रजीके शिष्योंके हृदयमें सब महापुरुषोंके प्रति श्रद्धा भर गयी। आन्तरिक हृदयसे वे मत्स्य-कूर्म—कोल, नृसिंह-वामन शरीरम्के साथ राम-कृष्ण-बुद्ध-ईसू-मुहम्मद रूपायितम्की संयुक्त प्रार्थना करने लगे। हिन्दूके निमित्त मुहम्मद पूजनीय बन गये, मुसलमानोंके लिए राम और कृष्ण वन्दनीय हो गये। महापुरुषोंमें छोटा-बड़ा करनेका भाव विस्मृत होने लगा। यत मत तत पथ न रहकर यत मत सवार एकई पथ बन गया।

संसारके समस्त महामानव वरेण्य हैं, पूजनीय हैं की उद्‌घोषणा होने लगी। इनमें जो छोटे-बड़ेका विभेद करते हैं, उनकी उपेक्षा या निन्दा करते हैं; वे मानवताके महाकल्याणकारी सत्यद्रष्टा महापुरुषोंकी अवमाननाका दोष करते हैं। ऐसे आदमी सत्यके हन्ता मानवताके विकासके शत्रु होते हैं। ऐसे आदमी सत्य, अनुभूति और उन्नतिसे अपने आपको वंचित तो करते ही हैं, धर्मके नामपर पाखण्ड धर्मका प्रचार भी करते हैं।

धर्मकी मूल भित्तिपर जीवनके प्रत्येक क्षेत्रपर प्रकाश प्रदान करने लगे अनुकूलचन्द्रजी। वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और राजनैतिक वादोंमें पड़कर जो धर्मविरुद्ध जीवनयापनकी हवा भारतमें बह रही थी उनके समन्वयका योगसूत्र आविष्कृत हुआ। शाश्वत धर्मका मर्मोद्घाटन किया जाने लगा। दर्शन और विज्ञान,समाज और राष्ट्रको धार्मिक सूत्रमें निबद्धित किया जाने लगा।

इसी बीच कुष्टियाकी भक्त-मण्डलीने उन्नीस सौ उन्तीसके सेप्टेम्बर चौदह और पन्द्रह तारीखको विश्वगुरु-आभिर्वाव-महोत्सव मनानेकी घोषणा कर दी। चतुर्दिक नोटिस और पोस्टरके साथ निमन्त्रणपत्र भेजे गये। किन्तु इस विषयमें अनुकूलचन्द्रजीसे कुछ पूछा भी न गया। नोटिसमें छपा था कि त्रितापदग्ध जगत आज शान्तिकी चीत्कार कर रहा है। प्रत्येक धर्म एक ऐसे महापुरुषके अवतार लेनेकी प्रतीक्षा कर रहा है जो धराधामपर अवतीर्ण होकर उसको शान्तिवारिसे अभिसिञ्चित करेंगे। ईसाई प्रभु ईसाके आगमनकी बात कहते हैं, मुसलमान मेहदी ईमामके आनेकी बात करते हैं। बौद्धगण मैत्रेयके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं और हिन्दू उनके आगमनकी बात तो कहते हैं, किन्तु कौन आवेगा यह नहीं जानते। किन्तु अपने समस्त प्रगटित लक्षणके साथ महापुरुष आ गये हैं। अब यह कल्पनाका विषय नहीं रह गया। जगतमें उन्होंने अपना अभिनय आरम्भ कर दिया है। जिस विशिष्ट शरीरको धारणकर श्रीभगवान महाभाव एवं सर्वोच्च समाधि अवस्थासे विश्वको महाभाव वाणी द्वारा महाकर्षणसे केन्द्रमुखी बना रहे हैं,उस परम-पवित्र श्री श्रीविश्व-गुरुके चिन्मय शरीरके अवतीर्ण होनेकी तिथिके अवसरपर हम जगतके प्रत्येक मनुष्यको आनेके लिए आह्वान कर रहे हैं।

सदसद् भेदातीतं परमपुरुष भेदं।
तारयितुमवतीर्णं निखिल मानवकुलं॥

धृत सहज समाधि आनन्दघन मूर्त्तिम्।
प्रेमविगलित चित्तं विश्वगुरुं तं नमामः॥

उपर्युक्त नोटिस निकाली थी कुष्टिया, पाबना और अन्यान्य स्थानोंके विशिष्ट व्यक्तियोंने। उनमें सर्वश्री हरिश्चन्द्रराय, वकील, गोकुलचन्द्र मण्डल, एल. एम. एस., त्रैलोक्यनाथ सेन, वकील, वीरेन्द्रनाथराय, मोख्तार, शतीशचन्द्र जोआरदार एल. एम. पी., अश्विनीकुमार विश्वास, मुख्तार, योगेन्द्रनाथ सरकार, एम. ए. बी एल, प्रेमनाथ शिकदार, वी. एल., पूर्णचन्द्र शाहा, वकील, कृष्णचन्द्रदास, सुशीलचन्द्र, वसु, बी. ए., पूर्णचन्द्र कविराज बी. ए. के नाम थे।

महोत्सवमें देशके विभिन्न स्थानोंसे लोग आये थे। जन-समागम इतना अधिक हो गया कि नियंत्रण करना कठिन। प्रसाद वितरण करनेके निमित्त रेल लाइन बिछाई गई और ट्रौलीकी सहायतासे वितरित किया गया।

सब हुआ, किन्तु इस अगणित जनसमागमको भी आपने क्षण-स्थायी भावोच्छ्वास ही माना। इतना ही नहीं विश्वगुरु महोत्सवको उन्होंने अपनेको पंगु बनानेकी चेष्टा समझी। उनके नाम-मंत्र-वितरण-महायज्ञमें बिघ्न आये। इस बातको कुष्टिया-वासी शिष्योंसे आपने खुलकर कहा भी।

उत्सवके उपरान्त उन्होंने मर्य्यादा पुरुषोत्तमका रूप धारण किया। कुष्टियामें खरीदी हुई आश्रमकी जमीनको छोड़कर आप अपने स्वग्राम-स्थित स्व-कुटीरमें चले आये और वहींसे नवीन रूपमें कार्यारम्भ किया। कुष्टियाकी भूमि आपकी लीला-भूमि गिनी जाती है। वहाँके लीला-खेल अलौकिक, अद्‌भुत और विस्मयकारी थे। उस समय हजारों हजार आदमियोंने आपसे स्वप्नमें मंत्र प्राप्त किया था। किसीने भगवान् राम,

कृष्ण, राम-कृष्ण परमहंस, काली आदि देव-देवियोंको देखा

तो किसीने हजारों हजार वंशीधारी श्रीकृष्ण मूर्त्तियोंको आपके मुखसे निकलते देखा।

लोग चाहे जो भी कहते हों, किन्तु आप अलौकिकत्वकी बात सुनना पसन्द नहीं करते। यूरोपसे नये आये हुए इस वैज्ञानिक बादके युगमें अलौकिकत्वकी बातपर कौन विश्वास करेगा? विज्ञानप्रदत्त अविश्वासके इस युगमें कौन विश्वास करेगा कि मनुष्य-शरीरमें दिव्यशक्ति भरी हुई है? इसलिये आप तर्क द्वारा बात प्रमाणित करते रहते हैं।

———

एकत्रिंशत् अध्याय

गाँवका योगी योगड़ा, बाहरका योगी सिद्ध—की एक प्रसिद्ध कहावत है। इसी कारण जगतके सब महापुरुषोंको अपना कर्म-स्थल और लीला-निकेतन अपने जन्म-स्थलसे दूर बनानेको बाध्य होना पड़ा था। इसके विपरीत अनुकूलचन्द्रजीने अपनी जन्म-भूमिको ही कर्मभूमि बनाया। अपने जन्म-कुटीरको ही उन्होंने अपना लीला-क्षेत्र बनाया।

भाव वाणी और विश्वगुरु महोत्सवके कारण दूर दूरान्तर तक ख्याति पहुँच गयी। अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं, धरापर अवतीर्ण हुए हैं का नाम फैला। सद्गुरु हैं, ठाकुर हैं, अवतार हैं का शोर हुआ। भाँति-भाँतिके प्रशंसा-सूचक शब्द उड़े। शिक्षित, अशिक्षित, सती-असती, स्वदेशी-विदेशी सब प्रकारके लोगोंका आगमन होने लगा। विभिन्न स्थानोंसे हजारोंकी संख्यामें दर्शनार्थी और शिष्य आने लगे। किसीने कुछ देखा, किसीने कुछ समझा। शान्ति, स्निग्धताकी छायामें निवास करनेकी आशामें लोगोंने उनके निकट आश्रय लिया। निराश्रयने आश्रय, अशान्ति और पीड़ासे विदग्ध प्राणियोंने शान्ति, ज्ञानेच्छुओंने ज्ञान, वैज्ञानिकोंने विज्ञान और मनस्तत्वके जिज्ञासुओंने मनोविज्ञान आदि विषयोंको सीखने और आश्रय पानेके निमित्त अनुकूलचन्द्रजीकी कुटियाके निकट डेरा जमाया। कुछ लोग तो सपरिवार आ जुटे।

इसके पीछे ग्रामवालोंका विरोध और आघात सहन करना पड़ा। कुलकुटुम्ब और स्वजनोंके हाथोंका मर्म्मान्तक आघात सहना पड़ा। फिर भी आप रहे अविचल। बाधा-विघ्नपर विजय प्राप्त करनेको जो आनन्द समझता हो उसका क्या कदम डिग सकता है?

धीर गतिसे आपने सबके रहनेका प्रबन्ध करना आरम्भ किया उनका आवासस्थल आश्रममें परिवर्तित हुआ और पाबना सत्संगके नामसे पुकारा जाने लगा। उनके ना ना करतै भी भक्त मण्डलीने उन्हें ठाकुर कहना आरम्भ कर दिया। अनुकूलचन्द्रजी श्रीश्रीठाकुरमें परिवर्त्तित हुए। इस सम्बोधनको सुनकर आप कुण्ठित हुए, व्यथित हुए। आत्मगोपन करना जिसका स्वभाव हो, दूसरेको बढ़ाने, ऊँचा करनेमें जो स्वस्तिका अनुभव करता हो, उनको जब ठाकुर कहकर लोगोंने अपना श्रद्धार्घ्य चढ़ाना आरम्भ किया, आप संकुचित हो पड़े। ऐसा न करनेका निषेध किया, अनिच्छा प्रकाश की, किन्तु किसीने भी न सुना।

जिस भावके साथ हृदयका सम्बन्ध हो उसको भगवान् भी निरस्त्र करनेमें असमर्थ रहते हैं।

इसपर भला लोग चुप रहें? एक आगन्तुकने उनसे प्रश्न कर ही दिया—'लोग आपकी पूजा देवताकी भाँति करते हैं, तब क्या आप भगवान् है?'

आदमीके अतिरिक्त क्या दूसरा भी देवता होता है? अनन्य कर्म करते रहनेके कारण जिसमें देवत्वकी दीप्ति फूट पड़ती है देवता वही तो कहा जाता है?

भगवत्ताका विकास और षडैश्वर्यका जिसमें प्रकाश हो भगवान् वही तो कहलाते हैं? ब्रह्मविद्‌के अतिरिक्त ब्रह्मोपलब्धि क्या की जा सकती है?

ठाकुरने हँसते हुए उत्तर दिया—"शालिग्रामशिला अपने आपको पत्थरके अतिरिक्त क्या कुछ दूसरा समझती है? उसका गुण जानना हो तो उसपर जो विश्वास करते हों उनके निकट जाइये।"

ठाकुर अनुकूलचन्द्रकी चिन्मयी शक्तिका पता रखते थे उनके शिष्यगण। उन्होंने अपने जीवनमें उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया था।

इसीसे आवेगसहित ठाकुर सम्बोधन करके हृदयोद्गार व्यक्त करते थे।

सारा प्रयत्न करके भी जब ठाकुर कहना बन्द न कर सके तो अपने आपको यह कहकर प्रबोध देने लगे—"लोग हज्जाम और रसोइयादारको भी ठाकुर कहते हैं। मैं अपन आपको आजसे यही समझूँगा।"

इसी प्रकार भक्तके आगे भगवान् सर्वदा हार मानते आये हैं।

बेचारे भक्त भी क्या करें? वे प्रति मुहूर्त्त ठोकर खाते थे, प्रत्येक विषयमें टक्कर लगती थी उन्हें। प्रतिपल ठोकर दे-देकर जो ज्ञान खोलता हो उसको ठाकुर न कहें तो क्या कहें?

उनके ठाकुरका उठना-बैठना, आचार-आचरण, बात-व्यवहार, अंग-प्रत्यंगका संचालन भंगी उन्हें ठोकर दे-देकर चैतन्य कराती रहती। उस दिव्य आइनेमें वे अपने दुर्बल अभ्यास और कुत्सित रूपका अवलोकन करते रहते। उनका अनुकरण करनेमें भी वे असफल होते। असफलता ठोकर प्रदान कर पुनः प्रवृत्त होनेका प्रोत्साहन देती।

यह ठोकर शाब्दिक अनुशासन न की होती, होती अनिन्द्य सुन्दर आचरण और लोक-व्यवहारकी। अप्रेम किंवा असौजन्य की नहीं, चारित्रिक सम्पदकी। आचरण करके, लोक व्यवहारकी विधि दिखाकर, चरित्र प्रदर्शनकर आप अहर्निश जिस ठोकरको प्रदान करते उसको अनुशीलनकारीकी रोम-रोम समझती।

इस प्रकार प्रवृत्तिके अधीश और प्रवृत्तिके दासके बीच प्रति मुहूर्त्त ठोकर लगती ही रहती।

अच्छा बननेमें बहुत-सी अच्छी लगनेवाली वस्तुएँ और अभ्यासोंको विसर्जन करना पड़ता है। श्रेय प्राप्तिके निमित्त प्रेयको बलि चढ़ाना पड़ता है।

प्रवृत्तिवश अनुगामी पदस्खलित हो सकता है। किन्तु इष्टा-

नुराग उसके अन्तरको अनुचिंतनासे भर देता है। उस अनुचिंतना में वह पदस्खलनसे निवृत्ति पानेके निमित्त पुनः खड़ा होता है। प्रायश्चित्त करके अपने आपको परिशुद्ध बनाता है और तब लग पड़ता है अपने प्रियतमके आप्राण अनुकरण करनेमें। परिशुद्ध होनेके कारण उसकी गति तीव्र और अडोल होती है। प्रवृत्तिके नागपाशको वह उखाड़ फेंकता है।

यही तो जीवन-संग्राम है! अपने साथ युद्ध, अपनी दुर्बलताओंके साथ पञ्जा आजमाइश। जो अपने जीवनको प्रवृत्तिके बन्धनसे संघर्ष करके मुक्त कर लेता है वही तो साधक है। दुर्बलताओंपर विजय पानेके उपरान्त ही तो आध्यात्मिक राज्यमें प्रवेश करनेका अधिकारी बना जाता है? तभी तो उसमें बल-वीर्य आता है। शक्ति और अमृततनय होनेका गर्वबोध तभी तो आता है।

जब कभी शिष्यहृदय पदस्खलनके अनुचिन्तनासे विदग्ध हो जाता आप उसको बढ़ावा देकर उठाते, पीठ ठोककर पुनः युद्धमें प्रवृत्त होनेकी हिम्मत बँधाते। एक बार अनुतप्त शिष्यको आपने समझाना आरम्भ किया—"पदस्खलित होना आश्चर्य नहीं। हमारे आपके समान मनुष्यको ऐसा होता ही रहता है। बाधा है, इसीसे तो अतिक्रमण करनेका आनन्द मनुष्यको धन्य बना देता है। प्रलोभनको जिसने जाना या न देखा हो वह प्रलुप्त व्यक्तिको उद्धारकी बात क्या सुनावेगा?

पदस्खलन तो दुर्बलता ही है। किन्तु उसके पीछे आत्म-हत्या करना तो और भी दुर्बलता है। और वीर तो वही है जिसने एक बारके पदस्खलनको आजन्मके लिए अवरुद्ध कर दिया हो। इसलिए कायरताको दूर करो, हृदयकी दुर्बलताका त्याग करके उठ खड़े हो।

"क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥"

इसी प्रकारसे ठाकुर अपने प्रत्येक शिष्यको दुर्बलतासे युद्ध करनेको ललकारते रहते है। साहसी और बीर बननेका प्रोत्साहन देते रहते है। दुर्बलतारूपी रक्त-शोषक निशाचरसे सावधान रहनेको सतर्क करते रहते है। बिन्दुमात्र दुर्बलता या मलिनता शिष्योंमें रहने देना नहीं चाहते।

पदस्खलित होनेके कारण जब शिष्य काला मुँह बनाये सन्मुख खड़ा होता है उस समय आप उसको बढ़ावा देते हैं।—'एक आध बार पदस्खलन हुआ तो इससे क्या? पहले तो ऐसा बार-बार होता था। पाप किया है—मुझसे अब क्या होगा आदि बातें कहकर हताश बैठे रहना क्या अच्छा है? चेष्टा करो, थोड़ी चेष्टा करनेसे ही पापराशि ध्वंस हो जायगी।'

'हटना दुर्बलता नहीं, दुर्बलता है चेष्टा न करना। प्राण-पणसे चेष्टा करते रहनेपर भी यदि मनोवांछा पूर्ण न हो, तौभी हानि नहीं। चेष्टा करना मत छोड़ो—लगे रहो। यह अम्लान चेष्टा ही तुमको सर्व पापोंसे मुक्त बना देगी।'

"दुर्बलका मन हरदम सन्दिग्ध बना रहता है। उसके भीतरका विश्वास, निर्भरशीलता और प्रेम मर जाता है। किसीके प्रति भक्ति कर ही नहीं सकता। निष्कपटता उसके लिये स्वप्नवत् होती है। इसलिये अपनी दुर्बलताके साथ युद्ध कर, संघर्ष कर।"

इसके फलस्वरूप अपने आपपर विश्वास उत्पन्न होगा। डटकर काममें प्रवृत्त होनेका साहस होगा। आत्म-विश्वास होगा। तभी जाकर आध्यात्मिक राज्यमें प्रवेश करनेके अधिकारी बनोगे।

अपने आप से युद्ध करने, अपनी प्रवृत्तियोंसे संघर्ष करनेकी बात विग्रहमूर्ति नहीं बतलाती। विग्रहपूजामें प्रवृत्तिसे युद्ध करनेका झमेला नहीं रहता। अपने इच्छानुसार उसकी पूजा कर सकते

हैं, मनोनुसार उनको सँजो सकते हैं। उनके इच्छानुसार आत्म-नियन्त्रण वा चरित्र-गठनका झंझट नहीं उठाना पड़ता। इसीलिये आर्य्य धर्मने 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' की बात सर्वप्रथम बतलायी है। जीवन्त मातृ-पितृ और गुरु-मूर्त्ति की पूजा करनेकी बात सिखाई है।

इसी प्रकार पुस्तक और प्रतीकके पुजारियोंकी संख्या भी संसारमें कम नहीं। ऋषिको अमान्य कर ऋषि वाक्यकी पूजा की जाती है। ऋषिको त्यागकर ऋषिसन्तान होनेकी डफली बजाई जाती है। संसारमें इस प्रकारके बहुधार्मिक पन्थ और समाज भी प्रचलित हैं। पुस्तक, धर्मग्रन्थ वा प्रतीक तो हमें ठोकर पहुँचाते नहीं, आदेशानुसार चलनेकी बात नहीं कहते। किन्तु जीवन्त ऋषि, सद्गुरु वा माता-पिताके सामने तो यह नहीं चल सकता। उनकी आँखोंमें तो धूलि नहीं दी जा सकती। उनके सामने पड़ते ही अपना रूप दीख पड़ता है। उस आइनेके सामने पड़ते ही आत्मा काँप उठती है। अपना बीभत्स रूप देखकर रोंगटे स्वयमेव खड़े हो जाते हैं।

ऋषिपूजासे रहित पन्थ और समाजोंको देखकर ठाकुरने कहा—"भारतीयोंकी दृष्टिसे जबसे भगवान् अमूर्त्त, निराकार और असीम बन गये तभीसे भारतकी अवनति प्रारम्भ हुई है।"

अवनतिका कारण तो ज्ञात हुआ, किन्तु इससे बचा कैसे जायगा? भारतवर्ष पुनः अपने पूर्व गौरवको कैसे प्राप्त करेगा? उन्होंने उत्तर दिया—"भारतवर्षके भविष्य-कल्याणकी कामना यदि हो तो सर्वप्रकारके साम्प्रदायिक विरोधोंका विसर्जन कर आजतक संसारमें जितने गुरु या अवतार हो चुके हैं उन सबके प्रति श्रद्धावान बनो। इसके साथ-साथ तुम्हारे जो जीवन्त गुरु रूपी भगवान् हैं उनके प्रति परिपूर्ण रूपसे आसक्त और अनुरक्त बने रहो। जो पूर्वावतारों और गुरुओंको मानते हों उन सबको

स्वीकार करो। कारण, परवर्त्ती अवतार पूर्ववर्त्ती अवतारोंका सम्पूर्ण अधिकार लेकर ही अवतार ग्रहण करते हैं।"

'सः पूर्व्वेषामपि गुरुः कालेनावच्छेदात्।'

'I am before Abraham was'—मैं आदमकी उत्पत्तिके प्रथम भी विद्यमान था।

पुरुषोत्तम परिपूरक बनकर धरापर अवतीर्ण होते हैं। वे पूर्व्वावतारोंकी भावधारा, शिक्षा और वाणीके तात्पर्यको परिपुष्ट, परिष्कार और सक्रिय रूप प्रदान करने आते हैं। वे सबके हृदयमें पूर्व्वावतारोंके प्रति श्रद्धाभाव भरने आते हैं, विरोध-सृष्टि करने नहीं। वे पूर्व गुरु, ऋषि और महा-पुरुषोंके प्रति लोगोंमें प्रेमभाव भरते हैं। संशयीका संशय दूर करते हैं, अविश्वासियोंमें उनके प्रति विश्वास पैदा करते हैं।

इसलाम धर्मावलम्बी गौहरअली जब आपसे दीक्षा लेनेकी बात करने लगा तब उसको सावधान करते हुए आपने जवाब दिया—"तुम यदि हज न करो, नमाज न पढ़ो, जकात न निकालो, कलेमा न पढ़ो तो मेरे साथ नहीं बन सकता। हजरत मुहम्मद मानवताके कितने बड़े प्रेमी थे इसकी तुम्हें मर्म-मर्ममें उपलब्धि करनी पड़ेगी। जो अपने दाँत तोड़नेवालेको दुआ दे सकते थे—हृदयसे लगाकर चुम्बन करते थे उस मानवप्रेमी हजरत मुहम्मदके समान महापुरुषके प्रति तुम्हारे हृदयकी श्रद्धाको यदि मैं जाग्रत न कर सका तब तो तुमको धर्मद्रोही "काफिर" बनानेका काम करूँगा। इस पापसे बचना होगा, हजरत मुहम्मदकी जो आभा तुम्हारे रक्तकणिकामें झलक रही है उसको अवदलितकर धर्मान्तरित करना धर्मके नामपर विश्वासघात करना है। इसलिये तुम्हें हजरत मुहम्मदपर पक्का-यकीन रखना होगा, उनकी बतलायी विधिके अनुसार पाँचों नमाज पढ़नी होगी। रोजा रखना होगा और हजरतके समान दुनियामें यदि कोई

महा-पुरुष हों तो उनके प्रति अनुरक्त बनना होगा।"

गौहरअलीने ठाकुरमें रसूलके जीवन्त परसका अनुभव किया है। दीक्षा लेनेके उपरान्त उनकी बतलायी नीतियोंका अनुसरण करता आया है। तपस्याके फलस्वरूप उसकी मानसिक एकाग्रता दृढ़ हुई है, नवीन शक्तिका जागरण हुआ है। दायित्व लेनेकी क्षमता बढ़ी है। सत्यका तुलनात्मक दृष्टिसे निरूपण करना उसके लिये सहज हो गया है। प्रवृत्ति-नियन्त्रणका कौशल जान गया है। उसके समग्र मानसिक विकार दूर हो गये हैं। ठाकुरप्रदत्त अनुलोम और प्रतिलोम विवाहके फलाफलके कारण वह अच्छी तरह जान गया है कि क्यों हजरत मुहम्मदने नये मुसलमानोंके साथ खान-दानी मुसलमानोंकी लड़की देना बन्द किया है। ठाकुरका परस पाकर आज वह भक्ति, दीनता और विनम्रताकी प्रतिमूर्त्ति बन गया है।

अपने मुसलमान सहधर्मियाँके बीच आवेगभरे कण्ठसे ठाकुरका गुण-कीर्त्तन करता रहता है वह। अपने भाषणमें कहता है—'इस्लामी धर्म-ग्रन्थोंमें मेहदी इमामके आनेकी बात लिखी है। वही मेहदी इमाम ठाकुरके रूपमें आये हैं। चलो हम उनसे इस्लाम धर्म सीखें, कुरानका अर्थ जानें, सच्चा मुसलमान बनें।'

दल बाँध-बाँध मुसलमान ठाकुरके निकट आने लगे। उनके पुनीत शरीरमें हजरत रसूलके जीवन्त रूपका दर्शन पाया और उनके श्रीचरणोंमें शीश झुकाकर दीक्षा ली।

बंगाल सरकारके एक उच्च पदस्थ ऑफिसर खलिलुल रहमान साहबने तो कुरान सम्बन्धी ठाकुरसे प्रश्न किये। मास व्यापी उनके उस प्रश्नोत्तरकी एक मोटी पुस्तक हो गई है जो 'इस्लाम प्रसंग'के नामपर बंग भाषामें छापी गई है।

बंगाल और आजके पूर्वी पाकिस्तान सरकारके प्रधान-मंत्री

मौलवी ए. के. फजलुलहक साहबके कानोंमें जब मुसलमानोंके दीक्षित होनेकी खबर मिली तो वे एक दिन आश्रमकी कार्य-प्रणालीका निरीक्षण करने आ पहुँचे। किन्तु जाते समय अपना मन्तव्य दे गये कि सत्संगका आदर्श इस्लामके ही मूल आदर्शके समान है। इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि प्रत्येक मुसल-मानको सत्संगमें आकर इस्लाम धर्म सीखना चाहिये और सच्चा मुसलमान बनना चाहिये। हक साहबकी दृष्टिमें उच्च पदस्थ राज-कर्मचारीसे सत्संगका अधमाधम कार्यकर्त्ता भी बिशेष श्रद्धा और सन्मानका पात्र है।

१६३० सन्में तो स्थानीय मुसलमानोंने मिलकर आश्रममें ठाकुरका जन्मोत्सव भी मनाया था। इसके उपलक्षमें उन लोगोंने जो अपील निकाली थी उसीसे ज्ञात होगा कि वे श्रीश्रीठाकुरको किस श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखते थे। जनताके निकट अपील करते हुए उन्होंने जो छपा निमन्त्रण पत्र भेजा था उसमें था कि, "आगामी ३० वाँ भाद्र मंगलवारके दिन श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रका शुभ जन्म दिवस पड़ता है। इस तारीखसे आरम्भ करके कतिपय दिवस तक हम लोगोंने उनकी जन्मभूमि हिमाईत-पुर ग्राममें आनन्दोत्सव मनानेका आयोजन किया है। उनसे हम लोग शोकमें सान्त्वना, दुःखमें समवेदना, रोगमें शुश्रूषा और चिकित्सा और बिपन्नावस्थामें सहायता और सहानुभूति पाते रहते हैं। हमारे स्वजातीय भ्राता न होते भी आप अपने स्वकीय भ्रातासे भी अधिक स्नेहपरायण हैं, हिन्दू समाजमें जन्मग्रहण करके भी साम्प्रदायिक संकीर्णताके बहु ऊर्ध्वमें रहते हैं आप और सबको अपने-अपने स्वधर्ममें आस्था रखने और धार्मिक आचार अनुष्ठान करते हुए आत्मोन्नति करनेको उत्साहित करते रहते हैं। उनके अपार गुणोंपर मुग्ध होकर हमलोगोंने इस अनुष्ठानका आयोजन किया है ?"

———

द्वात्रिंशत् अध्याय

प्रेम, अनुकम्पा, ममत्वबोध ही वह अमोघ अस्त्र है जिससे आप मनुष्यमें परिवर्त्तन लाते हैं। वह पापीसे पापीको आश्रय-प्रदान करते हैं। संसार जिसको दुरदुर-छीछी करके विताड़ित करता है उसको आप गलेसे लगाते हैं। उसके दोषके प्रति तनिक भी ध्यान नहीं देते। पापसे आपको घृणा है, पापीसे नहीं। पापीसे पापीको हृदयमें बाँध लेते हैं, किन्तु उसके दुष्कर्मोंका प्रश्रय प्रदान नहीं करते। उनका आदर करते हैं, स्नेह करते हैं और उसके सद्‌गुणों-को जागृत करनेमें प्रयत्नशील रहते हैं। उन्होंने अगणित मानवोंके सुधारके निमित्त कितना अविश्रान्त प्रयत्न किया है उसका इति-हास लिखा जाय तो सैकड़ों खण्ड हो जायँ। आज भी क्या उनका मानवप्रिय हृदय मानता है? दुर्बलको सबल, पापीको पुण्यात्मा बनानेमें आज भी अविश्रान्त-अक्लान्त परिश्रम करते रहते हैं आप।

उन दिनों ठाकुर कलकत्तेमें ठहरे थे। जिस हरितकी बागान-में ठहरे हुए थे वहाँके फाटकपर एक दिन शराबके नशेमें मतवाला बने हेमचन्द्र कविरत्न आ उपस्थित हुए। आँखें लाल, पैर लड़-खड़ा रहे थे उनके। आप बंगालमें कविगानके आचार्य माने जाते थे उन दिनों। कवि-सम्मेलनमें कलकत्तामें सबको मात करते थे। कविता देवी होठोंपर ही बैठी रहती थीं? उच्चकुलीन ब्राह्मण थे आप। पिताने सब धर्मशास्त्रोंकी शिक्षा प्रदान की थी। इसके बल-पर नाटकीय परिवेश-सृष्टि करनेमें आप सिद्धहस्त थे। कविताकी शैली, शब्दयोजना जितनी ही सुन्दर होती उतना ही मधुर संगीत निकलता कण्ठसे। इनकी कविता जब प्रारम्भ होती लोग मंत्र-मुग्ध हो जाते, सम्मेलनकी जगहसे हटनेकी किसीकी इच्छा न होती। उनके मधुर छन्दके महासम्मोहिनी और इन्द्रजालिक

प्रभावसे सभी बुतकी तरह बैठे रहते। ऐसे गुणज्ञ व्यक्ति तरुण अवस्थामें ही कुसंगमें पड़ गये। अब क्या था। मदिराके साथ-साथ आनुषांगिक अवैध आचरणमें प्रवृत्त हो गये। एक तो जवानी, उसपर धन। पनालेमें बहने लगे आप। इन सब बातोंको जानते भी लोग उनके गुणका आदर करते थे। देशके बड़े-बड़े नेता उनका समादर और अभ्यर्थना करते थे। वही हेमचन्द्र आकण्ठ मद्यपान करके ठाकुरसे मिलने आये।

उनकी इस अवस्थाको देखकर भक्तोंको क्रोध हो आया। उन्होंने इसमें अपने गुरुका अपमान समझा। किन्तु करें क्या? ठाकुरके कारण रोकनेमें असमर्थ रहे। हल्ला सुनकर ठाकुर तो मानेंगे नहीं, उलटे बाहर स्वयं आकर बुला ले जायँगे। भक्तवृन्दोंने जानेमें तो किसी प्रकारकी बाधा प्रदान न की, किन्तु फिरते समय ऐसी शिक्षा प्रदान करनेकी तैयारी करली जिसमें हेमचन्द्रको ठाकुर-के यहाँ आनेकी फिर हिम्मत न रहे। फाटक, दरवाजे और पेड़के बगलमें लाठी-सोटावाले छः जवान खड़े कर दिये गये। फिरते समय पूरी मारकी योजना ठीक कर डा० वनबिहारी घोष भीतर ठाकुरके निकट जा खड़े हुए। क्या जाने यह शराबी ठाकुरके साथ कहीं गुस्ताखी न कर बैठे।

हिलते-डोलते मतवाले हेमचन्द्र ठाकुरके निकट पहुँचे और जाते ही बोले—'सुनते हो ठाकुर, मैंने शराब पी है।'

अपने करुणाघन विशाल नयनोंको हेमकविके मुखपर निक्षेप करते हुए ठाकुर मधुर स्वरमें बोले—'तो इससे क्या हुआ भैया? शराबको तो आपने पीया है, शराबने तो आपको नहीं पी डाला?'

इस उत्तरको सुनकर हेमचन्द्रके मुखका भाव ही परिवर्त्तित हो गया। आप बोले—"मुझको इस अवस्थामें देखकर मेरे प्रति घृणा नहीं होती आपमें?"

ना, ना, मैं घृणा क्यों करू ? दाहिने हाथमें घाव हो जाय तो क्या बायाँ हाथ उससे घृणा करता है ?

एक महापुरुषके मुखसे इस प्रकारके उत्तरकी आशा न रखते थे हेमचन्द्र। यह उनके मुखके परिवर्त्तित भावसे ही समझमें आ गया। कुछ देरतक ठाकुरके मुखकी ओर टुकटुक देखते रहे। क्या बोलें कुछ समझमें न आ रहा था। अन्तमें उन्होंने कहा—'मैं कुछ कवितामें ही कहना चाहता हूँ।'

ठाकुरने आनन्द प्रकाश करते हुए कहा—'हाँ, भैया, सुनाइये, जरूर सुनाइये। अपनी कविता सुनाकर मेरे कानोंको पवित्र कीजिये।'

हेमचन्द्रकी आँखें इधर-उधर कुछ ढूँढ़ने लगीं। सामने दीवारपर मृदंग टँगा था। डाक्टर बनबिहारी घोषकी ओर लाल आँखोंसे हेरते हुए लटपटाती जुंबानमें बोले—'अबे छोकड़े, लाना तो वह मृदंग।'

अपमानभरे शब्दको सुनकर तो बनविहारी बाबू जल गये, किन्तु क्या करें ? गुरुके सम्मुख बोले तो कैसे ? अन्तमें मृदंग उतारकर देनेको बाध्य हुए।

मृदंग हाथमें लेते ही सुरीली तान फूट पड़ी—

"चलिते चलिते पथेर माझारे
ना हय प्रदीप गिआछे निभिआ।
केहकि आमारे लइबे ना डाकि
जाबेकि हेलाय चरणे दलिआ।
उर्द्ध आकाश चिर उदासीन
स्नेह, ममता, करुणा विहीन।
निम्ने धरणि कठिना तेमनि
हृदय वेदना कांदे गुमरिआ।
दूरे सुना जाय ओरे कलरव

पुलके यात्रि चलिआछे सब ।
एकाकि आँधारे रहिआछे सुधु
आमारी दुःख आमारे घेरिआ ।।"

अर्थात्

चलते-चलते इस निशीथ अन्धकार रात्रिमें मेरा दीप यदि निभ ही गया है तो क्या कोई पुकार सुनाकर अग्रसर होनेके कार्यमें मेरा सहायक न बनेगा ? ओरे सहयात्री ! मुझको चरणोंसे पीसते-मसलते अन्धकारमें एकाकी भटकनेके लिये क्यों छोड़े चले जाते हो ? अरे, सभी तो मुझे उपेक्षा करते हुए बढ़े जाते हैं । भगवान् भी मेरे प्रति सदासे उदासीन ही रहते आये हैं । कभी भूले भी उनकी स्नेह और ममताकी दृष्टि मुझपर नहीं पड़ती । प्रभु तो निष्करुण बने बैठे हैं । और यह दुनिया ? वह भी तो मेरे लिये वैसे ही कठिन-कठोर बनी हुई है ।

अरे, वह कलरव ध्वनि सुनी जा रही है । उस ध्वनिको सुन-कर यात्री पुलकित हृदय आगेकी ओर बढ़े जा रहे हैं । प्रभो, दीनबन्धो ! क्या एकाकी मैं ही अपने दुःखोंमें घिरा मरता रहूँगा ? मेरी इस दयनीय-अवस्थामें क्या कोई अपना स्नेह परस प्रदान कर, न उबारेगा ?

कविताके अन्तिम चरणके गाते समय हेम कविकी आँखोंसे मेह बरसने लगा । आन्तरिक वेदनाका चिह्न सर्वांगमें परिलक्षित हो रहा था । शेष पंक्ति गाते-गाते मृदंगपर सर रखकर वह फूट फूटकर रुदन करने लगे ।

उस करुण रुदनको सुनकर उपस्थित सभीकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गईं । किन्तु ठाकुर तो विह्वल हो पड़े । आपने दौड़कर हेम-कविको हृदयसे बाँध लिया । उनके कपोलपर आँसूकी धारा गिर रही थी । बाहुपाशमें आबद्ध करते ही हेमचन्द्र चिल्ला उठे: 'ना, ना, ठाकुर, मुझको आप न छूवें । मैं आकण्ठ मदिरा पान करके

आया हूँ, मेरे कपड़े-लत्ते और सर्वांगसे शराबकी बू आ रही है। आपका पवित्र शरीर म्लान हो जायगा मेरे स्पर्शसे। मुझसे घृणा करें, मुझपर थूकें।'

किन्तु ठाकुरने न छोड़ा। हृदयसे लगाते हुए बोले; 'घृणा किससे करूँ, क्यों करूँ ? परमपिताके राज्यकी गन्दगीका पोछना मेरा काम है, थूकना नहीं। आपसे घृणा करने लगूँ, तो जाऊँगा कहाँ ? किसको गलेसे लगाऊँगा ?'

उनके उस सहृदय व्यवहारपर हेमचन्द्र विह्वल स्वरमें बोले: 'आपने मुझको छू दिया, जिसको सभी दुर-दुर छी-छी करते रहते हैं उसको आपने गलेसे लगा लिया ?'

आँखें सावन-भादों बन गईं उनकी। आवेगभरे शब्दोंमें बोलते गये: 'आपकी तरह जीवनमें कभी किसीने अपना समझकर नहीं अपनाया। मदिरा खराब वस्तु है, इसको छोड़ दो यह बात सभी कहते हैं। अच्छा ठाकुर, मैं क्या यह नहीं समझता कि यह खराब वस्तु है ? इसके विरुद्ध मैं क्या किसीसे कम उपदेश दे सकता हूँ ? मुझमें इसके छोड़नेकी शक्ति रहती तो मैं दूसरोंके निकट क्यों जाता ? इस मोटी बातको लोग क्यों नहीं समझते ?'

हेमचन्द्रके हृदयके उत्तापपर शान्तिका प्रलेप लगाते हुए ठाकुरने कहा—'ना भैया, किसीके कहनेपर आप शराब पीना क्यों छोड़ेंगे ? आप पीयें, खूब पीयें, आकण्ठ पान करें। सिर्फ इतना ध्यान रखें कि शराब आपको न पी जाय।'

इस उत्तरको सुनकर हेमचन्द्र मुस्कुराते हुये बोले: 'इसीसे तो आप इतने अच्छे लगते हैं।'

बेचारे हेमचन्द्र यह क्या जानते थे कि ठाकुरके प्रेमके जालमें पड़कर एक दिन उन्हें शराब छोड़नेको बाध्य होना पड़ेगा। परम प्रेममय ठाकुर अपना प्रेम उड़ेल-उड़ेलकर अज्ञात रूपसे लोगोंसे कैसे शराब छुड़ा लेते हैं, इसका क्या कोई टेर भी पाता है ?

हेमचन्द्रके निमित्त शराब मँगानेकी विशेष व्यवस्था की गयी। शिष्योंको शराब खरीदकर देते रहनेकी विशेष आज्ञा ठाकुर ने दी। हेमकवि घर-द्वार छोड़कर आपके साथ ही रहने लगे। कलकत्तासे जब ठाकुर पावना लौटे तो वह भी आ गये।

आश्रम पहुँचनेपर भी उस व्यवस्थामें तनिक कमी न आई। पावना शहरसे शराब लानेके निमित्त एक आदमी ठीक कर दिया गया। नित्य शराब आती और आप पीते। इसके पीछे सत्संग-आश्रम और ठाकुरकी जो बदनामी हुई उसका कहाँ तक वर्णन किया जाय। पावनावाले तो रास्ता चलते आश्रम-वासियोंकी खिल्ली उड़ाया करते। अखबारवाले भला चुप बैठें? 'सत्संग-आश्रम शराबियोंका अड्डा' शीर्षक दे देकर छापना आरम्भ किया। विभिन्न रूपसे ठाकुरकी बदनामी की गई। किन्तु ठाकुर डाक्टरकी भाँति अविचल रहे।

ठाकुर आश्रयी हैं प्रश्रयी नहीं। किन्तु हेमचन्द्रकी आँखोंने उनके भीतर प्रश्रयी रूपको ही देखा। वे विमुग्ध बने गाते फिरे:—

'हे मोर जीवन साथी, चिर प्रेममय।
विश्वे सुधु तुमी मोरे दियेछ प्रश्रय॥
ताइ तुमि सकलेर बड़; सुकौशले
अनुग्रह-हीन तुच्छ, आश्रयेर छले
करनि लांक्षित एहि उत्केन्द्र हृदय
ताइ उच्छृंखल चित्ते भरि उठे जय।
आमार सकल भावे सदा अनुकूल
एहकाल खुँजे खूँजे भांगियाछे भूल।

अर्थात्

ऐ मेरे जीवन-साथी! तुम चिर प्रेममय हो। इस दुनियामें किसीने मुझको प्रश्रय प्रदान यदि किया है तो तुमने। आश्रय प्रदान करने किंवा अनुग्रह करनेके नामपर तुमने मेरे हृदयकेन्द्रको लांछित वा तुच्छ कभी नहीं किया। मेरी उच्छृङ्खल मनोवृत्तिके

तुम सदा अनुकूल और प्रश्रयप्रदाता रहे। इसका जब संसारके साथ मिलान करने बैठता हूँ तो तुम्हारे अनुपम कौशलके समान दूसरा दृष्टान्त खोजे नहीं पाता। हे मेरे चिर प्रेममय! हे हमारे अनुपम अनुकूल! समस्त दुर्बलताओंको प्रश्रय प्रदान करनेवाला संसारमें एक भी आदमी खोजनेपर नहीं मिल सकता।

ठाकुर एक मनोवैज्ञानिककी भाँति चिकित्सा करते रहे। किन्तु उस दिन हेमचन्द्रकी सम्पूर्णतः हार हो गयी जिस दिन उन्होंने स्वयं अपने हाथसे ग्लासमें शराब भरकर हेमचन्द्रको पान करनेके निमित्त दी। अभ्यासवश वह पी तो गये, किन्तु रातभर नींद न आई। बिछावनपर छटपटाते रहे। दूसरे दिन ठाकुरके निकट पहुँचे और बोले—'ठाकुर आपके समान चतुर और छलिया व्यक्ति जीवनमें कभी न देखा। बहुत साधु-संन्यासियोंके निकट गया हूँ, किसीसे कुछ न हुआ। किन्तु हमारे समान शराबी-को आपने अनायास ही जीत लिया। पहले तो हाँमें हाँ मिलाते रहे, बढ़ावा भी देते रहे। पीता था मैं और बदनाम होते थे आप और आपका यह आश्रम! बदनाम होते भी आप शराब मँगाते ही रहे। मेरे पीनेके पीछे आपना मान-सम्मान सब बिक्री कर दिया। उस दिन मैं यह न जानता था कि अन्तमें एक दिन शराब छोड़नी ही पड़ेगी। आपका प्रेम ही मेरे लिए काल बना। जिसके श्रीचरणोंमें बैठकर सब कोई अमृत पान करने आते हों उस अमृत-दाताको जीवन क्षयकारी शराब पीनेके पीछे मैं करता हूँ बदनाम! अब तो आपके अमृतमय हाथोंसे भी शराब ढलवाने लगा। हाय रे प्रवृत्ति! प्रेममयके प्रेम और उपकारका कैसा प्रत्युपकार करता हूँ? ठाकुर विवेकका यह दंशन अब असह्य हो गया है। आजसे मैं कभी शराब न छूऊँगा।'

एकात्मबोधकी क्रिया क्या व्यर्थ जाती है? प्रेमके फन्देसे क्या कोई निकल सकता है?

———

त्रयत्रिंशत् अध्याय

प्रभु ईसाके क्रुसिफिकेशनकी कहानी पढ़ी जा रही थी। अमे-
रिकन ईसाई साहब लोग भी बैठे थे। पढ़नेवाला भी एक अमे-
रिकन ही था। फाँसीकी कहानी सुननेमें सभी तन्मय थे। किन्तु
सुनते-सुनते ठाकुरकी आँखें सुदूर अतीतकी ओर चली गईं।
मानों प्रत्यक्ष हत्याकाण्डको देख रही हों। धीरे-धीरे उनका
समस्त शरीर पीला पड़ता गया। आँखोंसे अविरल धारा बहने
लगी। आहत प्राणीकी तरह चीख पड़े। उस आर्त्तध्वनिको सुन-
कर सबके रोएँ खड़े हो गये। पाठ स्वयमेव बन्द हो गया।

क्रूसपर लटकाये जानेकी कहानीकी नवीन उपलब्धि अमे-
रिकन ईसाइयोंने की। उस कहानीको बहुबार उन्होंने सुना और
पढ़ा था, किन्तु प्रभु ईसाके प्रेमी भक्त ठाकुरके निकट आकर
उसका हृदयस्पर्शी अनुभव किया।

इसका प्रभाव ठाकुरके शरीरपर बहुत ही पड़ा। अत्यन्त वेद-
नार्त्त रहने लगे। शरीरमें न रक्त रहा न बल। एक काला पिण्ड-
मात्र शरीर हो गया उनका। दुःख और शोकसे मन-प्राण आच्छन्न
रहने लगा। वह जहाँ बैठते वहाँसे उठनेमें असमर्थ हो जाते।
ज्ञात होता आपके काले शरीर-पिण्डसे दुःखका एक प्रवाह बह
रहा है। आश्रमका प्रांगण और मातृ-मंदिर शोकके करुण प्रवाहसे
परिपूर्ण रहता। ठाकुरकी ओर जानेकी इच्छा न होती। गाछ-
वृक्ष, पत्ते-पत्तेसे शोकोच्छ्वास निकल रहा था। ठाकुरका शरीर
दुःख और वेदनाका संकुचित लोथड़ा-मात्र रह गया था। उनकी
ओर आँख उठानेपर आँसू निकल आते, मुखसे बोली न
निकलती। शोकके उस मूर्तरूपका वर्णन कैसे किया जाय? प्रकृति
मूक क्रन्दन कर रही थी, हवा रोती थी। विषादका शोकोच्छ्वास
गाछ-वृक्षके पत्ते-पत्तेसे निकलतासा ज्ञात होता था।

साम्प्रदायिक रक्तपातका इतिहास भारतीय इतिहासका कलंकमय इतिहास है। विदेशी पद्धतिपर राजनैतिक आंदोलन आरम्भ किया गया। भारतीय सांस्कृतिक भाव-धाराको न समझ राजनैतिक नेताओंने पश्चिमका अन्धानुकरण किया। परिणाम-स्वरूप साम्प्रदायिक राजनीतिका उद्भव हुआ। इसके संस्थापक और प्रवर्तक भी राजनैतिक नेतागण ही थे। पद और अधिकार प्राप्तिके पीछे राजनैतिक नेताओंने हिन्दू-मुसलमानोंके मध्य रक्त-पातका कलङ्कपूर्ण बीज बोया। स्वयं-सेवक, लेक्चर देनेवाले आग भड़काते फिरे। पत्र-पत्रिका द्वारा आग फैलाई जाने लगी। मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारेके पवित्र स्थलसे मार-काटकी आवाज उठाई जाने लगी।

इससे बचनेके लिये पैक्टपर पैक्ट किये गये। वह भी जब व्यर्थ हुआ तब धर्मको उखाड़ फेकनेके निमित्त राष्ट्रको ही धर्मनिरपेक्ष बना दिया गया। इतना ही नहीं धर्मको अफीम और रक्त-पात का कारण बताया जाने लगा।

इसपर ठाकुरने कहा—"गला दबाकर उन्नतिके पथको अव-रुद्ध करनेके स्थानपर प्रत्येकको normally fulfill स्वाभाविक रूपसे परिपूर्ण करनेवाले पथको अपनाना चाहिये। इसके अप-नानेमें सभीकी वृद्धि होती है।

युग-युग अवतार होता है। सम्भवामि युगे-युगेकी धारा क्या कभी अवरुद्ध हो सकती है? ये अवतार सबके परिवर्द्धक और परिपूरक होते हैं।

जो परवर्त्तीकालमें अवतार आते हैं वे समस्त पूर्ववर्ती अव-तारोंका अधिकार लेकर आते हैं। ईश्वरीय-धाराका वह कोई विच्छिन्न अंग नहीं होते।

युगावतारकी पूजा कर, अनुसरण कर और पूर्वावतारोंके प्रति श्रद्धा और सम्भ्रम दिखाओ।

जो पूर्वावतारोंमें विभेद करते हैं किंवा श्रद्धा नहीं करते वे धर्मभ्रष्ट होते हैं।

ठाकुरने कहा:—

"पूर्वतनेर अस्वीकृति धर्मपथे भ्रष्टाचार"

और वर्तमान महामानवका अनुसरण करना क्या है? महा-मानवीय धाराने जिस अमृत-मय राज-पथका निर्माण किया है उस पथपर चलना है। महा-मानवीय-धाराके सतत बहावका पथ उन्मुक्त रखना है। इसलिये वर्तमान अवतारके श्रीचरणोंमें अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु चढ़ाकर काय-मनोवाक् उनका आलिंगन और अनुसरण करते रहना चाहिये।

ठाकुरके मतसे—'प्रत्येक सच्चा धार्मिक हिन्दू और मुसलमान ईसाई है और प्रत्येक सच्चा ईसाई और मुसलमान हिन्दू है। जहाँ कहीं इसमें व्यतिक्रम दिखाई देता हो वहाँपर धर्म नहीं, धर्मके नामपर कृत्रिमता और पाखण्ड है। धर्मकी बू भी नहीं वहाँ।

खुदापर ईमान लाना और हजरत मुहम्मदपर यकीन या विश्वास करना यदि धर्म है और आजतक दुनियामें जितने गुरु हो चुके हैं उनको माननेमें किसी प्रकारकी बाधा न आती हो तो ब्राह्मण रहते मैं मुसलमान भी हो सकता हूँ, क्षत्रिय रहते हुए भी मुसलमान होनेमें कोई डर नहीं। ठीक उसी प्रकार मुसलमान या ईसाई रहते हुए ब्राह्मण या क्षत्रिय होनेमें कोई बाधा नहीं।'

यह बात संसारके प्रत्येक व्यक्तिपर लागू है, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई किंवा बौद्धपर ही नहीं।

इस बातको उन्होंने सिर्फ कहा ही नहीं, करके दिखलाया भी है। आज भी वह वही कर रहे हैं। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई और यहूदी सबको उन्होंने बिना धर्मपरिवर्तन कराये एक ही मन्त्रसे दीक्षित करके आध्यात्मिक अनुभूतियोंकी समानताके

सत्यताका अनुभव कराया है। आदमी जब अपने शरीर द्वारा ही सत्य, चैतन्य शक्ति, आत्म या ईश्वर-दर्शनकी उपलब्धि या अनु-भूति प्राप्त करता है तब अनुभूतियाँ दो प्रकारकी नहीं हो सकतीं। ईश्वर या सत्य जब एक है और उसकी अनुभूति या उपलब्धिका माध्यम एकमात्र शरीर ही है, तब अनुभूतियाँ क्या दो प्रकारकी हो सकतीं हैं?

आप सर्व-धर्म-समन्वयकी बात कहकर ही शान्त न हुए, विगत महापुरुषोंके आध्यात्मिक साधनाकी अनुभूतियोंके एकताको दिखा-कर ही विरत न हुए, 'जितने मत हैं उतने पंथ हैं' यह कहकर उन्होंने समाप्तिकी अन्तिम रेखा नहीं खींची, बल्कि सर्व-परिपूरक-पुरुषोत्तमके रूपमें जीवन्त-धर्मके मिलन-तीर्थकी रचना की। इस पुरुषोत्तम मिलन-तीर्थमें सब धर्मवाले सम्मिलित होकर अपने-अपने वैशिष्टानुसार परिपूर्त्ति प्राप्त करनेके अतिरिक्त प्रत्येक पुरुषोत्तम, अवतार या ऋषियोंके आध्यात्मिक दर्शन और शिक्षणके सत्यताका वैज्ञानिक अनुसन्धान और अन्वेषण करते हैं। इस प्रकार शाश्वत-धर्मके अमृत-पानका सार्वजनीन क्षेत्र निर्मित हुआ। और स्थापित हुई पुरुषोत्तमप्रदत्त सत्यज्ञानके अनुसन्धान और प्रयोगकी विशाल वैज्ञानिक-धर्मशाला।

हजरत मुहम्मद मुसलमानके हैं, भगवान् राम-कृष्ण हिन्दुओं-के हैं, और प्रभु ईसा ईसाइयोंके हैं। इस प्रकार मानवताके समु-द्धारक अवतारगणोंको धार्मिक संकीर्णता और संकीर्ण साम्प्रदा-यिकताके बन्धनमें बाँधकर उनको छोटा-बड़ा बनाया जा रहा था। इसको तोड़कर महामानव-पूजक मानवताका निर्माण करने लगे आप।

वैज्ञानिकदृष्टि-कोणसे आध्यात्मिक सत्यकी अन्वेषणशाला खोलकर आपने जो अभूतपूर्व कल्याण किया है, उसका वर्णन कहाँतक किया जाय। इस कारण आध्यात्मिक अन्वेषणका एक

नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोण जगतको मिला है। अबतक सर्व-धर्म-समन्वयकी दृष्टिसे ही प्रयत्न किया जा रहा था। इस निमित्त महापुरुषोंने आकर साधना करके 'यत-मत तत पथ' या जितने धर्म हैं उतने पथ हैं कहकर धार्मिक एकता लानेका प्रयत्न किया था। किन्तु इसको और आगे बढ़ाते हुए ठाकुरने कहा—'यत मत सवार एकई पथ' है। अर्थात् पथ एक ही है—सत्यानुभूति राज-पथ दो नहीं हो सकता।

धर्म-परिवर्तन या Conversion कराकर धार्मिकताने मानव-मानवमें विभेद और विच्छेद उत्पन्न कर दिया था। इसके पीछे महापुरुषोंके प्रति घृणा और विद्वेषका भाव लोगोंमें बढ़ गया था। राम-कृष्ण, मुहम्मद-ईसा आदि महापुरुषोंके प्रति लोगोंमें जो अनास्था और अश्रद्धा आ गई थी वह इसीके कारण।

आप Conversion या धर्म-परिवर्तनको धार्मिक विश्वास-घात समझते हैं। कभी कोई महापुरुष धर्म-त्याग कराने नहीं आता। महापुरुष आता है परिपूर्ण करने—उन्नति और विकासके पथको विस्तीर्ण करने। धर्म-परिवर्त्तनका अर्थ है, पितृ-रक्त-धारा-से विच्छिन्न होना। पितृ-रक्त-धारामें रहता है जीव-कोषका अविनश्वर माल्य। इस अविनश्वर माल्यमें पितृ-पुरुषोंका ज्ञान, रूप और विशेष शक्ति विराजित रहती है। धर्म-परिवर्त्तनसे उस अविनश्वर धारामें गड़बड़ी या diversion आजाती है। अवि-नश्वर शक्ति-धारासे आदमी विच्छिन्न हो पड़ता है। अनुभूतियाँ विच्छिन्न और दुर्बल होने लगती हैं। उन्नततर जीव-कोष दुर्बल और छिन्नतर हो जाता है। पितृ-रक्त धारासे विच्छिन्न और विभक्त हो जानेके कारण विश्वासघातकताका माद्दा बढ़ जाता है। आत्मिक विश्वास मर जाता है। साधनामें भी उन्नति नहीं हो पाती। अनुभूतियाँ विच्छिन्न होने लगती हैं। पितृ-रक्त-धारासे विच्छिन्न धर्मान्तरित व्यक्तिकी महामानवीय या ईश्वरीय-धारापर

आस्था नहीं रह जाती। इसलिये किसी अवतारने धर्म-परिवर्त्तन-की बात नहीं बतलाई। वरञ्च जीव-कोषके वैशिष्ट्यको—अविनश्वर पितृ-शक्ति-धाराको उन्नत करनेकी बात बतलाई है। इसलिये जो अपने पितृ-रक्त-धारासे convert हो गये हों, अपने धर्मसे विच्छिन्न हो गये हों,उन्हें अपनी पितृ-धारामें revert या लौट जाना चाहिये।

इस पुरुषोत्तम महातीर्थमें केवल धर्म-पिपासु व्यक्ति ही नहीं एकत्रित हुए। राष्ट्रीय-विधातागण भी एक-एक करके आने लगे। राजनीतिपर बातें करते समय ठाकुरने कहा : राजनीति है पूर्त्त-नीति-पूर्ण करनेकी नीति राजनीति कही जाती है—राजनीति धर्मका एक अंग है मात्र—बाहरी वस्तु नहीं। जो हमको जीवित रखे उसीको धर्म कहते हैं। जो राजनीति हमारे जीवन वा अस्तित्वका विनाश करती है, अभिवृद्धिको व्याहत करती है वह राजनीति कैसी ?'

हिन्दू-सभाकी ओरसे एन० सी० चैटर्जी साहबके साथ स्वर्गीय श्यामाप्रसाद मुखर्जी साहब भी एक दिन पहुँचे थे। अभी उन्होंने बंगाल प्रान्तीय हिन्दू महासभाके संगठनका कार्यारम्भ किया था। उनका विचार था सत्संग यदि हिन्दू-महासभाके साथ योग दे तो बंगालमें सभा बहुत शक्तिशाली आन्दोलन चला सकती है।

हिन्दू-सभाकी योजना सुनकर ठाकुरने कहा : हिन्दू किसे कहते हैं सर्वप्रथम यह निश्चय करें। हिन्दूका जो आचरण नहीं करता वह हिन्दू कैसा ? मुँहसे कहनेसे क्या कोई हिन्दू हो सकता है ? संज्ञाके साथ अनुष्ठेय आचार और धर्मका बन्धन ये दोनों चीजें न हों तो कोई प्रतिष्ठान, कोई आन्दोलन बलवान नहीं होता। तब कोई भी चालाक व्यक्ति धर्मके नामपर लोगोंको अपने मनके मुताबिक नचाने लगता है। मुसलमानोंकी बात ही लीजिये। रोजा-नमाज तो भाड़में गया। बस चली औरतको लटो—देव-

स्थानोंको भ्रष्ट करो। यही आज इसलाम-धर्म बन गया है। मुहम्मद साहबने क्या बतलाया, इसलाम क्या सिखलाता है इसे कोई नहीं बतलाता। इसके परिणामस्वरूप मुसलमानोंका जैसा नैतिक अधःपतन हो रहा है उसका फल एक दिन इसलाम धर्म-वालोंको भी भोगना पड़ेगा।

आप सचमुच यदि हिन्दुओंका कल्याण चाहते हों तो मूल प्रश्नकी दिशामें दृष्टि दें। ये मुसलमान कौन हैं? जिनके विरुद्ध सभा आन्दोलन करने जा रही है वे कहाँसे आये हैं? वे क्या बाहरसे आये हैं? ये क्या हिन्दू न थे? उनका स्थान क्या इन्हीं ग्रामोंमें नहीं? उनकी भाषा क्या अर्बी-फारसी है? उनके रक्त-कणमें क्या राम-कृष्णकी आभा नहीं झलकती? क्यों ये अपने पूर्वजोंकी रक्त-धारासे वंचित हुए हैं? यह सब किसने किया है? विदेशसे आनेवाले मुट्ठीभर मुसलमानोंने? इन सब विषयोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। जो अपने भाइयोंका गला टीपकर बहिष्कृत करता है उन पथोंको बन्द करें। प्रत्यागमनका मार्ग उन्मुक्त करें।

आप अल्प-संख्यकोंको बचानेके निमित्त आये हैं। हिन्दू जहाँ-जहाँ बहुसंख्यामें हैं वहाँसे ला ला कर उन्हें बसाइये। संख्या लघुको संख्या-बहुल बनाइये। हिन्दुओंके हाथमें खेत है, जमीन्दारी है और है अर्थबल। वे अपने आपको बचानेमें इनका प्रयोग करें। इस कामको भी करें तो समझियेगा कि आपने हिन्दुओंके बचाने-के लिये कुछ किया।

'लोग क्या अपना देश छोड़कर आवेंगे?'—श्यामाप्रसाद बाबू-ने पूछा।

"जैसे भी आ सकें वह कीजिये। अपनी सुख-सुविधाके लिये वे क्या कलकत्ता नहीं आते? सुख-सुविधा देने और अपना बनानेका भाव रहे तो क्यों न आवेंगे? इसके निमित्त आन्दोलन

कीजिये, प्रचार कीजिये"—उत्तरमें ठाकुरने कहा।

कुछ देरतक श्यामाप्रसाद बाबू सोचते रहे। उसके बाद बोले —'अच्छा, इस विषयपर फिर कभी बातें करूँगा।'

'हाँ जाएँ, इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करें। आत्मरक्षा कैसे होगी इसपर मनन करें। प्रश्न मान-मर्यादा और आत्मरक्षा-का है। पढ़े-लिखे और नेतागण धार्मिक गुण्डापन सिखाते हैं। जिनका सम्बन्ध धर्मके साथ बिलकुल ही नहीं वे ही साम्प्रदायि-कता फैला रहे हैं।

यह हिन्दू-मुसलमानका प्रश्न नहीं। प्रश्न है संख्यालघु और संख्या-गुरुका। इस गुरुत्वके आधारपर पाखण्डी नेतागण साम्प्र-दायिकताको फैला रहे हैं। संख्या गुरुका उत्तर संख्या गुरुत्व द्वारा ही दिया जा सकता है। ऐसा करनेपर भारतवर्षमें जातीय बोध उत्पन्न होगा। जातीय बोधका नवजागरण लाइये। जबतक यह गुरुत्व आप न ला सकेंगे असफल रहेंगे। नबाबी चालसे चलनेपर वह न होगा। आप अपने उद्देश्यमें सच्चे हों तो तुरत लग पड़ें।'

इस प्रश्नके समाधानके लिए ठाकुरने दो बातोंका सुझाव भी रखा था। एक था अन्तरप्रान्तीय विवाह-सम्बन्ध और दूसरा था ऋषि-यज्ञ। वैवाहिक रक्त-सम्बन्धसे सबमें ममत्वबोध आता और ऋषि-यज्ञ करके प्रत्येक हिन्दू एक-दूसरेकी रक्षा कर पाते। आर्य-जाति यही करती थी। ऋषि-यज्ञ द्वारा पाँच प्राणीकी रक्षा होती। प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक हिन्दूके लिए रहता। कहीं कोई हिन्दू शरणार्थी बनकर मरने न पाता।

ठाकुरकी दृष्टि कितनी सुदूरप्रसारी होती है इस बातको उनके सान्निध्य और सम्पर्कमें रहनेवाले खूब अच्छी तरह जानते हैं। अपने शिष्योंसे आप कहा करते हैं कि 'मैं जो आज कहता हूँ उसका फल दस वर्ष बाद पाइयेगा। फलका बुरा-भला होना आपलोगोंके प्रयत्नपर निर्भर करता है। आपलोग विद्या-बुद्धिवाले

हैं। बुद्धि द्वारा किसी सिद्धान्तपर पहुँचते हैं और मैं हूँ परमपिताकी अबोध सन्तान। दया करके जो बात वह कहवाना चाहते हैं मैं वही कहता हूँ। इसमें विचार-बुद्धिका स्थान नहीं। जो देखता और सुनता हूँ वही कहता हूँ ? मेरे कथनके अनुसार आप यदि ठीक-ठीक करें तो उसका सुफल दस वर्ष बाद पावेंगे।

यही क्या ईश्वरीय शब्दश्रवण हैं, शुद्ध, निष्पाप, पवित्र अन्त:करणमें स्वत: प्रकाशित होनेवाला यही ईश्वरीय प्रत्यादेश है ?

उस दिन यह कौन जानता था कि इस संख्यालघुताके प्रश्नपर ऋषियोंकी पवित्र भूमि, पुरुषोत्तमका लीला-धाम भारतवर्षका अंग कृश, श्री विवर्ण और विच्छिन्न हो जायगा ? कौन जानता था कि आर्यावर्त्तकी पवित्र यज्ञ-भूमि, तीर्थ, मन्दिर और सांस्कृतिक चिह्न मिट जायेंगे, छिन जायेंगे और पददलित होंगे ? स्वदेशी आन्दोलन-युगके बलिदानी वीरोंके हाथोंका बाँधा हुआ रक्षा-बन्धन अपने भाइयोंके हाथों छिन्न-विच्छिन्न होगा। हिन्दू-मुसलमान दोनों एक शासनमें रहते आये थे। हिन्दू शासकके अधीन मुसलमान और मुसलमान शासकके अधीन हिन्दू। किन्तु देश-विभाजनके प्रथम वे थे निर्भय और नि:शंक—एकदूसरेपर विश्वास करते थे। किन्तु इस विश्वास, भ्रातृ-भाव और रक्त-सम्बन्धको विस्मृत करनेके निमित्त विदेशके आनेवाले मुसलमान और अन्यान्य जातिंयोंने बहुत प्रयत्न किया। फिर भी सम्बन्ध अच्छा था।

किन्तु जबसे भारतीय नेताओंने बिदेशी राजनैतिक भावधारा और वादोंका अन्धानुसरण करना आरम्भ किया तबसे धर्मके नामपर, भाषाके नामपर, ऊंच-नीचके नामपर, पिछली-अगली के नामपर, जाति-जातिके नामपर विभेद, अविश्वास, अप्रेम, घृणाका भाव वे जगाते गये। इसका फल भोग रहे हैं अल्प संख्यावाले। उनका तो जीवन ही विपन्न हो गया है। उस दिन

ठाकुरकी बातोंको श्यामाप्रसाद बाबूने सुना होता, अन्यान्य प्रान्तों के संख्यागुरुओंने यदि संख्यालघुके स्थानोंको भरा होता तो भारतीय इतिहासकी धारा आज दूसरी ही होती। संख्यालघुकी रक्षा करनेके आन्दोलनसे जो नव-जागरण आता उसमें एक जातीय भाव उत्पन्न होता। रक्तका सम्बन्ध निर्मित होता और उस बन्धनमें बंधकर पिछड़े, बिछड़े और बहिष्कृत ऐक्यके सूत्रमें बँध जाते। इसके फल-स्वरूप एक ऐसे अभेद, अजेय और दुर्लभ्य राष्ट्रका निर्माण होता जिसमें दरार बनाकर घुसना किसीके निमित्त असम्भव हो जाता।

ठाकुरकी सुदूरप्रसारी दृष्टिका उज्ज्वल दृष्टान्त सन् उन्नीस सौ एकतालीसमें प्रत्यक्ष रूपमें देखनेको मिला। उसके दो साल प्रथम आश्रममें ऋत्विक अधिवेशन हो रहा था। ऐसे अधिवेशनमें कभी ठाकुर स्वयं नहीं जाते। किन्तु उस बार अकस्मात् अधिवेशनकी खुली बैठकमें आप आ उपस्थित हुए। उनकी आँख और मुखपर व्याकुलता और चञ्चलताके लक्षण दीख रहे थे। कार्यकर्त्ताओंको सम्बोधन करते हुए बोले—"आप लोग ग्राम-ग्राममें जाकर जनतासे कहें कि एक ऐसा समय आ रहा है जब एक मुट्ठी रुपयेके बदले मुट्ठीभर अन्न न मिलेगा। इसलिये लोग जेवर बेचकर भी खेत और अन्नका प्रबन्ध करें। जमीन खरीदें, नाज पैदा करें और धानको जमा करें। भयानक दुर्दिन सरपर मंडला रहा है, शाखाकेन्द्रमें जाकर आप जनताको होशियार करनेमें लग जायँ। जो कार्यकर्ता मेरी बातोंपर आस्था रखते हों वे इसमें विलम्ब न करेंगे ऐसी मैं आशा रखता हूँ।"

इस निर्देशके समय चावलका दर दस रुपये मन था। सस्तीका जमाना था। ठाकुरके निर्देशको कार्यकर्त्ताओंने अतिशयोक्ति और अति-सावधानता माना। बहुत कम ही लोगोंने निर्देशानुसार कार्य सम्पादन किया।

किन्तु उन्नीस सौ एकतालिसमें महर्घताका विकराल रूप जब मुख बाये सरपर आ पहुँचा उस समय लोगोंके हाड़-हाड़ने उस भविष्य वाणीके मर्मको समझा। एक कौर भातके अभावमें लोग कुत्ते और बिल्लीकी नाईं जब मरने लगे तब लोगोंने अन्तर्दृष्टा-की महत्ताको समझा।

दूसरा दृष्टान्त बर्मासे सम्बन्ध रखता है। ठाकुरके पचासों हजारके लगभग शिष्य रहते हैं वहाँ। आजकल तो बर्मी लोग भी शिष्य हो गये हैं। जापानकी बमबाजी आरम्भ करनेके एक साल प्रथम शिष्योंको भारत वापस चले आनेका तार जाने लगा। भय-का कोई कारण न था। खेती-बारी, रोजी-रोजगारकी लालचमें अधिकतर शिष्य न आ सके। उनको इसका फल भोगना पड़ा बमबाजीके जमानामें। अन्तमें कोहिमा और इम्फालके पहाड़-जंगल होकर सर्वहारकी भाँति बहुतोंको भागना पड़ा। जो भागने-में असमर्थ रहे उनके साथ विचित्र घटना संगठित होने लगी। भुक्त-भोगी शिष्यगण अपने दुःसह दुःख-कष्टकी कहानी आज भी सुनाते रहते हैं।

ठाकुरकी अपार कारुणिक शक्तिने कैसे-कैसे उनको बचाया था इसका वर्णन करते हुए बर्माप्रवासी शिष्योंको रोमांच हो जाता है। श्री योगेश मुखर्जी, बी. ए. बी. एल. की कहानी सिर्फ यहाँ दी जाती है। आप बर्माके प्रसिद्ध वकील थे। अन्यान्य शिष्योंकी भाँति आर्थिक लोभवश आप भी बर्मामें बाल-बच्चोंके साथ रह गये। जापानियोंकी रंगूनपर बमबाजी आरम्भ करनेका तीन दिन प्रथम उनकी स्त्रीने स्वप्न देखा कि ठाकुरकी माता मनमोहिनीदेवी कह रही हैं—'इस घरको छोड़कर हट जाओ, अन्यथा भयानक विपत्तिमें पड़ोगी।'

वकील साहबके आनेपर उन्होंने स्वप्नका सविस्तर वर्णन किया और दूसरा मकान ठीक करनेपर जोर देने लगीं। उधर

गोलाबाजीके कारण शहरसे लोग भाग गये थे। अंग्रेज, मद्रासके बैंकर और भारतीय धर्म-प्रचारिणी संस्थाओंके कार्यकर्त्ता सब पहले ही खिसक चुके थे। चतुर्दिक अराजकता छाई थी। चोर-डाकू दल बाँधकर सूने मकानोंमें लूट-पाट कर रहे थे। मकान-मालिकोंका कहीं पता न था। स्त्रीको ढाढ़स देते हुए उन्होंने कहा—"स्वप्न नहीं भ्रम है तुम्हारा। अधिक दुश्चिन्तामें पड़ी रहनेके कारण तुमने यह स्वप्न देखा है। कहाँ पाबना और कहाँ रंगून और आकर जननी मनमोहिनी देवीनें स्वप्नादेश दिया है!"

ढाढ़स बँधानेके उद्देश्यसे ही उन्होंने ये बातें कहीं थी। इसके बाद आप जनसमागमपूर्ण मुहल्लेमें मकानकी खोज करने निकले। दूसरे दिन भोजनके उपरान्त जब आपकी स्त्री लेटीं तो देखती हैं स्वयं ठाकुर उपस्थित हैं और मुट्ठीमें मिट्टी लेकर हवामें छीटते हुए कहते हैं—'देख, जिस प्रकारसे मिट्टीका यह कण हवामें उड़ रहा है ठीक यही अवस्था कल तुम्हारे इस मकानकी हो जायगी। भला चाहती हो तो बाल-बच्चोंके साथ सूर्योदयके प्रथम यह गृह त्याग दे।'

संध्या समय पतिदेवताके लौटनेपर स्त्रीनें जब जाग्रत प्रत्यादेशकी बात सुनाई तो वे स्तम्भित रह गये। एक मकान खाली तो मिला था किन्तु उसमें रहनेंके लिये नगद चार आना रोज देना था। उस समय रंगूनकी ऐसी ही अवस्था थी। किसके मकानका कौन मकान-मालिक बना है इसका भी कोई ठीक-ठिकाना न था। इसके अतिरिक्त कौन किरायेदार कब भाग जायगा इसका भी ठीक न था। सबेरा होते ही घर छोड़कर योगेनबाबू नये मकानमें चले आये और चवन्नी देकर रहने लगे। इसके चन्द घण्टे बाद ही जापानी बौम्बरोंने गोला बरसाना आरम्भ किया। कानमें उँगली लगाये लोग थर-थर काँप रहे थे। उस दिनकी गोलाबारीमें छोड़े

हुए मकान और उसके अगल-बगलवाले बीसों मकानोंका पता न रहा।

इसके कुछ ही दिनके उपरान्त जापानी फौजने रंगून दखल कर लिया। फौजी कानून लागू हो गया। रातमें निकलना कठिन हो गया। तीसरे दिन इस नये मकानके चतुर्दिकके रहनेवाले सबके सब भाग गये। चवन्नी लेनेवाले मकान-मालिकका भी पता न लगा। भयत्रस्त योगेन बाबू दूसरे मकानकी खोजमें निकले। इसी बीच जापानी मिलिटरीवालोंने उनको पकड़कर अपना ब्रोडकास्टिंग औफसर बना दिया। बंगला, अंग्रेजी और हिन्दी पत्र-पत्रिका और आकाशवाणी सुनानेको आप बाध्य हुए। किन्तु इस फौजी अधिकारके बलपर इन्होंने 'बौण्डरी रोड' स्थित दू-मंजिला स्कूल बिल्डिंग पा लिया और उसकी दूसरी मंजिलपर बाल-बच्चोंके साथ रहने लगे।

रातमें सोनेके उपरान्त ज्ञात होने लगा मानों निचले तल्लेकी कोठरियोंमें कुर्सी-बेंच पटके जा रहे हैं और किसी चीजसे किवाड़ और छड़ोंको तोड़ा जा रहा है। मार्शल लॉके कारण किसीको पुकारा भी न जा सकता था। अन्तमें डिबिया जलाकर जब ये नीचे कोठरियोंको देखने लगे तो सब कुछ ठीक ही पाया। कुर्सी टेबुल सब यथास्थान रखे थे, कहीं कोई गड़बड़ी नहीं। ऊपर फिरकर जैसे ही पहुँचे फिर वही धमा-चौकड़ी और धराम-धुड़ूम-की आवाज आने लगी। ज्ञात हो रहा था मानों पचासों चोर-डाकू लूट-पाट कर रहे हों। बेचारे योगेन बाबू स्त्री-बच्चोंके साथ रातभर काँपते रहे।

सबेरा होनेपर मुहल्लेवाले हिन्दुस्तानी प्रवासी भाइयोंसे पता चला कि वह मकान भूतोंका अड्डा है। अब दूसरे चिन्तामें पड़े योगेन बाबू। इस मुहल्लेमें तो कुछ आदमी भी थे, दूसरे मुहल्ले तो जन-शून्य हो गये थे।

घर पहुँचकर उन्होंने ठाकुरपूजा करनेकी ठानी। पानी भर-कर अपने हाथों निचले सब क्लासोंको धोया और ठाकुरका फोटो प्रत्येक क्लासमें टाँगकर धूप-दीप दिखाया। उसी रातसे भूतोंका उपद्रव बन्द हो गया। मुहल्लेवाले भी आश्चर्यमें पड़ गये।

उधर बर्मामें रहनेवाले ठाकुरके शिष्योंने भी स्वप्नादेश सुनना आरम्भ किया। 'योगेनबाबूके यहाँ चले जाओ'—का आदेश भी कितनोंको मिला। एक-एक करके विभिन्न जगहोंसे साठ-सत्तर आदमी एकत्रित हो गये। निचला तल्ला उनका आवास-स्थल बन गया। मोटर रखनेके लिये जो बड़ा-सा हौल था वह लंगरखानामें परिणत हो गया। सब कोई सम्मिलित रूपसे एक साथ भोजन करने लगे। योगेनबाबूकी स्त्री और पुत्रियाँ पाक-कार्य करने लगीं।

फौजी अफसर होनेके कारण आपका बहुत मान था। गुरु-भाइयोंको आप काम दिलाते गये। अन्न-पानी बहुत सस्ता था और आमदनी ज्यादा। अब चला ताण्डव-कीर्त्तन और प्रसाद-वितरण। इसका प्रभाव वहाँके प्रवासी भारतीयोंपर ही नहीं बर्मी लोगोंपर भी खूब पड़ा। कारण, उस समय सत्संगके अतिरिक्त रंगून शहरमें कोई भी धार्मिक संस्था न थी जो ईश्वरका नाम या धर्म-प्रचार करती हो।

उस युगमें ठाकुरके शिष्य अपने नित्य जीवनमें कुछ ऐसी आश्चर्यजनक घटनाओंको प्रत्यक्ष होते देख रहे थे जिससे वे अपनी जीवन-रक्षाके प्रति निर्भय हो गये थे। कभी कोई पाय-खाना-पेशाब करने बैठता तो देखता कि उसके पैरमें चलनेकी शक्ति नहीं। एक अज्ञात शक्ति पैरको ऐसा दबाये बैठी है जिससे हिलना भी कठिन। इसी बीच गोला गिरना आरम्भ हो जाता। खतरा जब शेष होता तब पैर छुटता। घरकी ओर फिरते तो देखते रास्तेका पता नहीं, चतुर्दिक गढ़ा है और दरारें पड़ी हैं। इस नित्य-नैमित्तिक अलौकिक शक्तिको देखकर उन्हें पूर्ण विश्वास

हो गया कि वे मर नहीं सकतै। ठाकुर सर्वदा पीठपर मौजूद हैं। आगे पीछे गोला गिरता रहता और ये लोग बेपरवाह रास्ता चलते रहते।

यह क्रम सुभाषबाबूकी आजाद-हिन्द सरकारके युगतक चलता रहा। उस सरकारके जमानेमें भी योगेनबाबू ब्रॉडकास्टिंग ऑफिसर थे। आप अभीतक सपत्निक जीवित हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि आप हरदम, प्रत्येक बातकी भविष्यवाणी ही करते रहते हों और इस प्रकार शिष्योंको संग्राम-विमुख कायर बनाते हों। ऐसी बात आप नहीं करते, उल्टे उन्हें योद्धा बनाते हैं। भविष्यवाणी करके उन्होंने पूर्ण परीक्षा भी कर ली है। भविष्य विषयक चेतावनी सुनकर भी लोग उस काममें प्रवृत्त होते हैं। कुछपर तो साढ़ेसाती सवार होकर गुरु-आज्ञा उल्लंघनका भी दोष करा लेती है और कुछमें आनेवाली विपदाकी परीक्षाका भाव जग जाता है। देश-बन्धु दासकी बात तो जाने ही दी जाय। किन्तु मैंमनसिंह जिलाके मुक्तागाछा राजके राज्याधिकारी यतीन्द्रमोहनराय चौधरी, श्यामाचरण मुखोपाध्याय, एम० एस०-सी०, दुर्गाचरण सरकार और गोपालबाबूकी बात ही न ली जाय। यतीन्द्रबाबूसे रातभर आश्रममें ठहरे रहनेकी अनुनय-विनय ठाकुर करते रहे, किन्तु वह न माने। टैक्सीपर चढ़नेके प्रथम हुक्केका पता लिखवानेके नामपर अटकाना चाहा, किन्तु उन्होंने एक न सुनी और आश्रमसे कुछ दूर जाते न जाते खजूरके पेड़में टकरा जानेके कारण तत्क्षणात जाते रहे। इसी प्रकार ठाकुरकी आज्ञा और अनुरोध अमान्यकर श्यामाचरण शुखर्जीने चार अगस्त उन्नीस सौ चालीसके रविवारके दिन मझदिया रेल ऐक्सिडेण्टमें प्राण गँवाया और शेष व्यक्तियोंने भेड़ा-माड़ा रेल ऐक्सिडेण्टमें कटकर जान दी। आज्ञा अमान्य करके चले जानेके उपरान्त जो वेदना और चिन्ता ठाकुरको होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

किसीके भविष्यमें तात्कालिक अमंगल दीख पड़ता हो और वह यदि उनके निकटसे जानेकी अनुमति माँगता हो उस समय आपकी चिन्ताकी सीमा नहीं रहती। बहुत मधुर शब्दोंमें कहते हैं 'आजभर रह जाइये, आपसे तो अभी प्राण खोलकर बातें भी न कर सका।' कभी-कभी तो 'आपका पैर पकड़ता हूँ, आजभर रह जाइये'—यह कहते भी सुना जाता है। कुछ दिन रोकनेकी आवश्यकता हो तो नाना प्रकारका भय और आशंका दिखाकर भी रोकनेकी चेष्टा करते हैं। कभी यात्रा देखनेके नामपर अँटकाते हैं तो कभी टीप्पन दिखलानेके नामपर रोकते हैं। पं० चंद्रेश्वर राय शर्माको तो आपने कालके राजमें न जाने दूँगा कहकर लगभग एक साल तक अपने निकटसे बाहर जाने न दिया।

एक अविवाहिता कुमारीको सन्तान हो गयी। माता-पिता चिन्तामें अधमरे हो गये। हिन्दू समाजका लौह-दण्ड उस परिवारको पीसनेको तैयार हो गया। पुत्रीको घरमें रखा न जा सकता था। करें तो क्या करें? लड़की या तो वेश्या बने या विधर्मी। धर्ममें रक्षा करनेकी शक्ति न देख वे सर्वधर्मसार ठाकुरके श्रीचरणोंमें आ गिरे! 'ठाकुर रक्षा करो'—कहकर रुदन करने लगे। सब सुनकर आपनें कहा—'इससे क्या, वह आजसे मेरी बेटी है। जाओ तुम लोग निश्चिन्त रहो।'

ठाकुरके श्रीचरणोंमें छोड़कर माता-पिता निश्चिन्त हुए। किन्तु ठाकुरने उसको अपनी बेटी-पतोहूके साथ रखा। कपड़ा, अलंकार और प्रसाधनोंसे तोप दिया। पुत्रीके समान आदर और यत्न करते रहे। सब किया, इसीके साथ उसकी भावोन्मत्तता और प्रवृत्ति-नियन्त्रणकी दिशामें जागरूक पहरेदारी करते रहे। जब वह शनैः-शनैः अपने आपपर नियन्त्रण करनेमें समर्थ हुई तब जाकर निश्चिन्त हुए।

अन्यान्य बातोंको छोड़कर हिमाईतपुर वाले सत्सङ्ग आश्रम-

की ही बात न लें। जिसके बनानेमें करोड़ों रुपया व्यय हुआ था, हजारों आदमियोंने परिश्रम करके तैयार किया था। तीस वर्षतक खटते हुए जो-जो प्रतिष्ठान कार्यालय और विज्ञानशाला तैयार की थी उसको छोड़नेकी जब आवश्यकता हुई पलभरमें छोड़छाड़कर चले आये। कभी किसीने अनुमान भी न किया था कि एक दिन इतना बड़ा प्रतिष्ठान छोड़कर जाना पड़ेगा। अभी कालेज बिल्डिंग बन ही रही थी। तपोवन हाई स्कूल और मातृ-विद्यालयकी पढ़ाई चल ही रही थी। केमिकल वर्क्स, सत्संगका बृहत्तर प्रेस, इञ्जीनियरिङ्ग वर्क्स, लेदर वर्क्स, स्यूबेल कारखाना, गंजीका कारखाना, फिलौन्थ्रफी आदि विभिन्न कार्यालय और प्रतिष्ठान जोरोंके साथ चल रहे थे। इसी बीच ठाकुरने एक दिन हठात् देवघर जानेकी इच्छा प्रदर्शित की और दूसरे दिन यथासमय रवाना हो गये। उनके रवाना होनेके उपरान्त कुछ भक्तगण और आत्मीय स्वजन सूटकेस और बिछावन लेकर दौड़े। अवशेष लोग मुँह देखते रहे। एक दिन पहले तक किसीको खबर न थी। किन्तु हटनेका जब मुहूर्त्त आया आप झट गाड़ीपर जा बैठे। द्विधाहीन चित्तसे चले आये, पीछे क्या छोड़ना पड़ा है इसके प्रति कभी भ्रूक्षेप भी न किया।

ठीक ऐसी ही घटना राजा जनकके युगमें मिथिलामें घटी थी। मिथिलाकी राजधानी जल रही थी। सर्वत्र हाहाकार मचा था। किन्तु उसका प्रभाव राजा जनकपर तनिक भी न था। सारा नगर जलकर खाक हो गया, आपका महल तक न बचा। सर्वत्र परित्राहि मची हुई है। किन्तु आपमें किसी प्रकारकी चंचलता नहीं दीख पड़ती। इसका क्या कारण है?—किसीने प्रश्न किया।

प्रशान्त चित्तसे राजा जनकने उत्तर दिया—'मिथिलायां प्रनष्टायां न मे नश्यन्ति किञ्चिन।' राजधानी तो राजधानी, समस्त मिथिला भी यदि नष्ट हो जाय तो मेरा कुछ भी नहीं आता जाता।

सांसारिक समस्त सम्पत्ति विलुप्त हो सकती है, किन्तु चारित्रिक सम्पदशालीको क्षुण्ण बनानेकी शक्ति किसमें है ? अग्नि सब कुछको तो क्षार-खार कर सकती है, किन्तु पावक पुरुषकी छायाके निकट भी नहीं जा सकती । जिसमें चारित्रिक सम्पद हो वह मरुभूमिमें अट्टालिका खड़ा करता है । अरण्यमें जनपदका निर्माण करता है । राष्ट्रीय विनाश तक उसकी महिमामें विपर्य्यय नहीं ला पाता । वह तो राष्ट्रीय-व्यक्तित्व बन जाता है, स राटः भवति ।

भारतीय इतिहासकी सबसे बड़ी समस्या इस समय शरणार्थी समस्या है । करोड़ों आदमी भारतमें आज शरणप्राप्तिके पीछे मारे फिर रहे हैं । उन्हीं शरणार्थियोंके सहयात्री बन गये आप । वैद्यनाथ भगवान्के पुनीत चरणोंमें आकर आपने शरण लिया । सर्वस्वहीन विताड़ित शरणार्थियोंके युगधर्मके साथ निबिड़ योग-सूत्र संस्थापित कर गुरुमहिमाको उज्ज्वलतर बना दिया ।

श्यामाप्रसाद मुखर्जी और अन्यान्य नेता सीट पाने और पैक्ट करनेमें व्यस्त रहे । यह पैक्ट जैसे-जैसे लोग करते गये वैसे-वैसे साम्प्रदायिकताकी अग्नि प्रचण्ड रुप धारण करती गयी । संख्यालघुजातिके हिमायती जातीय समस्याको समझनेमें असमर्थ रहे । धर्माचार्य और धर्मगुरु लोगोंने भी जातिका पथप्रदर्शन न किया । उलटे जातिको ईश्वरके नामपर छोड़कर स्वयं निष्क्रिय बने रहे । किन्तु ठाकुर चुप न रह सके । उन्होंने अकेले ही प्रयत्न आरम्भ किया । बंगालके कतिपय संख्याबहुल जिलोंसे और बिहारके छपरा जिलेसे आदमियोंको बुला-बुलाकर बसाने लगे । स्थानीय जमींदारों को भी वैसा ही करनेका सुझाव देना आरम्भ किया । आठ-आठ मीलपर धर्म-गोलाके नामपर नाज-भण्डारको बढ़ानेकी योजना प्रदान की । इसीके साथ मोटर ट्रांसपोर्ट कम्पनी खोलनेका सुझाव रखा । यह सब इसी उद्देश्यसे किया जा रहा था कि अवसर

आनेपर यातायात, भोजन और मनुष्यबलके अभावमें जातीय मान-सम्मान और रक्त विनष्ट न होने पावे। इसीके साथ-साथ कृष्टिप्रहरी और स्वस्ति-वाहिनी बनानेका भी निर्देश दिया।

इसके उपरान्त उन्होंने तीन ग्रामोंमें बाहरसे लोगोंको बुलाकर बसाया। अन्यान्य जमींदार और बङ्गालके नेताओंके सम्मुख उन्होंने सक्रिय प्रदर्शन किया। यह कोई उनका अपना व्यक्तिगत प्रश्न तो था नहीं। इसलिये आदमी भेज-भेजकर जमींदारों और राष्ट्रीय नेताओंको बङ्गालमें फैल जानेकी योजना और परिकल्पना बताई। सबसे काममें सहयोग करनेकी प्रार्थना की, किन्तु किसीने भी न सुना। हिन्दू जातिमेंसे जातीय भाव मर चुका था। वह क्षुद्र भावोंमें खण्ड-विखण्ड हो चुकी थी। जातीय रक्षाका भाव उसमें आवे तो कैसे ?

ठाकुरके इस कार्य्यमें बाधा उत्पन्न की स्थानीय जमीन्दारों और राष्ट्रीय नेताओंने। उनकी दृष्टिमें ठाकुरका व्यक्तित्व और शक्ति बढ़नेका भय उत्पन्न हुआ। नेताओंमें अपना राष्ट्रीय नेतृत्व निकल जानेका डर हुआ।

दोनोंने सम्मिलित रूपसे मिलकर विरोध आरम्भ किया। विरोध तो विरोध, उन्होंने मुसलमानोंको भी उभाड़ना शुरू किया। उनके सामने मुसलमान धर्मके विनाशका चित्र खींचने लगे। राष्ट्रीयताके नामपर नेताओंने राष्ट्रीय विनाशका भयावह चित्र दिखलाना आरम्भ किया। आश्चर्य यह कि यह दोनोंके दोनों हिन्दू ही थे। विरोधाग्नि भड़काई गई। नवागत हिन्दुओंकी झोपड़ियाँ मुसलमानोंके हाथ फुँकवा दी गईं। हत्याका भय दिखाया जाने लगा। इतनेपर भी जब वे न हटे तो खून करके आतंकित किया गया। खुले बाजारमें एक आदमीको लाठी-भालासे मार डाला गया और एक युवककी हत्या आश्रममें घुसकर की गई। गवाहोंका घर फूँका गया, एस. डी. ओ. के सरे इजलासमें पीटा

गया। जीवन संकटमय बन गया उनका। रास्ता चलना असम्भव हो गया। किसीमें गवाही देनेकी हिम्मत न रही।

इसीके साथ आरम्भ हुआ पत्र-पत्रिकाओं द्वारा निर्मम आघात। पत्र-पत्रिकाओंने ठाकुरको जनताके सन्मुख नीचा दिखाना आरम्भ किया। आनन्द-बाजारने मोटे शीर्षकमें 'ठाकुर गिरफ्तार' छापा। 'शनिवारेर चिठ्ठी'ने आपको व्यभिचारी, लम्पट आदि रूपोंमें चित्रण करना आरम्भ किया। बीभत्स और घृण्य रूपमें आपको जनताके सम्मुख रखा जाने लगा।

इस प्रकार सम्पत्तिशाली हिन्दू जमींदार और राष्ट्रीय हिन्दू नेताओंने मिलकर हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दुस्तानकी रक्षा की योजनाओंको सम्मिलित रूपसे विनष्ट किया। आश्रम किंवा ठाकुरकी ओरसे उनकी बुराई या क्षति पहुँचानेका कभी प्रयत्न न किया गया। ठाकुरके उस प्रशान्त रूपको देखकर शिष्य-गण मन मसोसकर रह जाते। उनको विक्षुब्ध होते देख ठाकुर समझाते—'देखो, पत्र-पत्रिकाओंने गाली-गलौज और निन्दा करके मेरा जितना प्रचार किया है, उतना तुम सब मिलकर भी कभी न कर सकते।'

बिना पैसाके ठाकुर अपने कुछ शिष्योंके साथ देवधर चले आये। यहाँ आनेके छः महीने बाद रेलका भाड़ा कम्पनीको भेजा गया। आनेमें सुविधा प्रदान करनेके निमित्त रेलवे कम्पनीके अंग्रेज अधिकारियोंने स्पेशल ट्रेनकी व्यवस्था कर दी।

देवघरमें आकर शहरके बाहर एक झाड़-जंगल परिपूर्ण बँगलेमें डेरा गिराया। उस मार्गसे सूर्यास्तके उपरान्त कोई यातायात न करता था।

किन्तु यहाँ आकर आप अन्यान्य शरणार्थियोंकी भाँति हताश होकर पड़ न गये। कष्ट, उपवास और घोरतर कठिनाइयोंमें भी अविचल रहे। न सरकारका बोझ बने और न जनतासे शरणा-

र्थियोंके नामपर भिक्षा माँगी। ऋषिकुल और ऋषियज्ञकी जो पद्धति उन्होंने प्रचारित की थी उसीके आधारपर धीरे-धीरे खड़े हो गये। बिहारमें भी आर्य धर्मका विस्तार करना आरम्भ किया। मुजफ्फरपुरमें वहाँके सेण्ट्रल मेडिकल हालके अधिकारी श्री योतीन्द्रनाथ मुखर्जीने आमगोला मुहल्लेमें सत्संग आश्रम बना रखा था। उनके परिश्रम, त्याग और बलिदानपर निर्मित वह आश्रम उत्तरी बिहारके कार्य-विस्तारका केन्द्रस्थल बना।

उस आश्रमसे बिहार भूकम्पकालमें श्री योगेशचन्द्र चक्रवर्त्ती बी०ए०के तत्वावधानमें भी सत्संगकी ओरसे रिलीफ पहुँचाई गई थी। तद्विषयक वहाँसे एक पत्रिका भी निकलती थी।

उत्तरी बिहारमें कार्यारम्भ हुआ। आसामके काछार जिलेके त्यागी और कर्मठ भक्त श्री सुधीररंजन चौधरी बी० ए० और समस्तीपुरके श्री शैलेशनाथ बैनर्जी बी० एल० ने संयुक्त रूपसे उस आश्रमको केन्द्र बनाकर कार्यारम्भ किया। इनके प्रयत्नसे तिरहुत एकेडेमीके हेडमास्टर और अन्यान्य शिक्षकोंके साथ बहुतसे तरुण विद्यार्थियोंने दीक्षा ली।

हरिनन्दन बाबु दरभंगा जिलेके धुरलक ग्रामके प्रसिद्ध कायस्थवंशीय सन्तान है। किन्तु जातीय अवगुणके रूपमें शराब, कबाब और उसके आनुषंगिक उपसर्गसे परिपूर्ण थे। उनसे छूटनेकी शक्ति आपमें न थी। मन्दिरके पीछेवाली दीवारके नीचे नित्य खस्सी जबह होता। बिना गोश्तके एक कौर गलेके नीचे आप उतार न सकते थे। प्याला और सिगरेट भी वैसा ही धुँआधार चलता। आपने उमाशंकर चरण बी० ए० बी० एल० के कथनपर अनिच्छापूर्वक दीक्षा ले ली। किन्तु उसके फलस्वरूप धीरे-धीरे इन सब अवगुणोंके प्रति वितृष्णा आने लगी। इसका स्थानीय शिक्षक और विद्यार्थियोंपर बहुत प्रभाव पड़ा। सबसे बड़ा प्रभाव लोगोंपर उनके उन्मुक्त पाप स्वीकारका पड़ा था। लोग जहाँपर

अपने दोषको पर्देकी आड़में छिपानेका प्रयत्न करते हैं वहाँपर आपने घरके दर्वाजेके सामने शराबके खाली बोतलोंको सजाकर रख छोड़ा था। ठाकुरसे मन्त्र लेकर आपको क्या लाभ हुआ ?— यह प्रश्न जब कोई करता आप उन बोतलोंको दिखाते हुए पञ्चम-कारसे मुक्ति पानेकी बात कहते।

आपहीके प्रयत्नसे आये श्री बैकुण्ठप्रसाद सिंह बी० ए० बी० एल०। आप मसनोडी अबरक खानके अधिपति और प्रसिद्ध जमींदार हैं। मोटर-सोटरके अतिरिक्त आपकी ओरसे ग्रामके भीतर विद्युत्प्रकाश मुफ्त दिया जाता है। एक-एक यज्ञमें लाखों रुपया खर्च होता है।

जिस समय आप दीक्षा लेनेके निमित्त पहुँचे उसके कुछ दिन प्रथम आप लकवाके शिकार हो गये थे। बहुत दवा-दारू हुई किन्तु लाभ न हुआ।

वही बैकुण्ठबाबू देवघर आये। जिस समय आपने हरिनन्दन बाबूका पता पूछना आरम्भ किया उनके मुँहसे साफ बोली न निकलती थी। स्वरशक्ति विलुप्त, मुँह टेढ़ा और रक्तहीन हो गया था। पाँच मिनटतक पूछते रहनेके बाद तब कहीं समझ पाया कि आप हरिनन्दन बाबूकी खोज कर रहे हैं।

उन्होंने दीक्षा ली। दीक्षा लेनेके उपरान्त ठाकुरके निकट गुरु प्रणामी चढ़ाने गये। स्नायुगत रोग होनेके कारण झुकनेमें कष्ट हो रहा था। किसी-किसी तौरपर प्रणाम करके जैसे ही आप उठे एक झटकेके साथ मुख सीधा हो गया। ज्ञात हुआ बिजलीके समान किसी अज्ञात शक्तिने शरीरके तार-तारको झंकृत कर दिया है। उसके बाद लिखकर बातें करनेकी आवश्यकता न रही, मुखसे बातें निकलने लगीं। यह सतरह एप्रिल उन्नीस सौ इक्का-वनकी बात है।

वहाँसे आप सानन्द घर लौटे और निष्ठापूर्वक साधन-भजनमें

मनोयोग दिया। उनको रोगमुक्त देख परिवारवालोंको भी आनन्द हुआ। आपकी स्त्रीके आनन्द और खुशीका तो ठिकाना न रहा। तेइस एप्रिलके दिन पति-पत्नी घर ही में थे। बैकुण्ठबाबू चित्त सोये थे और आपकी धर्मपत्नी कुछ दूरपर बैठी हुई थीं। हठात् आपका शरीर ऊपर शून्यकी दिशामें उठने लगा। पृथ्वीसे शरीरको ऊपरकी ओर उठते देख उनके स्त्रीके मनमें आशंका हुई। कहीं आकाशमें न उड़ जायँ इस भयसे ऊर्ध्वगामी शरीरको पकड़नेके निमित्त आप बढ़ीं। उधर डेढ़ हाथ ऊपर उठते न उठते बैकुण्ठ बाबूके सर्वांगमें विद्युत्प्रवाह बहता-सा ज्ञात हुआ। मारे भयके आपने आँख खोल दी। उसीके साथ-साथ शरीर पृथ्वीपर आ गया।

गुरुशक्ति और कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले बड़भागी बैकुण्ठ-बाबूपर इन सब बातोंका क्या प्रभाव पड़ा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है। तबसे आप सपरिवार देवघर ही आ गये हैं। इस प्रकार माँ सीताकी पुनीत भूमि मिथिलासे उत्तरी बिहारमें ठाकुर-प्रदर्शित आर्यधर्मका विस्तार होने लगा। इस समय तो बीसों कार्यकर्त्ता प्रचारमें लगे हुए हैं। पुर्णिया जिलामें श्री दशरथसिंह और गोबर्द्धन बाबू काम कर रहे हैं तो मुजफ्फरपुरमें गोपेन्द्रनारायण आदि बीसों ग्रैजुएट। कार्य प्रसारित होते-होते यू० पी० में भी पहुँच गया है। श्री बजरंबली राय बी० ए० ने संयुक्त प्रान्तमें प्रचारकार्य आरम्भ किया है।

सत्संग भाव-धाराका प्रचार सर्वप्रथम दक्षिणी बिहारमें आरम्भ हुआ था श्री चुन्नीलालराय चौधुरी द्वारा। आपके अविश्रान्त परिश्रमके फलस्वरूप एक टाटा नगरमें ही ठाकुरके शिष्योंकी संख्या तीन हजार तक पहुँच गई थी। इस समय तो वहाँपर श्री नगेनसेन, श्री कमलख्वो सरकार और श्री निर्मलकुमार

घोष द्वारा बहुत काम हो रहा है। धनबाद, झरिया, सिन्दरी आदि औद्यौगिक क्षेत्रोंमें बढ़ आया है।

ठाकुरकी सुदूर प्रसारी दिव्य दृष्टिको उस दिन न तो श्यामाप्रसाद मुखर्जीने ही समझा और न बंगालके अन्यान्य नेताओंने। पत्र पत्रिका, जमीन्दार और स्थानीय नेतागण उनके ऊपर जो अत्याचार करते रहे उसको सब टुक-टुक देखते रहे। सच्ची बातकी जाँच करने किंवा सहायता करने कोई न बढ़ा। श्यामाप्रसादजी -ने समझा भी तो बहुत दिनके उपरान्त। उसके बाद जबतक जीवित रहे ठाकुरके प्रति असीम श्रद्धा रखे रहे। देवघरसे कुछ बंगालियोंने जब कभी ठाकुर और उनके सत्संगके विरूद्ध कोई पत्र भेजा आपने उसको फाड़ फेंका।

देवघर आनेपर भी क्या ठाकुरको चैन मिला? पत्र-पत्रिकाओं से जिन बंगालियोंका ठाकुरके प्रति भाव खराब हो गया था उन लोगोंने बिहारसे खदेड़नेका प्रयत्न आरम्भ किया। उत्सवके समय स्वागत स्तम्भ जो गड़े थे उनमें आग लगा दी गई! सभा-स्थलमें मार-पीट, हुल्लड़बाजी की गई। ठाकुरके शिष्योंमें आतंककी सृष्टि की गई।

इतनेपर भी जब ठाकुर देवघरसे न टले तो बिहारियोंको उभाड़ा गया। नाना प्रकारसे बदनामी की गई। ठाकुर मंहगी ला देंगे का भय दिखाया गया। पण्डोंको मिलाकर क्या-क्या न हुआ? कुछ स्टेशन आगेसे ही सत्संग आश्रम न जानेको भड़काया जाता।

इतना होते भी ठाकुरकी ओरसे प्रतिकार न किया गया। उनका विश्वास था कि बंगालको साम्प्रदायिक रक्त-पातकी अग्नि-में जलनेसे किसीने बचाया था तो वह बिहारियोंने बचाया था।

देवघर आ जानेके उपरान्त देशका राजनैतिक बँटवारा हो

गया। तदुपरान्त आरम्भ हुआ साम्प्रदायिक झगड़ा। लोग शरणार्थीके रूपमें भागने लगे। ठाकुरके शिष्य भी देवघरमें हजारोंकी संख्यामें आ पहुँचे। शिष्योंको ठाकुर छोड़ें तो कैसे? वे कैम्प तो नहीं मकान भाड़ापर ले-लेकर उनके रहनेकी व्यवस्था करने लगे। देवघरकी जन-संख्या बढ़ गई।

इसी बीच बंगाल प्रान्तीय कांग्रेसी नेताओंने भाषाके आधारपर बिहारके बँटवारेकी माँग आरम्भ की। बिहारके कांग्रेसी नेताओंने कड़े शब्दोंमें इसका प्रतिवाद किया। बंगाल और बिहारके इन कांग्रेसी नेताओंके तू-तू मैं-मैं में पिसे बेचारे शरणार्थी। बिहारी जनता और अफसर उनके विरुद्ध होते गये।

बढ़ते-बढ़ते इसका विस्फोट देवघर बैंक डकैती केस और अन्यान्य घृणित मुकदमोंके रूपमें होने लगा। ठाकुर और सत्संग डकैतके रूपमें बदनाम किये गये। आपके शिष्य अमेरिकन हाउजरमैन, आसामी कार्यकर्त्ता सुधीर चौधुरी और इलेक्ट्रिकल इन्जिनीयर अजयनाथ गांगुलीको पकड़कर पुलिसने जेलमें ठूँस दिया। सत्संगी शिष्योंके विरुद्ध पुलिस सरकारी अधिकारियोंके निकट रिपोर्ट भेजने लगी।

सब प्रकारका अत्याचार हो रहा था, किन्तु बिहार सरकार बैठी रही। उससे यह भी कहते न बन पड़ा कि जब सत्संगके सभापतिने दो डाकुओंको पिस्तौल और रुपयोंके साथ पकड़वाया है तब सत्संग दोषी कैसे है? इस मौनके परिणाम-स्वरूप जुल्म बढ़ता गया। अन्तमें ठाकुरके दो पुत्रोंको भी जेल भेज दिया गया। बिहारकी पत्र-पत्रिकाओंमें बड़े शीर्षक दे-देकर ठाकुरकी बदनामी की गई। इतनेपर भी ठाकुर रहे शान्त। स्थानीय एम० पी० और एम० एल० ए० लोगोंसे सत्यकी जाँच करनेकी प्रार्थना करते रहे। मिनिस्टर और भूतपूर्व मिनिस्टरोंसे आरजू की।

उनको देवघरसे टलते न देख स्थानीय अधिकारियोंका पारा गर्म होता गया। अन्तमें कुछने ठाकुरके अहातेमें पिस्तौल फेंककर जेलमें भेजनेका षड्यन्त्र करना आरम्भ किया। पुत्र जेलमें, पुलिस और सरकारी अधिकारी विरुद्ध! 'मरना चाहे पिता, माता सहज ममता तजे—लीलना चाहे स्वरक्षक दीन तब किसको भजे!' ठीक इसी दयनीय अवस्थामें पड़ गये ठाकुर। बाध्य होकर रातो-रात उन्हें दुमका जाना पड़ा। कुछ दिन धर्मशालेका कष्टमय जीवन यापन करते रहे। तदुपरान्त बहुत कठिनाईसे एक छोटा-सा तीन कमरोंका मकान मिला। उसीमें महीनों कष्ट झेलते रहे।

बिहारके बँटवारेकी माँगमें न तो उनका हाथ था और न उनके सत्संगका। यह सब किया था कांग्रेसके नेताओंने। बंगाल बिहारके कांग्रेसी नेताओंने आपसमें दंगल मचाया था और पिस रहे थे बिहार-प्रवासी बेचारे शरणार्थीगण। केन्द्रीय कांग्रेसके अधिकारीकी भूलसे जो गरीब सर्वस्वहारा बने थे वे अब प्रान्तीय कांग्रेसी नेताओंके राजमें पिसे और दले जाने लगे।

राजनीति कहाँपर रोती फिरती है? आपने उत्तर दिया—

'When the sufferers, the distressed and the misfortuned are not managed to get rid of the heinous, foul breathing of evil by the service and solace of the noble, and are not obliged by them—politics weeps along!'

दु:ख-यन्त्रणा, आपत्ति और दुर्भाग्यके चक्करमें पड़े व्यक्ति जब भद्र नागरिकोंके आश्वासन और सेवाके बलपर अपने आपको उस अपवित्र एवं घृणित अवस्थासे उबरनेका बल नहीं पाते—राजनीति वहींपर सर धुनती रहती है।

जीवनका प्रतिबन्धक क्या है ? विकासका बन्धन कौन-सा है ? प्रवृत्तिमें अभिभूत होना।

अस्तित्व अबाध गतिसे कब बढ़ता है ? प्रवृत्तिपर आधिपत्य होनेपर। प्रवृत्तिके अधीशके अतिरिक्त क्या कोई प्रवृत्तिपर आधिपत्य रखनेकी कला सिखा सकता है ? नहीं कर सकता। इसलिये प्रवृत्तिके अधीशको अपना इष्ट बनाना चाहिये। जो नेतागण इष्टानुसरणको जीवनका प्रधान उपादान—प्रधान लक्ष्य न बनाये हों वे नेतृत्व क्या करेंगे ? जिनको प्रवृत्तियाँ नचाती रहती हों वे जननायक कैसे बनेंगे ? यदि छल-बल और कौशलसे बन भी जायँ तो वे मृत्युपथपर लोगोंको ले जायेंगे—मरण और विनाश लायेंगे। इसलिये ठाकुरने कहा।

"इष्ट नाइ नेता जेई।
जमेर दालाल किन्तु सेई॥"

इष्टहीन नेता क्या हैं ? जमराजके दलाल हैं। राजनीतिपर आपके कथन हैं :—

'Interested, interdependent acceleration to becoming of every individual by which being is nurtured according to its position and special aptitude, with due resistance to evil,—that's the Politics and Law to follow.'

'Organised equitable individual liberty with an apt, economic, provisional balance and biological evolution of culture that makes the being progressive to the unbounded eternal entity is the fundament of socialistic Indo-Aryanism.'

'Common electorate, adult franchise and responsible abilities in the right place with integrating becoming of responsive self-administration are the angels of democratic independence.'

"Administrative organisation of the people in a varietal grouping of individuals with similar instincts that makes each one serve others with an auto-induced instinctive hanker creating an inter-related cosmos in the disintegrated chaos of individuals—ever enunciating the principle of life and growth and thus evolving into a natural concentration of constituted monitorial monarchy is the consummation of the republican state."

"Which people stand on is State. Government is the administration and adjustment to fulfil the people"

'Every country should prepare herself with every needful resource against terrific emergencies of her sister countries. Similarly every province, district or community should be prepared for sister provinces, districts or communities and this is the only material cementing interest that makes each other interested for progressive life and growth making misery materially impossible.'

'When people unite in a common unit—the Ideal—with service and surrender to fulfil—that makes every life launch into growth that upholds, strength and power evolve, rule of love glows, democratic autccracy shines with the speed of glory and freedom in a normal constitution,—that is natural democracy as I mean.'

'He, the man who is supported by the majority of every community as their own, is the blessed normal Representative of human society, a boon to democracy and life to election.'

'When every individual with his community for the common interest to uphold the mission of life and growth with every free access, enters in a common platform conjointly to serve one another to hasten prosperity and welfare of every socio-individual truly, it may be called a blessed socio-communistic Democratic congress'

'Is there any 'ism.' in God ? He is the consummation of all 'ism.' So He is sacred and surrender is the only sacrament. Providence is His name there by !'

राजनीति है धर्मका अंगमात्र। आर्य राजनीति धर्मका ही अंग है—यही हिन्दू-राष्ट्र-धर्म है। त्रिधायक और नियामक यहाँ-

पर एक ही लक्ष्यपर मिलते हैं। वशिष्ठके साथ राम, रामके साथ हनुमान हैं तो कृष्णके साथ हैं अर्जुन। चाणक्यके साथ चन्द्रगुप्त हैं तो रामदासके साथ शिवाजी हैं।

राष्ट्र-गुरु और धर्म-गुरु अभिन्न हैं यहाँ।

उन दिनों ठाकुर कलकत्तामें ही थे। महात्मा गान्धी उनसे मिलने आये। माँकी गोदमें ठाकुर लेटे हुए थे। मातृ-भक्त गांधी उस सरलताको देखकर विमुग्ध हो गये। हँसते हुए गांधीजी बोले—'ठाकुर, एक दल है जो आपकी उच्छ्वसित प्रशंसा करता है और अपर दल निन्दा। मजेकी बात यह है कि दोनों दलोंमें विशिष्ट लोग हैं। इनमें किसपर विश्वास किया जाय? कारण निकालनेमें मैं असमर्थ हूँ।'

उत्तरमें ठाकुरने कहा—'प्रशंसाकी बात हटावें, निन्दा सुननेमें आयी हो तो आशा है परमपिताका कुछ काम करनेमें समर्थ हुआ हूँ।'

महापुरुष अपनी निन्दा सुनकर खुश होते हैं। उनके द्वारकी पहरेदारी करती है निन्दा।

इसके उपरान्त विभिन्न विषयोंपर दोनों आदमी बातें करते रहे। ठाकुर व्यक्तिनिर्माणपर जोर दे रहे थे। उनका कहना था कि भावो-च्छ्वास अधिक देरतक नहीं टिकता, क्षणिक होता है। उस अवस्थामें कुछ प्राप्ति भी हो जाय तो टिकाऊ नहीं होता। प्रवृत्तियाँ जब जोर करती हैं सब कुछ बहा ले जाती हैं। जिसकी एकानुरक्ति श्रेष्ठके प्रति रहती है उसकी प्रवृत्तियाँ सुकेन्द्रित और सुनियन्त्रित हो जाती हैं। सबकी नहीं होतीं। इसलिए हिन्दू धर्मने मातृदेवो, पितृदेवो और आचार्यदेवो भवको जीवनकी मूल भित्ति बनाया है। जन-जागरणमें अराजकताकी सृष्टि होती है, निर्माण नहीं। किन्तु गांधीजी आगे बढ़ चुके थे। उनके लिए

पैर घुमाना कठिन था। इसके अतिरिक्त मानव मानवको समान समझते थे। वैशिष्ट्यकी बात उन्हें स्वीकार न थी।

उनके जानेके कुछ ही देर उपरान्त वर्त्तमान भारतके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी भी पहुँचे थे। उनसे भी काफी बातें हुई थीं।

इसके उपरान्त पुनः गांधीजी आये थे ठाकुरके ग्राम-निर्माण कार्यका परिदर्शन करने। उस समय देशबन्धु चित्तरंजन दासजीकी मृत्यु हो चुकी थी। उनकी मृत्युके प्रथम गांधीजी उनसे मिलने दार्जिलिंग पहुँचे। उस समय देशबन्धुके मुखपर केवल एक ही बात थी 'दुनियामें बहुतोंसे मिलनेका अवसर मिला है, किन्तु ठाकुरके समान सब विषयोंमें प्रेमिक कर्मी न देखा! आप भी जाकर उनके ग्राम-निर्माणकार्यको देखें। हमने तो उसी स्कीमको स्वराज्य पार्टीकी योजना बनाना निश्चित कर लिया है।' उसी बातकी रक्षा करने गांधीजी वहाँ आये थे। जहाजसे उतरकर मोटरपर चढ़ ही रहे थे कि हेमचन्द्र नामक एक युवक दो मीलकी दूरीसे उनके दर्शन और स्वागतमें आया। गांधीजीको हृदयसे लगाकर चुम्बन द्वारा स्वागत किया। उस सुमधुर चुम्बन-अभिनन्दनसे गांधीजी कुछ देरतक अभिभूत हुए।

आश्रमके ग्राम-निर्माण-केन्द्रको देखकर चमत्कृत हुए। आध्यात्मिक साधकोंके कर्मयोगकी शक्तिका क्रियात्मक रूप देखा और देखी हिन्दू-मुसलमानोंकी सम्मिलित प्रार्थना। राम-कृष्ण और बुद्धके साथ-साथ मुहम्मद और ईसाकी प्रार्थना हो रही थी। कौन कह सकता है कि उन्होंने 'ग्रामकी ओर चलो' का जो नारा उठाया था और सामूहिक प्रार्थनामें विभिन्न धर्मग्रन्थोंके आयत, श्लोक और सूत्रोंका मिश्रण किया था उसपर सत्संग-निर्माण और सम्मिलित प्रार्थनाकी छाप थी या नहीं।

आश्रममें आपके साथ कुछ आलोचनाएँ भी हुई थीं। ठाकुर-

जीकी माताका विराट् मातृरूप देखकर तो उनके मुखसे निकल पड़ा—I have never seen such a masterful woman in my life—ऐसी महीयसी स्त्री जीवनमें मैंने कभी नहीं देखी।

वहाँसे लौटनेके बाद यंग इण्डिया पत्रिकामें चित्तरंजनजीके विषयमें छपवाया था कि वह मृत्युके प्रथम मुझसे बारबार कहते थे कि—

I have learnt from my Guru (spiritual guide) the value of truth in all our dealings. I want you to live with him for a few days at least. Your need is not the same as mine, but he has given me the strength, I did not possess before I see things clearly which I dimly saw before.

देशबन्धुकी दीक्षा लेनेकी कहानी भी विचित्र और असाधारण है। सत्सङ्ग आश्रममें 'विण्ड पावर डायनमो' का प्रयोग चल रहा था। इसीके सम्बन्धमें आश्रमके कार्यकर्त्ता उनसे मिलने गये। बातोंके सिलसिलेमें ठाकुरजीके सम्बन्धमें बातें चली। कारण वायुसे विद्युत् निकालनेका अन्वेषण उन्हींकी बतलाई विधि के अनुसार चल रहा था। ठाकुरजीका नाम सुना। सुनते ही आप कुर्सीसे उठ पड़े और बोले—'क्या उनका दर्शन इस समय हो सकता है ?'

वे भीतर ही भीतर ठाकुरके प्रति इतने अनुरागी हैं इसको क.न जानता था ?

देशबन्धु बंगालके एकछत्र नेता थे। 'एक वर्षमें स्वराज्यप्राप्ति' की राष्ट्रीय पुकारपर बैरिस्ट्रीकी बड़ी आमदनीको लात मारकर देशके मुक्तियज्ञमें शामिल हुए थे। ब्रिटिश सरकारके विरुद्ध बङ्गाल

के कोने-कोनेमें आग लगा रखी थी। उन्होंने बम पार्टीके प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्रीवारिनघोषका 'पाबनाका मधु-चक्र' शीर्षक एक लेख पढ़ा था। वारिनबाबू आश्रम देखकर मुग्ध हुए थे। उसके बाद कलकत्तेमें पचहुँनेके बाद चित्तरञ्जनजीसे ठाकुरके दिव्य जीवन, अपार्थिव लीलाका वर्णन भी किया था। उसी सिलसिलेमें ठाकुरकी विस्मयकारी संगठनी प्रतिभा और तत्प्रसूत सर्वपरिपूरक सत्संग प्रतिष्ठानका भी वर्णन किया था।

देशबन्धु ठाकुरसे मिलने आये। उस समय श्रीश्रीठाकुर मानिकतल्लास्ट्रीटमें ठहरे थे। संध्याका समय, तुमुल कीर्त्तन हो रहा था। इसलिये ठाकुर देशबन्धुके साथ छतपर चले गये।

तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलन विषयक नाना प्रकारकी आलोचना चली। असहयोग आन्दोलन और उसकी विफलता, समाज-सुधार, गांधीजीका हरिजन-आन्दोलन, चर्खा-कर्घा आदि एक बात भी न छूटने पायी। राष्ट्रीय आन्दोलनके तत्कालीन रूप और अपनी अभिज्ञताका वर्णन करते हुए अन्तमें देशबन्धु चित्त रंजन विश्वासी कार्यकर्त्ताका रोना रोने लगे। आपने कहा—

"....क्या करूँ ठाकुर? कोई उपाय नहीं देख पाता। ऐसा एक भी आदमी नहीं जिसपर जनताका भार देकर जरा हटकर विश्राम भी कर सकूँ। बाध्य होकर राजनीतिके बन्धनमें फँसा हुआ हूँ। दायित्व ग्रहण करने योग्य व्यक्तिके अभाववश दम लेनेंतकका पथ नहीं मिलता।

इसके उत्तरमें ठाकुरने कहा—'यह बिलकुल सच है कि मुल्कमें आदमीका अभाव है। देशका कोई काम जो नहीं बढ़ पाता उसका यही कारण है। आदमीका ऐसा अभाव फिर भी आपलोगोंको स्वराज्यप्राप्तिका उतावलापन है? हठात् स्वराज्य यदि मिल ही जाय तो उसको चलावेगा कौन?'

समाज सड़ गया है, 'रौटून' हो गया है। आज घोर दुर्दशामें समाज पड़ा हुआ है। शिशु-मृत्युकी बाढ़ आई है। जिधर देखिये उधर घोर अशान्ति छाई हुई है। इससे बचनेके लिये हमें उन्नति-विरोधी तमाम कारणोंको दूर करना होगा। कोई काम ठीक तभी होता है जब लक्ष्य ठीक हो। लक्ष्य ठीक हो तो चित जाएँ या पट, आड़े जाएँ या तिरछे, टेढ़े जाएँ या सीधे, लक्ष्यस्थलपर पहुँचेंगे जरूर। इसलिये पहले लक्ष्य ठीक करे, लक्ष्य।

आदमीका अभाव है। इसलिये सर्वप्रथम सुसन्तान कैसे हो इसके प्रति ध्यान दें। आज वैवाहिक सुधारकार्य सबसे आवश्यक प्रश्न है। वैवाहिक समस्याके समाधानपर ही सुसन्तानका होना निर्भर करता है। इसलिये विवाह सम्बन्धी रिफार्म करें। तभी कार्यकर्त्ताका अभाव दूर होगा।

अच्छी सन्तानप्राप्तिके निमित्त स्वामी-स्त्रीमें दृढ़ और प्रगाढ़ प्रेम आवश्यक है। तभी दीर्घायुवाले सन्तान उत्पन्न होते हैं। राष्ट्रकी भविष्य कल्याणविधि क्या है इस बातको हमलोग जानते भी नहीं। परिणामतः नित्य अपने आपको विपन्न बनाते चले जा रहे हैं। इसका हमें बहुत ही दुःख है।' उन्नति प्राप्तिके सरल रूप एवं सुगम उपाय जाननेके लिये देशबन्धु चित्तरंजन अत्युत्कण्ठित होकर उस विधिके विषयमें पूछनें लगे। उनके आग्रहपर ठाकुरने कहना आरम्भ किया—

—देखिये दासभैया ! जबतक अथसे इतितकका जाननेवाला द्रष्टा पुरुष आदमीके पीछे न हो तबतक वह सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। महाभारतके युद्धमें अर्जुन बड़े-बड़े वीरोंको पछाड़ने में समर्थ इसलिये हो पाया कि उसके सारथी श्रीकृष्ण थे। शिवाजी प्रबल पराक्रमी मुगल सम्राटको हराकर जो एक विराट मराठा राष्ट्रगठन कर सके उसका कारण यह था कि उनके पीछे स्वामी रामदास से द्रष्टा थे। चन्द्रगुप्त विशाल साम्राज्य संस्थापित करनेमें

इसलिये समर्थ हुए कि उनके पीछे चाणक्य थे। किन्तु इसके अभाववश वीर, बलिदानी, त्यागी, देशभक्त महाराणाको दारुण दुःख और कष्टका बोझ आजीवन वहन करना पड़ा था। उनका समस्त प्रयत्न व्यर्थतामें पर्यवसित हो गया।

—मुझको कौन है जो बल प्रदान करेगा? चित्तरञ्जनदासने पूछा। जिस दिन आपकी अनुरक्ति दृढ़ हो जायगी, शक्ति अपने आप मिल जायगी।

कैसे?

खूब नाम करना पढ़ता है!

नाम-जप बहुत किया है, कुछ न हुआ।

नामकी विधि जाननी होती है, विधि!

इसके उपरान्त देशबन्धु दीक्षा लेनेके निमित्त व्याकुल हो पड़े। किन्तु उसमें बाधा दी मनमोहिनी देवीने। उन्होंने कहा 'ना' बाबू, ना! बड़े आदमियोंपरसे मेरा विश्वास उठ गया है। मन्त्र लेनेको वे समझते हैं भगवान्‌पर अनुग्रह करना! तुम हो देशबन्धु, सारा देश तुम्हारी पूजा करता है। बहुत नाम है। जनता सम्मान करती है। आज तो भावावेशमें आकर नामग्रहण कर लोगे तुम। किन्तु दो ही दिनके बाद सब छोड़-छाड़ दोगे और कहते फिरोगे कि मन्त्र-तन्त्रसे कुछ भी नहीं होता। तुमसे बड़े आदमियोंका मन्त्र लेना अच्छा नहीं।'

इस कठोर उत्तरको सुनकर देशबन्धु मर्माहत हुए। व्यथित कण्ठसे बोले–'माँ,मैं पापी हूँ। हमारे समान महापापीपर आपकी कृपा न होगी, यह जानता हूँ। किन्तु किसी कामको शेष किये बिना चित्तरंजनने छोड़ दिया हो, यह अपवाद कोई नहीं दे सकता।

उनके उस विनम्रभाव और एकान्त आग्रहपर मनमोहिनी

देवीका हृदय द्रवीभूत हो गया और उसी रात उन्होंने मंत्र सम्प्रदान किया।

बंगालके एकक्षत्र नेता, सुभाष बाबू और सेनगुप्तासे बड़े नेताओंके राजनैतिक गुरु, कांग्रेसके इतिहासमें स्वराज्य-पार्टी नामक विशेष अध्यायके रचयिता देशबन्धु चित्तरञ्जनदासने उन्नीस सौ चौबीसके तेरह जून शुक्रवारकी रात्रिमें मंत्र लेकर श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रको गुरुपदपर वरण किया था और जीवनके अन्तिम कालतक उनके अनुवर्ती शिष्य बने रहे।

मंत्र ग्रहण करनेके उपरान्त देशबन्धु सपरिवार पाबना सत्सङ्ग आश्रम गये थे और कुछ दिनों तक अपने गुरुदेवके सान्निध्यमें निवास किया था। रहनेके निमित्त आश्रममें स्थान भी ठीक किया था। उसी अवसरपर स्थानीय सत्सङ्ग पुस्तकालयको अपनी बहुत सी पुस्तकें भी दान की थीं।

आश्रममें रहते समय आपने ठाकुरसे राष्ट्रीय निर्माण विषयक योजनायें भी प्राप्त की थीं। उस योजनामें गृह और ग्राम निर्माण, सुप्रजनन और बिवाह-सुधार मुख्य आधार था। तदनुसार आप स्वराज्य-पार्टीके सम्मुख राष्ट्रीय-निर्माण-योजना रखना चाहते थे। इसके निमित्त अखिल भारतवर्षीय स्वराज्य पार्टीकी बैठक करनेवाले भी थे। किन्तु भाग्यवश आप बीमार पड़े और परिवारवालों के जिद वश दार्जिलिङ्ग जानेको बाध्य हुए। ठाकुरने दार्जिलिङ्ग जानेसे बारबार रोका, अनुनय-विनय और अनुरोध भी किया। किन्तु वायु-परिवर्तनके नामपर उनके परिवारवाले जबर्दस्ती ले गये। दार्जिलिङ्ग जाकर आपका स्वास्थ्य एकदम खराब हो गया और उन्हें अपनी इहलीला संवरण करनी पड़ी।

देशबन्धु चित्तरञ्जनदासजीके इस विशिष्ट अध्यायका विवरण उनके जीवनीके लेखकगण किंवा कल्याण और आनन्दबाजार

आदि पत्रिकायें क्यों नहीं छापतीं इसका कारण ज्ञात नहीं। किन्तु इसका विवरण आत्म-शक्ति नामक बंगला पत्रिकामें बहुत दिन आगे छपा था।

चित्तरञ्जन नगरी बनाकर राष्ट्रीय सरकारने देशबन्धुकी स्मृति रक्षा की है। किन्तु उस सर्वस्वत्यागी महान नेताके त्यागभावके पीछे जिस अलौकिक शक्ति-सम्पन्न महापुरुषका यादु-दण्ड क्रिया कर रहा था कदाचित उसे भी ज्ञात नहीं। पत्र-पत्रिकायें और पुस्तक लेखक सत्यका वर्णन करनेमें जैसा पक्षपात करते हैं यह इसी बातसे प्रमाणित होता है। आत्म-शक्तिमें प्रकाशित वही निबन्ध 'श्रीश्रीठाकुर और देशबन्धु चिरत्तञ्जन' नामक पुस्तिकाके रूपमें छपा है।

नेताजीके पूज्य माता-पिता भी ठाकुरजीके शिष्य-शिष्या थे। उनके बड़े भाई और भौजाईने भी आपसे दीक्षा ली थी। स्वयं सुभाषबाबू भी ठाकुरजीका दर्शन करने आश्रम पहुँचे थे। उनके मामा-मामी तो मकान बनाकर आश्रम-निवासी ही हो चुके थे। सुभाषबाबूके साथ ठाकुरकी क्या-क्या आलोचनायें हुई थीं इसे क्या कोई जानता है?

जिस भवनमें सुभाषबाबूका जन्म हुआ था, उड़ीसा सरकार जिस भवनको 'सुभाष-भवन' के नामरर स्मृति-रक्षा करने जा रही है, नेताजीके पिता रायबहादुर जानकीनाथकी प्रार्थनापर ठाकुरने अपने पद-धूलिसे उसको पवित्र किया था। जानकीबाबू-के आतिथ्यमें आप उन्नीस सौ तेईस सन् के दिसम्बर मासमें दलबलके साथ उनके यहाँ गये थे और दो मास तक विराजित रहे।

धीरे-धीरे अन्यान्य राष्ट्रीय नेतागण भी पधारने लगे। बङ्गाल, बिहार, आसाम आदि विभिन्न प्रांतोंके विभिन्न दल और बादके

नेतृत्व करनेवाले ठाकुरसे मिलने और उनकी मानव-निर्माण-विधिका पर्य्यवेक्षण करने पहुँचे। वह सिलसिला अब भी बन्द नहीं हुआ। बाल-पालगोपाल युगके नर-केशरी विपिनचन्द्रपाल, क्रांतिकारी दलके सुरेन घोष आदि नेताओंके अतिरिक्त सर्वश्री फजलुलहक, आसाम सरकारके प्रधान मंत्री वारदोलै, रोहिनी चौधरी एम० पी०, बिहार सरकारके प्रधान मंत्री डा०श्रीकृष्णसिह, अर्थमंत्री बाबू अनुग्रह नारायणसिंह, रेवेन्यु मिनिस्टर के० वी० सहाय, पं० विनोदानन्द झा एम० एल ए०, श्यामनन्दन सहाय, वाइस-चांसलर, बिहार युनिवर्सिटी, बिहारके पत्रकार मुरली मनोहरप्रसार, एम०एल० ए०, प्रसिद्ध साहित्यिक लक्ष्मी नारायण, 'सुधांशु', रामप्यारीदेवी, एम० एल० ए०, सुन्दरीदेवी, एम० एल० ए०, प्रभावतीदेवी एम० एल० ए० बिहार सरकारके डिपुटी मिनिस्टर जगतनारायणलाल, शाह वजैर मुनीमी और वीरचन्द्र पटेल, मजदूर नेता बाबू रमाशङ्करसिंह, साम्यवादी नेता और पत्रकार जनार्दन मुखर्जी, बेरिअर हेमरम, एम० पी०, बलदेव सहाय एडवोकेट, जालेश्वरप्रसाद एडवोकेट, एस० के० मल्लिक, एम० एल० ए० प्रभृति देश-भक्तगण आ-आकर ठाकुरजीसे मिल चुके हैं।

इनमेंसे कुछ आदमियोंने तो दीक्षा भी ग्रहण की है। बाबू रमाशङ्करसिंहजी जो आज सिन्दरी फर्टिलाइजर कम्पनीके मजदूर मंत्री और आई० एन० टी० यू० सी० की ओरसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघके प्रतिनिधि हैं, उनकी दीक्षाकी कहानी विचित्र है।

रत्न-प्रसविनी सारन जिलाके पथारदेई नामक ग्राममें जन्म ग्रहण करनेवाले इस तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न युवकका पारिवारिक योग भारतीय राष्ट्रके भाग्यविधाता डा० राजेन्द्रप्रसाद के साथ रहता आया है। डा० प्रसादके बड़े भाई स्वर्गीय महेन्द्रप्रसादजीके तत्वावधानमें आप छपरामें पढ़ते रहे।

महेन्द्रबाबूका गृह देशभरके नेताओंका मिलन-क्षेत्र था। महात्मा गान्धी, जमुनालाल बजाज प्रभृति मान्य नेताओंका वहाँपर आगमन होता ही रहता। रमाशङ्कर सिंहजीमें भी नेता बननेकी धुन सवार हुई।

स्कूली जीवन शेष करनेके उपरान्त पटनामें जाकर जब इन्होंने कालेज जीवनमें प्रवेश किया तब इन्हें नेतृत्व करनेका अवसर प्राप्त हुआ। तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता और कठिन अध्यवसायके बलपर आप बिहार प्रान्तीय विद्यार्थी संघके संस्थापक बन गये। एकाकी इन्होंने अपनी संगठनात्मक शक्तिके बलपर बिहारके विभिन्न जिलोंमें संघकी शाखा-प्रशाखा खोली। उनके इस संघ-निर्माण-कार्यको सर्वप्रथम धक्का आया समाजवादी दलसे। सोशलिस्ट पार्टीके हाथमें वैज्ञानिक परिकल्पना थी और था समग्र भारतवर्षीय धुरंधर राष्ट्रीय नेताओंका दल। किन्तु रमाशङ्करसिंह जी थे एकाकी। किसी सुपरिकल्पित योजनानुसार इनका विद्यार्थी संघ न चलता था। परिणामतः संघकी रक्षाके निमित्त इन्हें सोशलिस्ट पार्टीके नेताओंसे लड़ाई लेनी पड़ी। अपने संगठन, नेतृत्व और परिचालना शक्तिके बलपर आप सोशलिस्ट पार्टीके नेताओंके साथ पँजा आजमाते रहे। बिहार प्रान्तीय विद्यार्थी आन्दोलनके प्रारम्भिक तीन वर्षके इतिहासमें एकाकी आपने सोशलिस्ट पार्टीके नेताओंका जो मुकाबला किया था उससे पार्टीके नेतागण दाँतों तले उँगली चबाते रहे।

उसी तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न युवकके प्रति बिहार पुलिसने राजनैतिक डकैतीके इल्जामका कागज तैयार करना आरम्भ किया। एक ही रातमें कई जिलोंसें डकैती करनेकी आपके विरुद्ध रिपोर्टें आने लगीं। बढ़ते बढ़ते इनके विरुद्धके कागजोंका मोटा रेकार्ड तैयार हो गया। किन्तु रमाशङ्करसिंहजीके विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण

न देनेके कारण पुलिस हाथ मलकर रह जाती। फँसानेका सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता।

यह अवसर पुलिसके हाथमें आया डिफेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट पास होनेके उपरान्त। अब वह जिसको चाहे जेलमें ठूँस सकती थी और अधिक-से-अधिक दिनोंतक लोहेके सींकचोंके भीतर सड़ा सकती थी। आखिर एक दिन दल-बलके साथ पुलिस रमाशङ्करजीके ग्राममें आ धमकी। आप अभी घरसे बाहर टहलनेके लिए निकले ही थे कि पुलिसके काफलेसे मुलाकात हो गई। वारण्टका जिक्र सुनते ही आपने कहा—'तो चलिये घरसे बिछावनपत्र लेकर चला ही जाय, देर करनेसे क्या लाभ।'

पुलिसकी उस विशाल वाहिनीके साथ आप घर पहुँचे और सबको यथायोग्य आसन सम्प्रदान कर नाश्ता-पानीका प्रबन्ध करने भीतर चले गये। थालमें सजाकर गर्मगर्म हलवा-कचौड़ी पहुँचने लगी। पुलिसवालोंको ऐसी सम्वर्द्धनाकी आशा न थी उनसे। सभी निश्चिन्त मनसे पकान्नका रसास्वादन करने लगे। किन्तु रमाशंकरजीका मस्तिष्क तीव्र क्रियामें संलग्न था। 'पुलिस तो मुझको जेलमें ही सड़ा डालेगी। तब विद्यार्थी-संघका क्या होगा?'—इस प्रकारकी नाना चिन्ताएँ आने लगीं दिमागमें। आपने निश्चय किया कि जेल न जाऊँगा। उनके इस निश्चयका पता घरवालोंको भी न था।

खा-पीकर पुलीसवालोंने जब इनकी खोज आरम्भ की तबतक आप हवा हो चुके थे। बहुत उछले-कूदे, परिवारवालोंपर दोषारोपण करने लगे। किन्तु उन बेचारोंको तो वारण्टका भी पता न था।

इसके उपरान्त थानेपर आकर क्या-क्या रिपोर्ट तैयार की

गयी भगवान् ही जाने। किन्तु उसके बाद एकाधिक्रमसे चलने लगा आपके परिवारवालोंपर जुल्म।

घरसे निकलनेके उपरान्त नाना ग्राम और प्रान्तोंको पार करते आप सन्यासीके रूपमें पावना सत्संग आश्रममें पहुँचे। तेज अंग्रेजी बोलनेवाले गैरिक वस्त्रधारी युवक सन्यासीको देखकर आश्रमवासियोंको कौतूहल हुआ। दो एक दिनके उपरान्त ही इन्होंने दीक्षा भी ले ली। किन्तु इनका यह दीक्षाग्रहण भारतसे पलायनके उद्देश्यसे हुआ था। सत्संग आश्रमकी शाखा बंगाल, आसाम और बर्मामें भी थी। आपने उन्हींके सहारे बर्मा जाने और सुभाषबाबूसे सम्बन्ध जोड़नेके विचारसे दीक्षा ली थी।

पुलिसकी आँखोंमें धूल झोंकनेवाला क्या महापुरुषकी आँखों-को धोखा दे सकता है? एकदिन ठाकुरने कहा—'इस गेरुआको बदल डालो, कोई डर नहीं है!'

डर नहीं है! तब क्या ठाकुरने मुझको पहचान लिया? यह सी, आइ. डी, के आदमी तो नहीं हैं?—इस प्रकारकी चिन्ता करते रमाशंकरजी डेरा लौटे, रातमें भागनेकी चेष्टा भी की। किन्तु सब प्रयत्न करके भी वे भागनेमें असमर्थ रहे।

दूसरे दिन फिर ठाकुरने कहा—'कोई भय नहीं, कुछ न होगा। मैं तो हूँ ही।'

इतना आश्वासन पाकर भी आप बेचैन रहे। उनकी मान-सिक अवस्थाको देखकर ठाकुरने एकान्तमें बुलाकर समझाया—'परम-पिता जब पीछे हैं तो डरना क्या? कोई भय नहीं। कुछ भी न होगा। मैं तुम्हारी रक्षाकी जिम्मेदारी लेता हूँ।'

इसके उपरान्त रमाशंकरजीने ठाकुरको अपना समस्त वृत्तान्त सुनाया। सब सुन लेनेके बाद ठाकुरने कहा—'स्टेटमेण्ट तैयार करो, मैं सब देखूँगा।'

सोशलिस्ट पार्टीवालोंसे खुली दुश्मनी थी। उधर सारन जिला

कांग्रेसके गांधीवादी नेतागण भी इनसे क्रुद्ध ही थे। पुलिसवाले इस अवसरपर परिवारवालोंपर क्या-क्या जुल्म करते होंगे इसका चित्र खिंच गया उनकी आँखोंके सामने। ठाकुर जब आश्वासन देते हैं तब स्टेटमेण्ट तैयार करना ही उचित जँचा। ठाकुरकी वाणीमें न मालूम कौन-सी शक्ति थी जो क्रिया करने लगी।

स्टेटमेण्ट तैयार किया गया और छपनेको दे दिया गया। टाइप हो जानेके उपरान्त ठाकुरने रमाशंकरजीको बंगाल प्रान्तके डी० आई० जी० के यहाँ हाजिर होनेको कहा।

अपने एक डाक्टर शिष्यके साथ रमाशंकरजीको सफर करनेका प्रबन्ध कर दिया। बंगाल पुलिसके सामने जानेका जब अवसर आया आपके पाँव काँपने लगे।

इस बातको देखकर पुनः आश्वासनभरे शब्दोंमें ठाकुरने कहा—'जाओ, जेलमें मैं तुमको सड़ने न दूँगा। विश्वास रखो, परमपिता तुम्हारी पीठपर हैं।'

यथासमय डी० आई० जी० के यहाँ जाकर हाजिर हुए। अपना स्टेटमेण्ट दिया। किन्तु रेकर्ड या निर्देश बिहार पुलिसका कुछ उनके पास न था। वे कुछ करनेमें असमर्थ रहे। ठाकुरका भेजा हुआ आदमी समझकर इनको अपने गृहमें ही रखा। उसके कुछ दिन बाद बी क्लासमें रखनेके निमित्त ढाका जेल भेज दिया। बहुत आरामके साथ जेलमें रहते थे आप। तोशक-तकिया मसहरीमें जीवन कटता था। कुछ दिनके बाद ही आप बाँकीपुर जेल पहुँचाये गये।

उन दिनों डा० राजेन्द्रप्रसादजी भी उसी जेलमें थे। अपने हाजिर होनेका वृत्तान्त कहते समय जब रमाशंकरजीने सत्संग आश्रम और ठाकुरका नाम लिया तब राजेन्द्र बाबूने अप्रत्याशित भावसे ठाकुर और उनकी माताकी कुशल-जिज्ञासा की।

बिहारमें पैर रखनेके साथ ही साथ आपका क्लास तोड़ दिया

गया और ढाका जेलसे तोशक तकिया जो कुछ लाये थे, बिहार-पुलिसने उन सबसे वंचित कर दिया। उसके बाद आप छपरा जेल और वहाँसे सीवान जेल पहुँचाये गये। वहाँ पहचान करने के निमित्त पुलिस अपने दलके दल गवाहोंको लेकर आने लगी, किन्तु पहचाननेवाला कोई न मिला। अब पुलिस क्या करे ?

वह जमाना पुलिस राज्यका था। फिर भी पुलिस अपना मुकदमा प्रमाणित करनेमें असमर्थ रही। सारा प्रयत्न करके भी जब वह कुछ न कर सकी तब काले कानूनका प्रयोग किया। आप नजरबन्द बनाकर बक्सर सेण्ट्रल जेल भेज दिये गये। बिहार के डकैत और खतरनाक कैदियोंका तीर्थक्षेत्र बक्सर सेण्ट्रल जेल!

उस समय छपरा जेलमें लाल टोपी और डण्डा-बेड़ीधारी रमाशंकरजी ही एकमात्र कैदी थे। सीवानसे लौटनेके बाद पुनः छपरा जेल आये। उसी समय मैं भी भागलपुर सेण्ट्रल जेलसे लौटकर वहाँ पहुँचा था। सन् बयालिस-तैंतालिसके जेलप्रवासमें जिन-जिन जेलोंमें मुझे जाना पड़ा वहाँ लाल टोपी और लौह आभूषणधारी एक भी व्यक्तिका दर्शन न हुआ था। मेरी दृष्टि इस थुलथुल शरीरवाले तरुणके प्रति आकृष्ट हुई। वह थे जेनरल कैदी—अर्थात् चोर-डकैतके दलके। इसलिए हम राजनैतिक कैदियोंको इनसे अलग कँटीले तारके घेरेमें रखा जाता। गेटसे निकलकर आते समय हठात् किसी परिचित राजनैतिक कैदीने पूछा—'क्या खबर है ?'

हँसते हुए रमाशंकरजीने उत्तरमें कहा—'बिहार-पुलिस मुझे 'साइड-स्टेशन' में न रहने देगी। अर्थात् डिस्ट्रिक्ट या स्पेशल कैम्प जेलोंमें न रखकर मैं तीर्थराज बक्सर सेण्ट्रल जेलमें भेजा जाऊँगा।' उसी दिन आप बक्सर भेज दिये गये। किन्तु बक्सर सेण्ट्रल जेलमें जो नजरबन्दोंका आवासगृह था वह पहलेसे ही भरा था और उसमें विराजित थे शुक्लजी और बसावन सिंहजी

ऐसे खतरनाक व्यक्ति। इस नये भयंकर जीवके आनेके बाद जेल के अधिकारियोंकी निद्रा ही जाती रही।

उसके बाद स्थानाभाववश आप पटना कैम्प जेल भेज दिये गये। इसी बीच मैं छपरासे वहीं भेजा गया। गेटके भीतर प्रवेश करते ही जिसका सर्वप्रथम दर्शन हुआ वह था आपका। मैंने कहा—'अरे आप तो स्वर्गच्युत हो गये हैं देखता हूँ। क्या तीर्थ-राज निषेध है आपके लिए ?'

जीवनमें प्रथम-प्रथम बात करने या निकटसे देखनेका अवसर यही हुआ था। आप मेरा बिछावन हाथमें लेते हुए बोले—'स्थाननिषेध तो नहीं स्थानाभाववश आपलोगोंका साथी हो गया हूँ। यह भी कम सौभाग्य नहीं।' इसके उपरान्त हम दोनों सेल नम्बर २ में चले गये और जबतक जेलमें रहे उसी कालकोठरीमें विराजित रहे।

रमाशंकरसिंहजीको जेल भिजवा देनेके उपरान्त ठाकुर अब मुक्तिका प्रयत्न करने लगे। अपने परमप्रिय शिष्य भोलानाथ सरकारको उन्होंने यह कार्यभार अर्पण किया। भोलानाथ बिहार-से अपरिचित थे। रमाशंकरजीपर कौनसे आरोप हैं, यह भी वह न जानते थे। गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर राजेन्द्रनाथ मजुमदारके साथ आपने प्रयाण किया। समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर होते हुए एक दिन पटना पहुँचे। जिस पुलिस ऑफिसरसे मिलते वहींसे धक्का खाते।

इस प्रकार प्रत्येक बिहारी पुलिस ऑफिसरके द्वारसे दुतकार खाकर बेचारे भोलानाथ हताश होकर अंगरेज उच्चाधिकारियोंके शरणापन्न हुए। सत्संग और ठाकुरके विषयमें पूर्ण विवरण सुनकर एक अंगरेज प्रभावित हुए और सहायता करनेका आश्वासन दिया। किन्तु बिहार पुलिस अपनी जिम्मेदारीपर ऐसे खतरनाक व्यक्तिको छोड़नेको राजी न हुई। 'रमाशंकरसिंहजीमें कभी परि-

वर्तन नहीं आ सकता, वह बिहारके पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंकनेवाला है। आप तो सरल हृदयके धर्मभीरु बंगाली हैं।' ऐसा कहते हुए एक सी० आई० डी० के बिहारी उच्चाधिकारीने भोलानाथजीको उपदेश देना आरम्भ किया। उनके इस उपदेशके उत्तर में आपने कहा था कि 'जो रमाशंकर गुरुके कथनानुसार जेल जानेको तैयार हुआ, उसके विरुद्धका कथन उचित नहीं हुआ आपका। हमारे ठाकुरके सम्पर्कमें जानेपर मनुष्यका आन्तरिक आमूल परिवर्तन होता है। आज तो बिहार पुलिस जेलमें रखनेपर भी डरती है। किन्तु एक सप्ताहके गुरुसम्बन्धसे वह पवित्र आत्मा स्वयं हाजिर हुई है। मेरी समझसे पुलिसका मस्तिष्क विकार-ग्रस्त हो गया है। अन्यथा वह उसपर किसी तरह सन्देह न करती। हमारे पास न राज्यशासन है और न पुलिस। फिर भी बंगालसे उसे छुड़ानेके निमित्त आया हूँ। मेरी दृष्टिमें तो your Police are more criminal than my Ramashankar. ऐसे नहीं होता तो हमारी जिम्मेदारीपर छोड़नेसे क्यों भागती।'

बहुत तर्क-वितर्क, लिखा-पढ़ीके बाद बिहार सरकार रमाशंकरजीको छोड़नेपर राजी हुई। उसपर भी शर्त लगाई कि बंगाल पुलिस यदि जिम्मेदारी ले तभी छोड़ सकता हूँ।

क्या करें भोलानाथ? बेचारे पटनासे कलकत्ता पहुँचे और बंगाल पुलिसका दरवाजा खटखटाने लगे। उनके यहाँ उतनी कठिनाई न उठानी पड़ी। ठाकुर और उनके सत्संगके विषयमें जानती थी। सत्संगने कितने ही खतरनाक व्यक्तियोंका भार लेकर उनमें आमूल परिवर्तन किया था। बंगाल सरकारने बिहार सरकारको भोलानाथ सरकारके हाथोंमें रमाशंकरजीको देनेके लिए लिखना आरम्भ किया। अन्तमें बिहार सरकार बंगाल सरकारके कथनानुसार छोड़नेको राजी हुई।

इसी बीच रमाशंकरजी जेलमें निराश हो चले थे। बाहरसे

कोई खबर न मिलती थी। रक्त सम्बन्धियोंके अतिरिक्त जेलमें आकर कैदीसे मिलने या पत्र-व्यवहार करनेका अधिकार किसी दूसरेको था भी नहीं। कैम्प जेलमें जितने राजनैतिक कैदी थे सबका कहना था कि रमाशंकरसिंह तो कभी छूट ही नहीं सकते। जेलके बाहर ठाकुरके दूत क्या कर रहे हैं इस बातको वे जान ही कैसे सकते थे?

किन्तु वह दिन भी आया जिस दिन रमाशंकरसिंहजीके छूटनेका पर्वाना आया। आप गोटपर बुलाये गये। वहाँसे लौटकर जब उन्होंने अपने छूटनेकी बात सुनाई तो हम सब अवाक् रह गये। एक बंगाली अपना अर्थ और समय बिहारके किसी उपेक्षित व्यक्तिके प्रति व्यय करेगा, यह कम आश्चर्यका विषय न था। स्वयं रमाशंकरजीने ही बिदाईके सम्भाषणमें कहा था—"एक ऐसा विश्वासयोग्य स्थल ठाकुरमें मैंने पाया है, जैसा जीवनमें न पाया था। मुझसे आदमीके पीछे यहाँ बिहारमें इतना कष्ट कौन वहन करता? सोशलिस्ट भाई खफा ही थे, गांधिआइट थे क्रुद्ध। कौन-सी आशा थी मेरे छूटनेकी? किन्तु ठाकुर हमारी आशाके स्थल और भरोसाके केन्द्र हैं। उन्होंने हमारी उपेक्षा नहीं की।"

खुशीके मारे पैर जमीनपर न पड़ते थे उनके। किसीको शीशेका मर्तबान भेट दिया तो किसीको घीका बर्तन। किसीको कुछ लुटाया तो किसीको कुछ। मुझको ठाकुर-लिखित ग्रन्थोंका समस्त सेट ही अर्पण किया। सी क्लासके कैदीके पास रहता ही क्या है! किन्तु उस आनन्दमें यथासर्वस्व लुटा-पुटा और गलेसे गले मिलकर आप बाहर चले गये।

कलकत्ता पहुँचनेके उपरान्त भोलानाथ सरकारने तारसे छूटनेकी खबर दी। ठाकुरके यहाँसे उत्तर आया—'एक राजकुमारकी भाँति लाओ।'

गुरुके आज्ञानुसार भोलानाथजीने रमाशंकरजीके असन-वसनादिकी तैयारी करायी और पुष्पमालासे सुसज्जित कर श्रीगुरुचरणोंमें समर्पण किया।

बिहार पुलिसकी दृष्टिमें जो भयंकर और खतरनाक था, सोशलिस्ट नेताओंकी दृष्टिमें जो भयानक शत्रु था, गांधीवादी दलकी नजरोंमें जो घृणा और उपेक्षाका पात्र था उसका एक महापुरुष राजकुमारकी नाईं—सम्भ्रान्त व्यक्तिकी नाईं स्वागत करता है। मनुष्यके अन्तर्निहित महान् गुणकी पहचान करनेकी दृष्टिमें कितना भेद है !

पटना कैम्पजेल्से छूटनेके उपरान्त रमाशंकरसिंहजी ठाकुरके सत्संग-आश्रममें बहुत दिनोंतक नजरबन्द रहे। बंगालके डी० आई० बी० पुलिसकी उनपर बराबर निगरानी रही। कुछ दिनके उपरान्त उन्होंने नजरबन्दीका प्रतिबन्ध उठानेकी सिफारिश भी की।

नजरबन्दीकी आज्ञा उठनेके साथ ही साथ आप बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमिटीके साथ मिलकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे। उत्तरी बंगालके सब-डिवीजन और जिलाओंमें दौरा किया। उनकी देशभक्तिपर मुग्ध होकर मैमनसिंह जिला कांग्रेसने बी० पी० सी० सी० का सदस्य भी बना लिया।

स्वतंत्रताप्राप्तिके उपरान्त आप सिन्दरी फर्टिलाइजर कम्पनीके श्रमिकोंके मन्त्रीपदपर विराजित हैं। आप ऐसे मजदूर संघके मंत्री हैं जिसपर भारतीय राष्ट्रके खाद्य उत्पादनका भार है। इतना ही नहीं मजदूर सेवककी हैसियतसे एमस्टर्डम, इंगलैण्ड, जेनेवा आदि विदेशी राज्योंमें जाकर प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं।

एक महापुरुषके सम्पर्कमें आनेके उपरान्त जन-सेवा और प्रतिनिधित्व करनेकी शक्ति कितनी बढ़ जाती है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं रमाशंकरसिंहजी !

किन्तु सतत दोष-दर्शनके कारण सरकारी कर्मचारियोंकी दृष्टि कलुषपूर्ण हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देखना हो तो भागलपुर पुलिस ट्रेनिंग कॉलेजमें जाकर देखें। वहाँपर ट्रेनिंगमें आनेवाले रंगरुटोंके सम्मुख रमाशंकरसिंहजीका जो भयावह रूप प्रदान किया जाता है, उसको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वहाँसे निकलनेवाले पुलिस ऑफिसरोंपर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि देवघर आनेके साथ ही साथ ठाकुर और सत्संगपर भी सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। इतना ही नहीं यदा-कदा इस धार्मिक संस्थाकी खानेतलाशी भी कर बैठते हैं। विरुद्धमें रिपोर्ट जो भेजते हैं सो अलग।

किन्तु उनकी आँखें रमाशंकरजीमें आये महान् परिवर्त्तनकी ओर क्यों नहीं जातीं? क्या विदेशमें जाकर कभी उन्होंने राष्ट्रीय सम्मान या राष्ट्रीय स्वार्थका क्षति-साधन किया है? यदि नहीं, तो क्यों? इण्डिया हाउसके सम्मुख जब जवाहरलालजीके समान राष्ट्रीय नेताके विरुद्ध कुछ भारतीय विद्यार्थियोंने काला-झण्डेका प्रदर्शन करके जगतके सम्मुख भारतीय राष्ट्रको छिन्न-विच्छिन्न और कलहपूर्ण दिखलानेका प्रयत्न किया था, उस समय आपने लानत-मलामत करके उन्हें प्रदर्शन बन्द करनेका जो सफल प्रयत्न किया था, इसको सरकारी अधिकारी क्यों नहीं समझ पाते?

जीवन-परिवर्त्तन और ऐतिहासिक अभ्युत्थानके जन्मलग्नके पीछे महापुरुषोंका जो अमृत-मय अवदान रहता है इस बातको सरकारी अधिकारी किंवा ऐतिहासिक क्यों नहीं समझते इसका कारण नहीं जाना जा सकता। सम्राट् चन्द्रगुप्तके शौर्यकी कहानी लिखनेमें तो कमाल करते हैं, किन्तु जिस महर्षि चाणक्यने दासी-पुत्र चन्द्रगुप्तको साधना और अध्यवसायकी कसौटीपर रगड़-रगड़ कर दिग्विजयी चन्द्रगुप्तमें रूपायित किया था उनके महत अवदान और महान शक्तिके विषयमें उनकी लेखनी चुप है। ठीक यही

अन्याय हुआ है स्वामी रामदासके प्रति भी। शिवाजीकी वीरगाथा तो इतिहासके पन्नोंमें पढ़नेको मिलती है, किन्तु जिस गुरु रामदासके श्रीचरणोंमें सारा मराठा राज्य वीर केसरी शिवाजीने चढ़ाकर अपनेको धन्य माना था, उनका इतिहास, उनके मनुष्य सृजनकारी विधिपर तनिक भी प्रकाश नहीं डाला जाता।

प्रत्येक जीवनके परिवर्त्तन—प्रत्येक राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक आलोड़नके पीछे एक महत्-जीवनका प्रकाश-केन्द्र होता है। उस प्रकाश-केन्द्रके सान्निध्य और संस्पर्शमें आनेपर मनुष्य-जीवनमें परिवर्त्तन आ जाता है। वह मृत्युपथसे अपने आपको बचानेका राजपथ ही नहीं प्राप्त करता वरंच महामानव प्रदर्शित विधिके अनुसार राष्ट्रको भी जीवन और वृद्धिका पथ बतलानेवाला पथप्रदर्शक बन जाता है।

सरकारी अधिकारी क्या कहते हैं, कैसी रिपोर्ट भेजते हैं इसके प्रति ठाकुर भ्रूक्षेप भी नहीं करते। उनके निकट जो ही जाता है उसकी अन्तर्निहित सम्भाव्यता, शक्ति और प्रकाशकी ओर दृष्टि रहती है उनकी, कालेपनकी ओर नहीं। आप कहते हैं—'कोई आदमी अन्तरसे काला नहीं होता। सब अमृत-सन्तान हैं। सबमें ईश्वरीय-ज्योति छलकती रहती है। दया,प्रेम, त्यागकी शक्ति सबमें भरी हैं। केवल पारिपार्श्विक संघात और प्रवृत्ति परवशताकी राखके नीचे वह शक्ति छिपी रहती है। उस राखको हटाते ही अग्निकण प्रज्वलित शिखामें परिवर्त्तित हो जाते हैं। आवश्यकता है मनुष्यकी उस ढकी अन्तर्निहित शक्तिको जगानेकी। इसीसे मैं किसीको अपनेसे हटा नहीं सकता—दूर नहीं कर सकता। कोई चोर हो, लम्पट हो या साधु हो मैं अपने आश्रयसे अलग फेंक नहीं सकता। मैं समझता हूँ, ये लोग मेरे निकट यदि रहेंगे तो कमसे कम समाजकी क्षति तो न करेंगे। मेरे साथ चाहे जो इच्छा हो करें, जितनी क्षति पहुँचाना चाहें पहुँचावें, किन्तु

आश्रयहीन होकर जब ये घुर्णावर्त्त मे पड़कर विलुप्त होने लगेंगे, उस समय इनको कौन बचावेगा ? तब ये आदमी कैसे बन सकेंगे ? मुझपर लाख कलङ्कका टीका लगे, लोग लाख बदनामी करें, किन्तु उसके विनिमयमें ये अच्छा हो सकें तो यही मेरा काम्य है। दोष देनेसे मैं कुछ छोटा न हूँगा और न तारीफ करने से बड़ा बनूँगा। मेरे यहाँ जो आवेंगे उन्हें खदेड़ूँगा भी नहीं। यहाँ चुन-चुनकर आदमी नहीं लिये जाते। विचार करके आदमी को लिया जाय तो कम्बलके रोएँ की भाँति सभीको छाँट देना पड़ेगा। इसलिये जो जैसा है उसको वहींसे भला बननेकी चेष्टामें सहायता प्रदान करता हूँ। मेरे जीवनकी एकमात्र कामना यही है।'

दोष-गुणका विचार करके यदि प्रभु ईसा मेरी मैक्डोनलका परित्याग कर देते तो वे त्राणकर्त्ता कैसे कहलाते ? उनके प्रेम-संस्पर्शमें आकर उस पतिताके भीतरसे पातित्य ही दूरीभूत नहीं हुआ वरंच वह प्रातःस्मरणीया देवी पदपर विराजित हुई।

इन समस्त बातोंको देखते हुए यही प्रश्न उठ सकता है कि तब आप क्या अन्तर्यामी हैं ? वह अन्तरका नियन्त्रण करनेमें समर्थ हैं इसीसे वह अन्तर्यामी हैं। किन्तु उसके निमित्त अन्तर प्रस्तुति तो चाहिये। आप सब कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं जानते। वे ज्ञाता भी हैं अज्ञानी भी हैं, उनमें प्रकाश और अन्धकार दोनों हैं। यही उनका वैशिष्ट्य है। आप उनमेंसे प्रकाश निकालिये या अन्धकार। किन्तु निकालना आपपर निर्भर करता है। आप कहते हैं कि मैं समझता हूँ, किन्तु जानता नहीं। आपलोग जितना कहते हैं बस उतना ही जानता या समझता हूँ। 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञत्व बीजं।'—उनमें सर्वज्ञत्वका बीज निहित हैं। वृक्षके वृक्षत्वका रहस्य वह जानते हैं। किन्तु उस बीजसे फल

लेना हो तो अनुरागवारिसे उसे उद्भिन्न करना होगा। किंवा यदि कभी मौजमें आकर वह दयापरवश हो जायँ।

तब आपका मौज सबपर क्यों नहीं होता ? सबमें परिवर्त्तन क्यों नहीं लाते ?

इसके उत्तरमें उनका कहना है—"जिस अवस्था और जिस स्तरमें चढ़कर change या परिवर्त्तन लाया जाता है–उस अवस्था और स्तरपर पहुँचनेपर विशेष परिवर्त्तन लानेकी इच्छा नहीं होती। किसीमें परिवर्त्तन लानेकी इच्छासे उस अवस्था और स्तरपर अपनेको ले जानेके उपरान्त यह दीख पड़ने लगता है कि विश्वकल्याणसाधन करनेमें इस विशेष परिवर्त्तनकी क्या आवश्यकता है ? उस समय आपके इस life या जीवनपर ही दृष्टि निबद्ध नहीं रहती। उसका भूत और भविष्य-जीवन भी आँखोंके सामने चमकने लगता है। उस अवस्थामें सहसा परिवर्त्तन लानेकी आवश्यकता दीख नहीं पड़ती।

इस दृष्टिका प्रत्यक्ष प्रमाण उस दिन मिला जिस दिन आपने अपने शिष्यके दोषके लिये अपने आप शरीरपर बेतोंसे पिटवाना आरम्भ किया।

कुष्टियाके क्रान्तिकारी युवक वीरू रायने दीक्षा लेकर छिपकर शराब पी ली। शराब पीनेकी पुरानी आदत थी। पुराने साथियोंने मिलकर जशन मनाया और इनको भी पीनेको बाध्य किया। बेचारे कहते ही रहे "देखो भाई ठाकुर अन्तर्यामी हैं उनसे कुछ भी नहीं छिपा रहता। मैं शराब न पीऊँगा।"

साथियोंने जबर्दस्ती की। सिंगर कम्पनीके मैनेजरने एक ग्लास पिला ही दिया। पी लेनेके बाद आप सो गये, दूसरा न जान सका। सबेरे सतीशचन्द्र जोआड़दारसे ठाकुरने कहा कि 'वीरूको धर तो ला, आज उसके अत्याचारका बदला लूँगा।'

ठाकुरके पास आकर आपने सब दोष स्वीकार कर लिया।

पैर थर-थर काँप रहे थे उनके। डाक्टर सत्तोदत्त वहीं बैठे थे। उनसे ठाकुरने कहा—'इसको तो फल भोगना ही होगा, किन्तु वह तो सहन न कर सकेगा। इसलिये आप तीन बेंत मुझको मारिये।'

बेचारे शिष्यगण प्रार्थना करने लगे, अपने ऊपर मार खानेको तैयार हो गये। ठाकुरने कहा—"तब तो यन्त्रणा और भी बढ़ जायगी। आप उठिये और जोरसे तीन बेंत मारिये।"

ठाकुरके नितम्बमें बेत मारा गया। वीरूराय और उपस्थित भक्तगण रो पड़े।

चतुस्त्रिंशत् अध्याय

उपर्युक्त वातावरण और संघात सृष्टि करते रहनेसे उनमेंसे विषमयकारी अवदान प्राप्त किया जा सकता है। अभीतक मानव-मस्तिष्कने खानोंसे कोयला आदि पदार्थों को ही निकाला है। वैज्ञानिक बुद्धि इससे अभी अधिक आगे नहीं बढ़ी है। किन्तु महापुरुष, महामानव और अवतारोंके भीतर जो अमूल्य रत्न-राशि है उसके खननका विज्ञान अभीतक आविष्कार न कर सका। अपने ही आविष्कारमें मनुष्य विह्वल और विमूढ़ पड़ा है। महा मानव या जीवन्त ईश्वरके मस्तिष्कके अतल-तलका अभी स्पर्श तक न किया गया। उस अतल-तलका जिस दिन टैपिंग प्रारम्भ होगा उस दिन प्राकृतिक जड़ पदार्थोंसे निकलनेवाले सम्पदोंसे भी करोड़ गुनी महामूल्यवान् शक्ति और रत्न-राशि पानेको अधिकारी बनेगी मानवता। वहाँसे केवल मूल्यवान् शक्ति और रत्न-राशि ही नहीं पाई जा सकती वरञ्च अपने जीवनकी सुनिश्चित योजना भी पायी जा सकती है।

ठाकुर घसीट-घसाटकर प्रवेशिकाके द्वार तक तो जा सके, किन्तु प्रवेश करनेमें भी असमर्थ रहे। ऐसे आदमीसे लोगोंने अंगरेजीमें वाणी देनेकी प्रार्थना की। इसकी विश्वजनीन उपयोगिता दिखलाई। जो एक लाइन शुद्ध अंगरेजी न बोल सकता हो वह वाणी दे तो कैसे? महीनों लोग प्रार्थना करते रहे। बार-बार की प्रार्थनापर हृदय द्रवित होने लगा।

एक दिन अप्रत्याशित भावसे ठाकुरके मुखसे वाणी निकलने लगी। एक स्वर्ण पदक प्राप्त एम०ए० ने लिपिबद्ध करना आरम्भ किया। ठाकुरके मुखका रंग बदला हुआ था, आँखें आकाशकी ओर कभी इधर तो कभी उधर देख रही थीं। मुखसे दो-दो चार चार शब्द निकल रहे थे। किन्तु शब्दोच्चारण धीरे-धीरे और स्पष्ट

कण्ठसे हो रहा था। काँपते हाँथोंसे लिख रहे थे आप। लिपि-बद्ध करते समय अर्थ बिल्कुल समझमें न आता था, उसका अर्थ भी है यह समझना भी कठिन था। पीछे पढ़नेपर ज्ञात हुआ कि एक अपूर्व दर्शन निर्मित हुआ है। यह वाणी महीनों निकलती रही। वह मेसेज नामसे पुस्तकके रुपमें प्रकाशित हुई है। उस पुस्तककी प्रथम वाणी है—

The booming commotion of Existence that rolls in the bosom of the Beyond, evolves into a thrilling rhyme and upheaves into a shooting Becoming of the Being with echoes that float with an embobiment of Energy that is Logos, the Word---the Beginning !

आपनें अंग्रेजीमें वाणी कैसे दी? आपसे जब यह प्रश्न किया जाता है तब आप कहते हैं कि "अक्षरके रूपमें एक-एक करके शब्द मेरी आँखोंके सामने चमकते हुए प्रकट होते हैं। मेघके एक-एक टुकड़े जैसे आकाशमें भसते हुए आते हैं किंवा मछली जैसे एकके पीछे एकके झुण्डमें चलती हैं उसी प्रकार अक्षर मानस-पटपर भासमान होने लगते हैं। उनके प्रकाशमें ऐसी चमक रहती है जिससे आँख खींच जाती है। वही आपलोगोंसे बोलता रहता हूँ। उसका अर्थ क्या है यह मैं नहीं जानता।"

वाणी निकलनेके साथ ही साथ यदि न लिख ली जाय तो अर्थ निकलना किंवा दूसरा शब्द बैठाना कठिन हो जाता है—शब्द विन्यासमें गड़बड़ी हो जाती है।

एक दिन विज्ञान सम्बन्धी आलोचना होने लगी। पदार्थवेत्ता वैज्ञानिक श्रीकृष्णप्रसन्न भट्टाचार्य प्रश्न करने लगे। ठाकुर विज्ञान-का पारिभाषिक शब्द नहीं जानते। किन्तु उनके उत्तरको सुनकर प्रश्नकर्त्ता विस्मित हो गये। सूक्ष्मातिसूक्ष्म यन्त्रोंकी सहायतासे जिस वस्तुका अभी वैज्ञानिक अन्वेषण चल ही रहा है उसको चर्म-चक्षुसे यह कैसे बतलाते हैं? जहाँपर विज्ञान अनुमानके

आधारपर खड़ा है वहाँपर इनकी नग्न दृष्टि कैसे पहुँच जाती है ? क्या ऐसे ही व्यक्तिको द्रष्टा पुरुष कहा जाता है ? ऋषि शक्ति इसी प्रकारकी होती है ?

साधकके जीवनमें सूक्ष्म शक्तियोंका स्फुरण होता है। वे शक्तियाँ बहुत ही अद्भुत होती हैं। किन्तु उनके तिरोधानके साथ-साथ वे शक्तियाँ भी लुप्त हो जाती हैं। उस साधना लब्ध-शक्तिकी फलप्राप्तिसे मानवता वंचित रह जाती है। किन्तु वैज्ञानिक यन्त्रोंकी सहायतासे उन साधन-लब्ध-शक्तियोंको संग्रह करनेका प्रयत्न हो तो उस शक्तिसे मानवता वंचित न हो पायगी। उस संग्रहीत साधना लब्ध-शक्तिका प्रयोग कर अतुल जन-कल्याण किया जा सकता है। कोई वैज्ञानिक यदि साधक भी हो तो वह असाध्य साधन कर सकता है।

इस कार्यको पूरा करनेके निमित्त उन्होंने विश्व-विज्ञान-केन्द्र खोला था।

मन्त्रशक्तिसे ठाकुरने मृत जीवोंके शरीरमें प्राण संचारित किया था। उन्होंने उस शक्तिका प्रयोग सिखलाना आरम्भ किया। एकाग्र मनसे मन्त्रका जप-ध्यान करनेसे साधकके सर्वाङ्गमें जीवनी शक्ति क्रिया करने लगती है। उसके तीव्र हो जानेपर रोगीके शरीरका स्पर्श किया जाय तो विद्युत्प्रवाहकी नाईं वह शक्ति प्रवेश करती है। नाम-ध्यान द्वारा प्राप्त साधकके इस मन्त्र-शक्तिको यदि सूक्ष्म वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा संग्रह किया जाय तो मानवताका महान कल्याण साधन होगा। असाध्यसे असाध्य रोग अच्छे हो सकती हैं। मस्तिष्क विकासके सामूहिक प्रयोगमें भी लाभदायक हो सकता है। दुनियाभरकी शिक्षण संस्थाएँ मिलकर भी इसके बराबर मानव-विकासमें मुकाबला नहीं कर सकतीं।

अनुकूलचन्द्रने अपने वैज्ञानिक शिष्योंको इसके अन्वेषण, आविष्कार और प्रयोगमें लगाया। इसके जरिये एक ऐसे यन्त्रके

निर्माण करनेमें समर्थ हुए जो जीवनी-शक्तिका परिमाण बतलाता था।

मृत और रुग्ण शरीरमें नवजीवन संचारण करनेके लिए उन्होंने 'लाइफ रिसर्च सोसाइटी' नामक एक संस्था खोली थी। इसके सदस्य-गण मन्त्र-शक्ति द्वारा रोगीकी चिकित्सा करने लगे। कुष्ठिया नगरमें इसका एक अस्पताल भी खुला था। अस्पताल खुलनेके प्रथम दिन ही दो रोगियोंकी भर्त्ती हुई। एक रोगी ज्वर न्यूमोनिया, और पेशाव-पायखानासे खून गिरना आदि रोगोंसे आक्रान्त था और अपर रोगी ज्वर और प्लोरो न्यूमोनियाका मरीज था। ठाकुरके शिष्य घुघुरअली प्रधान चिकित्सक थे। उनकी सहायता कर रहे थे डाक्टर गोकुलनन्दी और डाक्टर सतीशचन्द्र। प्राण-केन्द्रपर उँगली रखकर चिकित्सा हो रही थी। चौबीस घण्टेतक चिकित्सा होनेमें दोनों सम्पूर्णतः अच्छे हो गये। इसके अतिरिक्त भी बहुत प्रकारके रोगियोंको वहाँ अच्छा किया गया था।

श्वासावरोध, फाँसी लग जाना, विष प्रयोग आदि आकस्मिक मृत्युकी शब्द और प्रकाश-शक्ति-द्वारा तात्कालिक चिकित्सा की जाय तो मृत्युपर विजय प्राप्त हो सकती है।

हवासे बिजली निकालनेकी भी ठाकुरने विधि बतलायी थी। वायु-मण्डल और पृथ्वीके बीच विद्युद्ग्राही तार और पोलके सम्बन्ध करनेसे बिजली निकल सकती है। विभिन्न प्रकारके तारोंको गुड्डीमें बाँधकर प्रयोग किया गया था। गुड्डीके जरिये वायुसे बिजली निकालनेमें समर्थ भी हुए थे।

प्रकृतिदेवीकी गोदमें ही भारतीय संस्कृति और विद्यानिकेतन पल्लवित होते आये हैं। अवतारी महापुरुषोंकी समस्त लीला वननिकुञ्जोंमें ही होती आयी है यहाँ। भारतवासी बसन्तपूजाके समय वनमहोत्सव मनाया करते थे। इसका कारण क्या है?

वृष्टि अधिक होती है। अधिक क्यों होती है? टाकुरने उत्तर दिया—'पृथ्वीके साथ जबतक जलका सम्बन्ध रहता है तबतक वह रहता है negatively charged. किन्तु वाष्प होकर हवामें मिल जानेके उपरान्त वह Positively charged हो जाता है। हवामें मिलनेके साथ-साथ वह कणोंके रूपमें उड़ने लगता है।'

वृक्षका सम्वन्ध पृथ्वीसे रहनेके कारण वह भी negatively charged रहता है। किन्तु जिस समय वह highly charged होकर जल-कणका आकर्षण करने लगता है, उस समय जल-कण positively charged रहनेके कारण गुच्छ बाँधकर आनेको बाध्य होते हैं। जहाँपर अधिक जंगल या पहाड़ होता है वहाँपर जो अधिक वर्षा होती है उसका कारण यही है। मरु-भूमिमें गाछ-वृक्षका अभाव रहता है इसीसे वहाँपर वर्षा नहीं होती। किसी प्रकारसे गाछ-वृक्षकी शिराको यदि highly negative से charge कर दिया जाय तो मेघ बन कर वृष्टि होनेको बाध्य होगी।"

प्रकृति द्वारा लालरंग कैसे निकाला जा सकता है इसके विषय-में ठाकुरने बतलाया था—"सूर्यकी किरणके साथ जो कमलकी पंखुड़ियाँ खिलकर लाल हो जाती हैं क्या इसका कारण समझते हो? स्थल कमलमें कोई एक वस्तु है जो सूर्यसे degree of vibration को absorb करती है। उसीके effect से कमल लाल वर्णका हो जाता है। कोई यन्त्र ऐसा निकाला जाय जिसमें सूर्यसे निकलनेवाली कम्पनको absorb करनेकी शक्ति हो तो nature से प्रचुर परिमाणमें लाल रंग तैयार किया जा सकता है।—जगतमें एक ऐसा central point है जहाँसे दुनियाके समस्त magnetic forces का आकर्षण किया जा सकता है। उस point को पकड़कर सारे संसारको विद्युत्प्रकाश-से आलोकमय किया जा सकता है।

स्व० श्यामाचरण मुखोपाध्यायने श्रीश्रीठाकुरके निर्देशानुसार जन्मान्तरके विषयमें गवेषणा की थी। वैज्ञानिक होनेके कारण आविष्कार कार्यमें बहुत सफलता मिली थी उन्हें। उन्होंने एक ऐसे यन्त्रका आविष्कार किया था जो आदमीकी मानसिक अवस्था और प्रवृत्तिके स्वरूपको बतला देता था। इसके अतिरिक्त एक ऐसा supersensitive lens भी तैयार किया था जो etheric जगतमें विचरण करनेवाली आत्माओंको खींच लेता था। इसके उपरान्त उनसे सम्भाषण करनेके यन्त्र निर्माण करनेमें आप लगे थे।

इथरिक जगत्की आत्माओंके खींचने और बातचीत करनेके अतिरिक्त उन्होंने पूर्वजन्मकी बात जाननेवालोंकी भी भारतवर्ष भरमें खोज करायी थी। इस कामके लिये नियुक्त हुए थे श्रीसुशील-चन्द्र वसु, बी०ए०। इन्होंने प्रान्त-प्रान्तमें घूम-फिर कर बहुत जातिस्मरोंकी खोज की थी। खोज करनेके उपरान्त उनके कथनों के सत्यासत्यकी जाँच करके बहुत विशाल रिपोर्ट भी तैयार किया है। इस खोजमें ऐसे मुसलमान लड़के भी मिले थे जो पूर्व जन्म-की बात बतलानेवाले थे। मुसलमान लोग पूर्वजन्मकी बात नहीं मानते इसलिये उन बच्चोंकी भयानक अत्याचार झेलना पड़ता था। इस प्रकार पूर्वजन्मके विषयमें पक्का प्रमाण संग्रहीत हुआ था।

ठाकुर स्वयम् पूर्वजन्मकी बातोंको जानते हैं। उन्हें आजतक विभिन्न जन्मोंकी बातें स्मरण हैं। इस जन्मके विषयमें विवरण देते हुए कहा कि 'एक आलोक-धाराके रूपमें मैं सूर्यलोकमें उतरा। सूर्यका भीतरी अंश पृथ्वीकी भाँति ठण्डा है। सूर्यलोकमें निवास करनेवाले जीव विभिन्न प्रकारके हैं—उसे शब्द द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता।···सूर्यमें होकर जब आ रहा था। उस समय ज्योतिः पहाड़ दीख पड़े जो Positive थे। सर्वदा चतुर्दिक विकास करते हुए बिच्छुरित हो रहे थे। उसके उपरान्त विभिन्न

ग्रह-उपग्रहोंके भीतरके मार्गसे आ रहा था। आते समय वहाँके अधिष्ठात्री देवतागण स्तवपाठ कर रहे थे! उस स्तवध्वनिको सुनकर उन्हें छोड़कर आनेकी इच्छा न होती थी। आते-आते एक स्थानपर पाँच तारे दीख पड़े। उनमेंसे एक तो एक ही जगह पर स्थिर था, किन्तु अन्यान्य उसके चतुर्दिक चक्कर देते थे। नभ-मण्डलके प्रत्येक ग्रह अपने-अपने सूर्यके चतुर्दिक घूमते रहते हैं। किन्तु इस स्थानपर ही व्यतिक्रम होता दीख पड़ा। केन्द्रकी ओर जाते समय उनका रंग लाल हो जाता और दूर होनेपर वे नीले रंगके हो जाते थे। उनकी इस गतिभंगीके प्रति मेरा मन भी आकर्षित हुआ था, इसीसे वह पूर्णतः स्मरण है। इसके उपरान्त मातृ-गर्भमें प्रवेश किया। इस बातको मैं जानता था कि नाम ही मेरा Basis है। इसलिये मातृ-गर्भमें रहते समय भी नाम जपता था। जन्मोपरान्त देखा कि प्रसूतिका-गृहमें एक दीपक टिमटिम जल रहा है और मैं नाड़ियोंके मध्य लिपटा पड़ा हूँ। इसको देखकर हँसी आ गई। नाड़ी काटनेके बाद माँ जब सेकनें लगी तब बहुत कष्ट हो रहा था, इसलिये रोता रहा।···इसके भीतर कहीं तनिक भी gap नहीं, from beginning to end a series of process चलता आया है।'

अपने इस स्मरणकी भित्तिपर ही जन्मान्तर सम्बन्धी गवेषणा और जाँच करायी थी। अपने शिष्योंको जातिस्मरता लाभ करने-के निमित्त आपने स्मृति-वाहीचेतना जाग्रत करनेकी विधि बतलाई थी। उस विधिका अवलम्बन कर विस्मृत जीवनसूत्रको स्मरण करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। इसमें स्मृतिशक्तिको भूतके अतल-तलमें निक्षेप करनेकी विधि बतलाई गयी है।

ठाकुरने रसगुल्लाकी तृष्णाके साथ युद्ध करते समय बहुतसे पेड़ पौधोंके रसका आस्वादन किया था। बहुत छोटेपनसे कारण जाननेका विशेष कौतूहल रहता आया है उनमें। एक ही पृथ्वीपर

विभिन्न प्रकारके जो वृक्ष-लतादि जन्म लेते हैं इसका कारण क्या है जाननेमें व्यस्त रहते थे। पौधोंको जड़से उखाड़-उखाड़कर देखते और कारण जाननेका प्रयत्न करते रहते थे। इतने प्रकारके फल-फूल कहाँसे उत्पन्न होते हैं, इतने प्रकारके रूप, रस, गन्ध एक ही प्रकारकी पृथ्वीसे कैसे निकलते हैं इसके जाननेमें व्यस्त रहते थे। बहुत दिनके बाद पता चला कि सब करामात बीजका है। बीजके वैचित्र्यके कारण यह विचित्र जगत् दीख रहा है यह बात उनके शिशु मनने बचपनमें ही आविष्कार किया था। डाक्टरी पढ़नेके बाद तो वनौषधि भी प्रस्तुत करने लगे थे। इन सबके सहारे बहुप्रकारके प्रतिशोधक और लाभकारी औषधियाँ भी आपने तैयार की थीं। उस सब औषधियोंके निर्माण और बिक्री का कार्यभार, सत्संग केमिकल वर्क्सपर है।

साधना सम्बन्धी अनुभूतियोंका जो विशद वर्णन आपने किया है वह कथा-प्रसंगे नामक पुस्तकके रूपमें छपा है। उन अनुभूतियोंका वर्णन करते समय आप अपनी माताजीसे भी उसकी सत्यताके विषयमें पूछते जाते थे। आप हाँ कहते-कहते बोल उठीं कि बस, इससे ऊपरकी बात मैं नहीं जानती। इससे प्रमाणित होता है कि मनमोहिनीदेवी भी उच्च कोटिकी साधिका थीं।

उसी कथा-प्रसंगेकी विशेष अनुभूतियोंको प्रसिद्ध साहित्यिक विभूति-भूषण मुखोपाध्यायको एक दिन पढ़कर सुनाया गया। शेषमें उन्होंने कहा कि "बहुत महापुरुषोंकी अनुभूतियोंके विषयमें सुननेका मुझे अवसर मिला है, किन्तु इतना सूक्ष्म वर्णन किसीमें नहीं पाया। अनुभूति सम्बन्धी इतना दिव्य साहित्य हो सकता है, यह मैंने स्वप्नमें भी न सोचा था।

ऐसी ही है आपकी चिन्तना शक्ति। चिन्ता और ध्यान करने में वे अपने मानवसत्ताको विस्मृत कर बैठते हैं। मनुष्य होनेका

आभासतक विलुप्त हो जाता है। भीतरी परिवर्त्तन होता है। जिस परिवर्त्तनको लानेके निमित्त युग-युग साधकोंको कठोर साधना करनी पड़ती है, वह महापरिवर्त्तन आपमें निमिष भरमें आ जाती है। उस आन्तरिक परिवर्त्तनके साथ-साथ उनमें शारीरिक परिवर्त्तन भी आता है। मुख, चक्षु, शब्दोच्चारण सबकुछ विचित्र हो जाता है।

यह परिवर्त्तन बाहरी अनुष्ठानिक परिवर्त्तन नहीं, चिन्ताकी एकाग्रतासे यह दिव्य-शक्ति मनुष्यके मनमें जन्म लेती है। यह वो शक्ति है जो मनुष्यको कीटसे भगवानतक बना सकती है। इसकी प्रेरणासे तृण, तरु, पल्लव, इस विश्वके प्रत्येक पदार्थमें आत्मरमण कर सकता है।

विज्ञान धर्मी इस अविश्वासके युगमें, लोक चक्षुसे दूर पद्मातटवर्ती कुटीर-प्राङ्गणमें आजसे अर्द्ध शताब्दि प्रथम वही महापरीक्षण चल रहा था। आधुनिक युगका सर्वश्रेष्ठ परीक्षण चल रहा था पावना सत्संग आश्रममें। यह परीक्षा यन्त्र शक्तिकी परीक्षा न थी मानव-मनके शक्तिकी परीक्षा। कौन-कौन दिव्यशक्ति इस क्षण-भंगुर मनुष्य शरीरमें निहित है उसका नवीन रूप से आविष्कार आरम्भ हुआ था।

ठाकुरका देह, मन और भंगी अज्ञात ही बदल जाता। जैसे ही सोचना और चिन्तना आरम्भ करते, वैसे ही आविर्भाव हो जाता।

एक दिन मातृभाव अन्तरमें जागृत हुआ। देखते-देखते अपने अस्तित्वका ज्ञान विस्तृत हो गया। छातीसे मातृ-दुग्धका स्राव होने लगा।

मनोनिवेश करके एकाग्र दृष्टिसे किसी जीवके प्रति देखते-देखते आप सम्पूर्णतः तदभावापन्न हो जाते। उस जीव शरीरमें प्रवेश कर तदरूपमें अपनेको आरोपित कर देते हैं। उस समय

उनकी आँखोंका रूप-रंग ही नहीं बदल जाता बरंच वे अपने शरीरका ज्ञान तक भूल जाते हैं। एक बार मरे पशुका माँस खाते हुए एक गिद्धपर आपकी दृष्टि पड़ी। कुछ ही देर बाद आपको अनुभव हुआ कि आप उस गिद्धके रूपमें रूपान्तरित होकर सोल्लास मांस नोंच-नोंचकर खा रहे हैं। गिद्धत्व प्राप्त होनेके उपरान्त मांसका स्वाद अच्छा ही नहीं ज्ञात हुआ वरंच उसमें तत्व भी मालूम पड़ा। उसी तत्वका आहार कर गिद्धकी आयु और दृष्टिशक्ति दीर्घ हो जाती है। इसके कुछ ही देर बाद मालूम पड़ने लगा कि मनुष्य-शरीर छूट जायगा। इसीके साथ सम्वित फिरा–तब तो गिद्ध योनि भुगतनी पड़ेगी। स्मरण होनेके साथ ही साथ आत्मस्थ हुए और शरीरमें फिर आये। इस अनुभूतिके द्वारा आप जान सके कि मृत्युके उपरान्त भी मृत शरीरमें कुछ ऐसे तत्व रहते हैं जो मृत प्राणीको अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं।

एक दिन ज्योत्स्नापूर्ण रात्रिमें टहल रहे थे। ज्योत्स्नाका शुभ्र रूप देखकद नयन उधर आकर्षित हो गये। जब तक चन्द्रमा दीख पड़ा उसकी ओर देखते रहे। अब वह सौन्दर्योपासक नयन नित्य चन्द्रको देखने लगा। एक दिन अकस्मात् दृष्टि निबद्ध हो गई और ज्ञात हुआ कि आप चन्द्र-मण्डलमें प्रवेश कर गये हैं। वहाँके गाछ-वृक्ष अपेक्षाकृत दीर्घ दीख पड़े, उद्भिजके उद्भिन्न होनेमें बाधा कम दीख पड़ी, मध्याकर्षणकी कमी ज्ञात हुई।

उस दिन भी विज्ञान-सम्बन्धी ही आलोचना हो रही थी। उपस्थित विज्ञानके आचार्योंसे आपने कहा—'देखिये, एक एटोम भकसे फटता है और millions of smaller atoms में छितरा जाता है। आकर्षण और विकर्षण वश ये छोटे-छोटे एलक्ट्रन दाना के रूपमें विभिन्न प्रकारका आकार बनाकर पुनः बँधना आरम्भ करते हैं। किन्तु ये सब भी originate करते हैं एक अन्य छोटे दानासे। मानो वह छोटा दाना भी एक sub-electron हो।

उसके चतुर्दिक millions of smaller types of electrons व्याप्त हों। इस प्रकार फटते-फटते शेषमें वही एक छोटा दाना रह जाता है। उसी छोटे दानेसे सारे जगतकी सृष्टि हो रही है?' उस समय उनकी आँखें आकाशकी ओर निबद्ध थीं।

वैज्ञानिकोंने उपर्युक्त कथनकी सत्यताका परीक्षण आज तक के वैज्ञानिक अन्वेषणोंके साथ मिलाकर किया। एलेक्ट्रन और प्रोटनवादके विषयमें उन्होंने पुस्तकमें ही पढ़ा था, आँखों देखा न था। वैज्ञानिकोंने भी अभी तक इसका अनुमान ही किया था। बिना सूक्ष्म यन्त्रकी सहायताके उसका देखना असम्भव है। तब उस चीजको ये अपने चर्मचक्षुसे कैसे देख पाते हैं?

पंचत्रिंशत् अध्याय

आर्य-धर्म क्या है इस बातको बतलाते हुए आपने कहा—देशकी आवश्यकता क्या है, देशकी अवस्था कैसे ठीक होगी, स्वास्थ्य और सम्पत्ति मुल्कमें कैसे बढ़ेगी, दुर्बल राष्ट्रीय शारीरिक शक्तिको शीघ्रातिशीघ्र कैसे बलवान बनाकर इसको उठाया जा सकता है, आदि चिन्तनासे अनुप्राणित होकर जो गवेषणा और निर्माण होता है वैज्ञानिक गवेषणा वही कहलाती है। और आर्य-धर्म भी यही है।

समाज एक दिन अधर्म करनेसे डरता था। जबतक अधर्मसे भय था तबतक एक ओर लोग जैसे अधर्मसे बचकर चलनेका प्रयत्न करते थे वैसा ही धर्म-पालन करनेकी चेष्टा भी करते थे। ठीक इस समय लोगोंकी अवस्था उलटी हो गई है। जनसाधारणमें धर्मका आतंक छाया हुआ है। धर्म, साधु-संन्यासी, मठ-मन्दिर, गुरु-योगीके नामसे लोग डरते हैं। धर्मके नामपर विचित्र वसन, मूर्त्ति, राख-भभूतिपूर्ण जटा-जूटधारी साधु, त्रिशूल-चिमटा-कमण्डल, माला-तिलक यह सब तो हई है, इसके अतिरिक्त मल-मूत्र-मुर्दा-मदिरा आदि नाना प्रकारके भोग-राग भी हैं। स्त्रियाँ पातिव्रत धारण करके पतिगृहमें डरती रहती हैं कि कहीं पति संन्यासी बनकर हमको निरावलम्ब न छोड़ दे।

उधर जबसे राजनीतिने मनोविज्ञानके सहारे धर्मको अफीम कहकर खिल्ली उड़ाना आरम्भ किया है तबसे पठित बर्गने तो धर्मको उखाड़ फेंकना अपना कर्त्तव्य ही बना लिया है। युवक-युवतियोंने भोग-उपभोगका नारा लगाकर सतीत्व, पातिव्रतको कब्रमें डाल रखा है। एक ओर यह हो रहा है तो दूसरी ओर राजनीति धर्मके नामपर नारीहरण, मन्दिरविनाशन, खून-खराबी और नृशंस हत्याकांडको कराना आरम्भ किया है। इस अवस्था

में धर्मके प्रति लोगोंमें आस्थाका नाम न रह जाय तो असम्भव क्या ? तब धर्म क्या वस्तु है ? यह क्या असत्य है ?

यह संसार मिथ्या है, मायामरीचिका है, स्त्री-पुत्र कोई किसी का नहीं, सब कुछ स्वप्न और भ्रममात्र है। जो कुछ है मृत्युके उस पार है, स्वर्ग या जन्नतमें है। इसी प्रकारके नानावादमें पड़कर मनुष्य धर्माधर्मका निर्णय नहीं कर पाते। माता-पिता पुत्रको धार्मिक बनानेके लिए राम, कृष्ण, बुद्धका चित्र गृहमें टाँगते हैं, किन्तु हरदम भयभीत रहते हैं कि कहीं उसी रूपका जीवन न बना लें।

किसीने कहा गृहस्थ आश्रममें जीवन यापन करनेसे धार्मिक फलप्राप्तिकी आशा व्यर्थ है। इसलिए संन्यासी जीवन-यापन करना ही धर्म है। पिता-माता, स्त्री-पुत्रका त्याग कर संन्यासी बनना ही श्रेष्ठतम कर्त्तव्य है। इस प्रकार धर्मके नामपर धार्मिक व्यक्तियोंमें आतंक-सा छाया हुआ है। तब धर्म क्या है ?

ठाकुरने कहा—'जो सांसारिक जीवनमें असफल रहता है उसका आध्यात्मिक जीवन भी अन्धकारपूर्ण रहता है।'

आजतक समझा जाता था धार्मिक व्यक्तियोंके निमित्त सांसारिक जीवन नहीं है। धार्मिकके लिए सांसारिक जीवन विषवत् होता है। 'नारी नरककी मूल' होती है यही तो सर्वदासे सुननेमें आया है। पुनरपि मरणं पुनरपि जननं पुनरपि जननीजठरेशयनं। हरे-हरे भागो इस सांसारिक जीवनसे। फकीरी लो, संन्यास ग्रहण करो।—यही तो धार्मिकता गिनी जाती है। गृहस्थ-जीवनमें धर्म कहाँ है ? सांसारिक जीवनके हजारों फन्देमें रहते हुए धर्म कैसे हो सकता है ? ठाकुरने ही बतलाया है—

'अपने नित्य नैमित्तिक कर्मोंमें धर्मका प्रतिपालन करो।'

खाने-पीने, कमाने-अर्जने, मामला-मुकदमा इत्यादि कामोंमें

धर्म कैसे पालन किया जा सकता है ? तब धर्म किस चीजको कहते हैं ?

इस बार साफ शब्दोंमें उन्होंने धर्मकी व्याख्या दी—

'जो हमारे अस्तित्वको धरे रहता है, धर्म उसीको कहते हैं। इसलिए हमें वही कर्म करना चाहिये जिससे हमारा existence (अस्तित्व) सिर्फ अव्याहत ही न रहे, बल्कि पक्का हो जाय।'

थोड़ा और परिष्कार करते हुए उन्होंने कहा—

"The principal hankerings of Being are animation, extension and augmentation. Fulfil them by binding back with attachment to the Ideal, from dissipation into the surrounding phenomena through attractions that diverge and rend the being into bits—this the Religion, whether you call it so or not, that exalts Being and Becoming."

इस बातको और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—

'धर्म सर्व प्रकारसे होता है। दूसरोंके अस्तित्व एवं वृद्धिको अव्याहत रखते हुए आनन्द प्राप्ति, जीवन और सुख-सुविधाके लिये जो जो काम किया जाता है वह सब धर्म है।'

खेती-बारी करे या नौकरी-चाकरी, पोलिटिक्स लड़ें या पलङ्गपर लेटकर आराम करें, गेंद खेलें या हॉकी खेलें—सब कुछ तो सुख-सुविधा और आनन्द उठाने और जीवित रहनेके लिये ही करते हैं। वैज्ञानिक, इन्जिनियर, राष्ट्रीय सेवक, मजदूर किसान, किरानीतक सबके सब तब धार्मिक हैं। किन्तु इतना ध्यान रखना चाहिये कि—

'अन्ये वांचाय निजे थाके, धर्म बले जानिस ताके।' जो दूसरे को बचाता हुआ स्वयं बचा रहता है धर्म उसीको कहते हैं। दूसरे

के अस्तित्वको विपन्न कर अपने जीवित रहना जो चाहता है उसे धर्म नहीं कहते।

"If thou wishest to live, live tremendously with an uphill exuberence of life and light, smearing with service and worship—demanding least possible requisite from environment— that is required as a normal stand-you-on to move."

देशमें जीवन और प्रकाश प्रदान करो, देशको उन्नतिके शिखर-पर चढ़ाओ यही जीवन और अस्तित्वरक्षाकी एकमात्र धार्मिक विधि है। किन्तु इसके बदलेमें कमसे कम लेना—उतना ही लेना जितना तुम्हारी रक्षाके निमित्त आवश्यक हो। इससे अधिक लेने-का प्रयत्न तो दुर्बलता और विनाशका कारण बन जाता है—

"When the powerful fulfil their cravings by sucking the weak instead of nourishing them, weakness stands extending her jaws to the mighty with the thrilling power to devour."

अपने परिवार, ग्राम-मुहल्ले, पड़ोस, परिवेश, समाज, राष्ट्र सबकी पूज्य भावसे सेवा करो। बढ़ाओ, उन्नत करो, विकसित करो सबको। कारण इन्हींके कारण तुम्हारे भीतर बोधशक्तिमें जागरण आती है। 'जो प्रत्यक्षकी उपेक्षा, अवज्ञा, अग्राह्य और अवहेला कर परोक्षका आलिंगन करने दौड़ते हैं प्रकृति उन्हींको धिक्कार देती है। परोक्ष द्वारा जिसके प्रत्यक्षका रूप पोता जाता है, उपेक्षित और लांछित होता रहता है वही छलनाका शिकार होता है। कारण,—

"Environment is that which rouses us by impulses, keeping our consciousness awakened."

इसलिये सम रूपमें सबकी जीवन-वृद्धि उन्नत और विस्तीर्ण होती जाय वही काम करो। इसीको धर्म कहते हैं।

"जा करले बाँचा बाड़ा समन्वये बेड़ेइ जाय,
ताकेइ जानिस धर्मबले धर्म्म थाके आर कोथाय ?"

इस उत्थान-पतन, विपत्ति और मृत्युके स्रोतमेंसे जीवन और वृद्धिके अमृतत्वको पाना ही तो धर्म है। पूजा-अर्चना, जप-ध्यान, दान-पुण्य सब करते हैं, किन्तु पड़ोसी जीवन ज्ञान-विज्ञान और अर्थ-सम्पदासे पूर्ण नहीं होता तो यह वन्दना कैसी ?

"बाँचा बाड़ा निझूम हलो, पड़शी उछल हलोना।
ऐतेओ किरे बलते चास तुइ धर्म्म करिस वन्दना ?"

ऐसी पूजा-बन्दना और धार्मिकताकी भर्त्सना करके ही आप चुप न रहें। बल्कि कहा कि जिस कामसे जीवन और उसका वृद्धि-विकास क्षुण्ण होता है, उज्वल और उच्छल नहीं होता वह धर्म-कर्म पाप है अधर्म है—

"बाँचा-बाड़ा क्षुन्न जाते एमनतर निछक जा।
अधर्म्म ता हवेइ हवे पाप बलेइ तुइ जानिस ता ?"

ऐसे आचार-आचरणपर आत्म-प्रसादका अनुभव न करो। यह धर्म नहीं, भ्रान्ति है—पाप है। इस धर्मके गोरख-धन्धेमें न पड़ो! आज किन्तु ऐसे ही दुर्बल, स्तिमित, टिमटिमाते, शक्ति-हीन विपरीत आचरणको धर्म मानकर लोग प्रतिपालन करते हैं। ऐसा नहीं होता तो सतमें न्यास लेनेवाले लोक कल्याणके व्रती लाखोंकी संख्यामें जो सन्यासी देशमें भरे हैं उस देशकी जनता इतने कष्टमें क्यों पड़ी है ? ठाकुर इसके विपरीत पुकार करते हैं कि अरे धार्मिक—

"Roll on—like a flood over the sorrows, sufferings and calamities of the world,—with

love, sympathy and service and with the message of Beloved the Lord,—with a knowledge and activity that illuminates the way of the dull and detoriorating depressed,—flow on—extremely unresting and undisturbed."

धर्म करें या कर्म, किन्तु उसका स्पष्ट उद्देश्य तो रहना चाहिये। इस दृष्टिसे देखा जाय तो प्रथम जो उठता है वह जीवनके उद्देश्य के सम्बन्धमें। तब हमारे जीवनका उद्देश्य क्या है? 'भूमा प्राप्ति' ब्रह्मोपलब्धि, ज्ञान या सत्यलाभ, मुक्ति, निर्वाण आदि लोग कहते आये हैं। हम चुपचाप बिना समझे उसकी स्वीकृति देते आये हैं। हमने भी समझ लिया है कि जिस बातको न समझा जा सके उसीको धर्म कहते हैं।। जो बात ठीक तौरपर न समझी जा सके, उसी बातको सत्य न मानें तो क्या मानें? किन्तु ठाकुर कहते हैं–

'To live and to enjoy harmlessly' में ही मनुष्य-जीवन की सार्थकता है।'

जीवित रहने और कष्टरहित आनन्द उपभोग करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है। यह किसी वस्तुवादी दार्शनिक किंवा मनोवैज्ञानिककी उक्तिकी भाँति सुननेमें लगता है, धर्म्माचार्यकी तरह नहीं। किन्तु इतनेहीपर उन्होंने विरामका चिह्न नहीं दिया, आगे बढ़कर निष्काम कर्मकी व्याख्या करते हुए आपने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—

'हम लोगोंनें सिर्फ हड्डीतोड़ परिश्रम करनेके लिये ही जन्म-ग्रहण नहीं किया। वरंच कर्मके माध्यमसे परस्पर एक दूसरेके साथ आनन्द करने, संवर्द्धित होने और उपभोग करनेके लिये भी जन्म ग्रहण किया है, और उसी उपभोगको ईश्वरमें न्यस्त करके जीवन और जगतमें उनका उपभोग करना ही परम सार्थकता है।'

इसके प्रथम हम जानते थे कि ईश्वरको पाना हो तो ईश्वर-निर्मित रूप, रस शोभामयी सृष्टिके सब पदार्थोंको त्याग करना होगा। जीवनको सर्वप्रकारसे निचोड़ और सुखाकर सब कुछसे वंचित कर सकनेपर ईश्वरप्राप्ति सम्भव है। ठाकुरने कहा—'नारायण वृद्धिके आगार हैं। उनके भण्डारमें किसी चीजका अभाव नहीं। नरमें ही नारायण निवास करते हैं। इसलिये मनुष्य में भी वृद्धिप्राप्तिका स्वभाव भरा है। वह अभावमें क्यों रहेगा ?' अनन्तनाथ साधना करते-करते सूखकर लकड़ी हो गये थे। उनसे बोले—इस प्रकार सूखकर जीवन-यापन करनेसे नहीं चलेगा। नारायणका भजन करनेमें सूखना कैसा ? राजाका बेटा है राजसी भोजन कर। यह सूखा रूप लेकर उनके यहाँ जायगा तो उन्हें कष्ट न होगा ?

तोतापुरी रामकृष्ण परमहंसदेवको योग सिखाने बैठे। योग सिखानेके आरम्भमें शिक्षा देते हुए पुरीजी बोले—अल्पाहार और कृच्छ्र साधन करते हुए मनको ब्रह्ममें लीन करो। रामकृष्ण-देवने कहा—'सब करूँगा, किन्तु सुखाठी साधू न बनूँगा। मैं माँके भवनमें रहता हूँ। मैं खाऊँगा, पीऊँगा और फुर्ती करूँगा।'

ठाकुरने कहा—'ब्रह्ममें चरणशील रहना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मविद्को धरकर ब्रह्मविद् बनो। ऋषिको पकड़, दृष्टि पावेगा, ब्रह्म देखेगा। जितनी चाह होगी उतनी ही प्राप्ति भी होगी। चाहना जितना गम्भीर होगा, प्राप्ति भी उतनी ही वृहत्तर होगी।'

'ईश्वरको पानेमें सर्वस्वहारा बनना होगा। इसका भय न करो—उनको पानेका अर्थ है सब कुछको पाना।'

तब ईश्वरप्राप्तिका अर्थ है सर्वस्वप्राप्ति। किन्तु उनकी प्राप्तिका क्या अर्थ होता है ? श्रीश्रीठाकुरने कहा—

'तुम भगवान्‌को जितना या जैसा दोगे—वैसा ही तुम बनोगे। और बननेका अर्थ प्राप्ति है।'

खुलासा यह कि तुम वैसा ही बन जाओगे। अर्थात् तुम्हारे भीतर भी इतना ही भगवत् गुण प्रस्फुटित होगा। ईश्वरप्राप्ति चरित्रमें फूट पड़ेगी।

जीवन और जगत्में ईश्वरका उपभोग करो, ठाकुरने इस बातकी घोषणा की है। धर्मके साथ उपभोगका सम्बन्ध है इसकी क्या कभी कल्पना की गयी थी?

उपभोगका तब अर्थ क्या है? ठाकुर कहते हैं—'जो अस्तित्वको उत्फुल्ल बना देता है उसीको उपभोग कहते हैं।'

अर्थात् अस्तित्व हमारा जिससे उत्फुल्ल या ऊर्ध्वमुख हो उठता है वही उपभोग करना है। जीवनमें जिससे अवसन्नता और क्षीणता आ जाती है उसे उपभोग नहीं कहते। त्याग नहीं उपभोग। त्यागके विषयमें ठाकुरने कहा है—

'हमने त्याग करनेके लिये जन्म ग्रहण नहीं किया है। जन्म ग्रहण किया है समस्त ऐश्वर्य, सारे विश्वके जरिये उनका भोग करनेके लिये, और इस भोग द्वारा सच्चिदानन्दमें सार्थक होनेके लिये जन्म ग्रहण किया है। और इसकी जो-जो चीज अन्तराय है उसको त्याग करना चाहते हैं, सर्वदाके निमित्त फाड़कर फेंक देना चाहते हैं।'

सच्चिदानन्द अवस्थाप्राप्ति ही मनुष्य जीवनकी चरम परिणति है। उस सच्चिदानन्दमें सार्थक होने, उसके उपभोगके पथमें वाधा पहुँचानेमें जो कुछ आता हो उसको तोड़-फोड़ और त्याग करना होगा। महज त्यागके लिये त्याग नहीं। सच्चिदानन्दका रसपान करो। सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाओ—जीवनकी सार्थकता इसीमें है।

वैज्ञानिक तत्त्वकी आलोचना करते समय परीक्षा करनेके नाना प्रकारके सूत्रोंको भी बतलाया। शीशेके बोतलमें सूर्यकिरण अवरोध करनेकी विधि, कृत्रिम उपायसे जन्तु किंवा फलको शीशेके

बर्तनमें रखकर नियंत्रण किया जा सकता है, भ्रूणावस्थामें शक्ति द्वारा अन्यान्य जीव-जन्तु किंवा फलमें रूपान्तर कैसे किया जा सकता है आदि नव-नव विषयोंकी गवेषणाका सूत्र भी वैज्ञानिकों-को बतलाया। मानवीय इन्द्रिय-शक्ति एकत्रित और एकाग्र करके कहाँतक क्या किया जा सकता है इसको दिखलानेके लिए एक वैज्ञानिकके सामने दूर स्तिथ एक बेलकी डालपर आखें फेरीं। कुछ देर देखते न देखते वह डाल मचमचाकर गिर गयी।

इसी प्रकार अभ्रकके टुकड़ेको नलमें बाँधकर दूर टँगवाकर दृष्टि निक्षेप की। नल हिलने लगा।

शक्ति एकाग्र करनेके उपरान्त दूरदृष्टि और दूरश्रवण विधिको सिखलानेके निमित्त गाछ-वृक्षकी आड़ होकर चार मीलकी दूरीपर जानेवाली ट्रेनको निर्द्धारित समयपर देखने लगे। अपने साथ शिष्योंको भी दिखाना आरम्भ कराया। कुछ ही दिनोंके बाद चार मीलपर जानेवाले ट्रेनको देखने और उसकी आवाजको सुननेमें समर्थ हो गये लोग। इसीके साथ-साथ उन्होंने बतलाया कि एकाग्र शक्ति द्वारा दूरस्थित वस्तुपर भी प्रभाव डाला जा सकता है।

जिस जातिमें अन्वेषणात्मिका—अनुसन्धानात्मिका शक्तिका अभाव हो जाता है वह जाति भोग-प्रवण हो जाती है। भोग-प्रवण जाति मर जाती है। विज्ञान सुख-पूर्वक रहनेकी विधि सिखाता है—अमृत पथका निर्देश करता है। यही बात धर्म भी पूरा करता है। सच तो यह है कि विज्ञानका आमंत्रण करता है धर्म।

लोगोंमें धारणा हो गयी है कि विज्ञान और धर्म दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। इसका समन्वयकारी योगसूत्र निकालकर उन्होंने इसका खण्डन किया।

ठाकुरके वैज्ञानिक सूक्ष्म ज्ञानको देखकर श्रीप्रसान्त महलानवीस आदि वैज्ञानिक आश्चर्यमें पड़ गये।

आश्रमके निर्माणकी कहानी सुनकर तो आप लोग और भी विस्मित हुए। जमीन खरीदने, सड़क बनाने, बिजलीका तार लगाने आदि प्रत्येक कार्यमें प्रतिवेशी बाधा देते रहे। उनके निकट रहनेके लिये इतने शिष्य सपरिवार आ पहुँचे अब क्या किया जाय? दरिद्रताने जिसके गृहमें आसन जमा रखा हो, अभावको जिसने चिरसंगीके रूपमें ग्रहण कर लिया हो, खाना दोनों बेला जिसको जुटता न हो—उनके सामने हजारों आदमी-का प्रश्न आ उपस्थित हुआ। किन्तु ठाकुर विचलित न हुए। धीरतापूर्वक समस्याका समाधान करने लगे। धर्म-प्रचार और मानव-निर्माणका उद्देश्य लेकर डाक्टरीको लात मारकर कीर्त्तनके दुःख-कष्टका चिरमाल्य धारण किया था। इस बार उसी कीर्त्तन-प्रचारमें बाधा पड़ी।

निवास-स्थानके निमित्त जंगल काटना पड़ा। घर बनानेका प्रश्न उपस्थित हुआ। ईंट पाथनेमें लगे ठाकुर। तीन मील लम्बी सड़क कोयला ढोनेके लिये बनवायी। कोयलेकी भिक्षाके निमित्त लोग झरिया, कतरास आदि स्थानों पर भेजे गये। इधर रातभर मिट्टी काटी जाती और सारा दिन ईंट पाथा जाता। काम होता हरिनामकी तुमुल ध्वनिके बीच। ग्राम-निर्माण-कार्यमें आनन्द, उत्साह और स्फूर्त्तिका स्रोत खुल गया। अश्रान्त, अक्लान्त कर्मयज्ञ चलने लगा। नींद और परिश्रान्तिके स्तर तोड़े जाने लगे। होड़ लग गयी नींदसे युद्ध करनेकी। सप्ताह, महीना क्या छ महीनेतक झपकी न लेनेवाले सैकड़ों नर-नारी तो अब भी मौजूद हैं। प्रेमका आकर्षण, आदर्शकी उन्मादना, उद्देश्य-पूर्त्तिकी धुन और कार्यसाधनकी चिन्तनामें लोग निद्रादेवीको भूल गये। नस-नस, बोटी-बोटी, प्रत्येक कोषमें स्फूर्तितरंग खेलती रहती। हँसते, गाते, थिरकते हरिबोलका रव गुञ्जरित करते लोग महीना पर महीना काम करते गये।

मजदूरी—कैसी ? पैसा ? भिक्षाटन। भोजन ? चना-चबेना मुड़की ! खड़े खड़े खाना और काममें पिल पड़ना। काम, काम और काम। एक ही उन्मादना—धार्मिक केन्द्र कैसे संस्थापित हो। वहाँ हड़ताल, संघर्ष, दलबन्दी, पार्टी बन्दीकी बात कहाँ ? वहाँ था प्रेम-सहयोग, मिलन-संयोग। ऋषिकी छायामें ऋषिकुल आश्रम संस्थापित करनेकी उन्मादना !

श्रीश्रीठाकुर कभी मिट्टी कटवाते तो कभी आश्रमनिर्माणका नकशा बनानेमें सहायता करते। ईंट ढोते-ढुलाते, तो कभी गारा बनानेकी विधि सिखलाते। सभी तो विश्वविद्यालयके डिग्रीधारी थे। हाथ काम करनेका अभ्यस्त न थे। वे भी एक ऋषि, एक आदर्श, एक लक्ष्य, एक मन्त्र और एक तन्त्रकी केन्द्र भूमि बनानेमें पागल हो उठे। आचार्य, इञ्जीनियर, डाक्टर, वैज्ञानिक, ब्राह्मण, शूद्र, स्त्री-पुरुष निर्विशेष दिवारात्रि काममें जुटे रहते।

इसके फलस्वरूप नाना प्रकारके कार्यालय, अट्टालिका, निवास-स्थान, वर्कशाप, प्रेस, पथ, घाट आदि निर्मित हुए थे। उन सब चीजोंको देखकर और निर्माण कहानीके इतिहासको सुनकर सब मुग्ध हुए।

प्रशान्तबाबूने सब कुछ परिदर्शन करनेके उपरान्त कहा—'ठाकुरके साथ रवि बाबूका योगायोग अत्यावश्यक है।'

धनबल और विद्याबलसे रविबाबूने विश्व भारतीका निर्माण किया था और प्रेम और तपस्याके बलसे ठाकुरने बनाया था सत्संग-आश्रम। अन्यान्य आश्रम भी थे, किन्तु उनका निर्माण विदेशी अर्थ द्वारा हो रहा था। सब कुछ होते भी, प्रशान्तबाबूका यह कथन पूर्ण न हो सका—योगा-योगका अवसर न मिला। किन्तु यह योगसूत्र स्थापित हुआ था साहित्यके माध्यमसे।

तपोवन विद्यालयके अनुष्ठानमें उपन्याससम्राट् शरतबाबू आश्रम आये थे। ठाकुरके साथ उनसे साहित्यपर दीर्घ आलोचना

होती रही। शरतबाबूने कहा था कि, "स्त्रियोंके गुप्त जीवनका मेरे पास इतना पत्र आता है जिसकी हद नहीं। उसमें जो आत्म-स्वीकृति रहती है उसीके आधारपर मैं उपन्यास लिखा करता हूँ।"

ठाकुरने उत्तरमें कहा—मेरे निकट ऐसी-ऐसी बीभत्स बातों का लोगोंने कन्फेशन किया है कि कहा नहीं जा सकता। उसीसे समझता हूँ कि समाज कितना सड़ गया है। वायस्कोपके चित्रकी भाँति वे सब दृश्य नाचते रहते हैं। उसके प्रतिकारके लिये जो-जो आवश्यक मैं समझता हूँ वही करता हूँ।

समाज पच गया है, सड़ गया है यह बात सत्य है। किन्तु उस दुःखका चित्र, हताशाकी छवि,बिकृत मनस्तत्वकी अभिव्यक्ति दिखाकर हम जनताका उपकार नहीं कर सकते।

गठनमूलक चित्र जनताके सामने रखना ही साहित्यिकका दायित्व है। जिससे हताशाके बीच आशा, दुःखके मध्य शान्तिकी इङ्गित लोग पावें वही लिखना चाहिये। वास्तववादके साथ आदर्शवादका समन्वय करके दिखलानेसे लाभ नहीं होता। आदर्श चरित्र रूपायित करनेसे लोग उद्दीपना पाते हैं, कठिनाई एवं विनाशको प्रतिहत कर उठनेकी चेष्टा करते हैं। साहित्यिक यदि पाठकके मनमें आशा और भरोसाका बल न भर सके, कल्याणकी इङ्गिति प्रदान न करे तो उस साहित्यका मूल्य क्या?

शरतबाबूने स्वीकार करते हुए कहा—इस दृष्टिकोणसे कभी चिन्ता ही नहीं की। इतने जमानेतक चिन्ताधारा उलटी रही, अब इस शेष उम्रमें क्या वैसी रचना कर सकूँगा?

आश्रमसे लौटनेके उपरान्त शरतबाबूने विप्रदास लिखा था। ठाकुरके साथ हुई आलोचनाके प्रभावसे उन्होंने इसे लिखा था कि नहीं, कौन कह सकता है?

कवि श्रीकान्तिघोष दीक्षा लेनेके उपरान्त आश्रममें ही तपस्या

करते रहे। वीरवाणी नामक ग्रन्थकी रचना उन्होंने ठाकुरके निर्देशानुसार की थी।

श्रीयुक्ता राधारानीदेवी, अनुरुपादेवी, सरलादेवी चौधरानी और अन्यान्य लेखक, लेखिका और बंगभाषाके विशिष्ट साहित्यिकोंने आश्रममें आकर ठाकुरके साथ साहित्यपर बातें की थीं और उन्होंने जिस पुष्ट और बलिष्ट साहित्यका सृजन किया है उसकी उन्मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की। श्रीश्रीठाकुर रचित कतिपय ग्रन्थोंकी सूची यह है :—

अंगरेजी :—

The Message 9 Vol.
Magna Dicta
Lord's Prayer

बंगभाषा :—

चलार साथी
ताँर चिठि
सत्यानुसरण (बहु भाषामें अनुवाद हो चुका है)
नाना प्रसंगे—चार खण्ड
इसलाम-प्रसंगे
नारीर नीति
श्रीश्रीठाकुर औ देश-बन्धु चित्तरञ्जन
नारीर पथे
कथाप्रसंगे—तीन खण्ड
पुण्य पूँथि
अनुश्रुति छ-खण्ड
अमिय-लिपि
शाश्वती—तीन खण्ड
सम्बिती—तीन खण्ड
प्रार्थना

नाट्यकार योगेश चौधुरीने दीक्षा लेनेके उपरान्त अपना जीवन-नियन्त्रण ठाकुरके शिक्षानुसार किया था और आर्यसंस्कृति

भाव धाराको देशमें फैलानेके लिये नाटक कैसे लिखा जाय इसके लिये विस्तृत आलोचना की थी।

नाटकके विषयमें ठाकुरने कहा कि, "प्रत्येक जीवनमें जो glowing point रहता है नाटकमें उसीको प्रस्फुटित करके दिखाना चाहिये। नाटकीय ढंगसे महत्-जीवनकी घटनावलीको घात-प्रतिघात सृष्टि करनेसे नाटक नहीं होता। महत् जीवन पानेके पीछे कोई न कोई विशेष शक्ति जरूर रहती है। उसीके अनुरागसे जीवन महान होता है। उस विशेष शक्तिको प्रस्फुटित करके नाटक द्वारा प्रदर्शन करना चाहिये। उसीसे दर्शकोंको उद्दीपना मिलता है। दुःखान्त नाटक आदमीको दुर्बल बना देता है। भारतीय नाटकमें इसीसे सुखान्त नाटकका इतना समादर है।

देशकी विभिन्न समस्या और उसकी समाधान-प्रणालीको आप यदि नाटकीय संघातोंके माध्यमसे प्रदर्शन करें तो बहुत कल्याण होगा। समाज संस्कार और सुधार-कार्यमें नाटकके समान विशेष उद्दीपना सृष्टि करनेमें दूसरी कोई चीज सहायता नहीं करती।

नाट्याचार्य्य शिशिर बाबूको भी श्रीयोगेशचन्द्र आश्रम लाये थे। उनसे भी इस सम्बन्धमें विस्तृत आलोचना हुई थी। मनोरञ्जन भट्टाचार्य्यने भी आकर इस विषयमें बातें की थीं।

आश्रममें जो नाटक होता था उसके रिहर्सलमें स्वयम् उपस्थित रह कर प्रत्येक पात्रको अभिनय करने, अंग-भंगी और शब्दोच्चारण करनेकी ट्रेनिंग तक देते थे। जब तक ठीक तौरपर शब्दोच्चारण आदि करना न आता तबतक छोड़ते न थे।

आज भी आप नाटकके प्रति अभिरुचि रखनेवाले वाणी-मन्दिरके शिल्पियोंको प्रोत्साहित करते रहते हैं और स्वयं रातभर बैठकर अभिनय देखते रहते हैं।

कुछ सिनेमा शिल्पी, तारिकायें और प्रयोगकर्ताओंने भी आपसे

दीक्षा ली है। इनके साथ भी सिनेमा सम्बन्धी काफी आलोचना हुई है। किन्तु सबसे अधिक देशी यात्रागानको आप पसन्द करते हैं। इसके ऐसा जनतामें प्रभाव डालनेवाला दूसरा कोई खेल नहीं है। पौराणिक कथाओंका कुछ नये ढंगसे बनाकर यात्रा द्वारा प्रदर्शन हो तो उसका बहुत ही अच्छा फल होगा।

बढ़िया तौरपर जीवनयापन करना उनका सहजात संस्कार है। ढीला-सीला सिकुड़न, भद्दापन उन्हें सहन ही नहीं होता। बिछावनकी चादर यदि सुविन्यस्त न हो तो बैठ नहीं सकते, मसहरी ठीक तौरपर न टँगी हो तो नींद नहीं आती। पेवन्द, अपरिच्छन्न पहनावा सहन नहीं होता। यह विलास नहीं सुरुचि की अभिव्यक्ति है।

ललाटका सिन्दूर ठीक तौरपर न हो तो स्त्रियोंको ठीक करने के लिए लौटा देते हैं।

जोड़-जाड़, काम चलानेकी बात या सिकुड़न आदि बातें उन्हें अच्छी ही नहीं लगतीं। बाजार करनेका पैसा मिले तो वह दूसरे पैसेमें न मिलाया जायगा, जिस काममें खर्च करना है उसके लिये अलग रक्खा रहेगा। जबान देंगे तो जरूर पूरा करेंगे। जो काम करनेको कह दिया उसके न होने तक समग्र दृष्टि उसीपर रहती है। उसके पूरा न होने तक बेचैन हैं। उस कामके आगे शेष सब काम गौण रहता है।

छींकने या थूक फेंकनेके साथ ही साथ हाथ मुँहके सामने आ जाता है। कहीं दूसरेमें संक्रामक कीटाणु न चला जाय इसके लिये हाथ परिचालित होता है। शेषमें पानी और गमछेके लिये हाथ स्वयमेव प्रसारित हो जाता है। मानो अभ्यास मज्जागत हो गया है।

सामयिक भावसे भी प्रवृत्तिको प्रश्रय नहीं देते आप। आधिपत्य होनेतक जागरूक सैनिककी भाँति उसकी उपेक्षा करते हैं।

तृष्णाको काबूमें लानेके लिये तीन वर्ष तक उसपर कड़ी नजर रखा।

किसी चीजका उपदेश देना हो तो उसे स्वयं आचरण करनेके बाद उपदेश देते हैं। आचरण करके उपदेश देना ही उनका स्वभाव है। जिसका खुद आचरण न किया हो उसका कभी उपदेश ही नहीं देते।

आचरणशील आचार्य हैं आप। इसलिए उनकी वाणी मंत्र-शक्तिकी नाई क्रिया करती है। प्रतिकूल अवस्थाको अनुकूल बनाकर छोड़ते हैं। जीवनके हर क्षेत्रमें इसका उन्होंने प्रयोग किया है। यही कारण है कि उनकी बातोंको लोग तुरत स्वीकार कर लेते हैं।

जब जिस वस्तुकी चाहना हुई वह उसी समय मिलनी चाहिये। तुरत न मिले तो वेचैनी हो जाती है। रातों-रात जो इतने मकान बनते थे उसके पीछे यहि काम करता था।

पैरकी गति बहुत ही तेज होती है आपकी। यों तो बैठे रहकर जीवनयापन करते हैं किन्तु जब पैर उठाया तो दूसरोंको दौड़कर साथ करना पड़ता है। उसी प्रकारका उनका आमूल परिवर्तनकारी महाविप्लवीकी नाईं द्रुत प्रयास होता है। दस बीस हजार आदमीके साथ चलनेमें भी उनका सर सबसे ऊँचा दिखाई देता है। वह सबसे पीछेवाले यात्रीको भी दिखाई पड़ता है।

विख्यात ज्योतिषी मोहिनी मोहनजीने ठाकुरकी हस्तरेखा देखना आरम्भ किया। कुछ देरके उपरान्त उनके मुँहका भाव गम्भीर हो गया। इस प्रकार आप तीन दिनतक देखते रहे। तीसरे दिन हठात् ठाकुरके चरणोंपर गिर गये। कारण जिज्ञासा करनेपर बोले—"बड़े बड़े महापुरुषोंकी कुण्डली और हस्तरेखा देखी है। उन लोगोंसे इनका ग्रहादि बलवान नहीं है। किन्तु क्षण-क्षणमें हस्तरेखाका परिवर्तन कैसे हो जाता है यह न तो मेरी समझमें आता है न शास्त्रमें इसका कोई वर्णन ही पढ़ा है।"

षष्ठत्रिंशत् अध्याय

इस शतधा विभक्त हिन्दू समाजको संगठित और उन्नत बनानेका कौन-सा पथ है ?

"सारे समाजको एक आदर्शमें युक्त करना और अनुलोम क्रमिक रक्तका सम्बन्ध संस्थापन करना। इसी दो योग-सूत्रसे हिन्दू जाति उन्नत और संगठित हो सकती है।"

"अनुलोम असवर्ण विवाह बन्द हो जानेके कारण हिन्दू जाति विभिन्न जातिके संकीर्ण बन्धनोंमें बटकर शतधा-विभक्त और विच्छिन्न हो गई है। ब्राह्मण, कायस्थ, वैद्य, वैश्य, प्रत्येक जाति अपने आपको बड़ी समझती है। कोई किसीको नहीं मानता, किसीको किसीके प्रति श्रद्धा नहीं। अखण्ड जातिके रूप-में यदि एकबद्ध करना हो तो एक आदर्शप्राणता और अनुलोम असवर्ण विवाहका प्रवर्त्तन करें। शास्त्रने इस विवाहका अनु-मोदन किया है। जिस दिनसे अनुलोम असवर्ण-विवाहको बन्द किया गया blood compact relation जो हर जातिमें था वह टुट गया। अब रक्तका बन्धन हमारे बीच नहीं रह गया। सवर्ण-विवाह किये बिना कोई असवर्ण-विवाह नहीं कर सकता ऐसी शास्त्रीयविधि है।"

असवर्ण-विवाह उन्होंने स्वयं किया है और उपयुक्त शिष्योंका भी कराया है। कौन इस बातकी निन्दा या प्रशंसा करता है इसके प्रति भ्रूक्षेप भी नहीं करते। जो कुछ अच्छा और सत्य ज्ञात होता है एक विप्लवीकी नाईं खुद करते हैं और उसका प्रचार करते रहते हैं। अनुलोम-विवाहमें इतना अवश्य ध्यान देना चाहिये कि स्त्री-पुरुषके बीच महान अन्तर न रहे।

विवाहके विषयमें नारी-सम्बन्धी उनकी उक्ति है—

"Man should expand himself blazing up his ideal in his environment, exalting it in life, wealth and ability, bestowing his self on every individual, making them unified in interest in him. In such a way he runs after glory with glory, and this is the characteristic of a man; and where the female follows man with a darling dish of nourishment, voice of vitality, influence of love, push for the ideal, tears of affection and sympathy, proclaiming with the blow of conch, 'Run forward—in exhaution I am the shelter, I the rest and life, the arbour of love and refreshment,—that is the characteristic of a woman!"

यह अनुलोम असवर्ण विवाह सिर्फ हिन्दू जातिमें ही हों यही आप नहीं कहते। यह संसारकी सब जातियोंमें होना चाहिये। स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि—किसी भी जातिकी लड़कीसे विवाह कर सकते हो, जाति खराब होनेकी जगहपर उन्नत होगी। आप कहते हैं—

'अपने वर्ण-वैशिष्ट्यमें अटूट, वैशिष्ट्य और वर्णको दृढ़, और पंचबर्हिको अक्षुण्ण रखते हुए पुरुष अनुलोम क्रमानुसार किसी भी जातिकी स्त्रीके साथ विवाह कर सकता है। ऐसा करनेपर कृष्टि, वर्ण और जातिसे वह जरा बराबर स्खलित नहीं होता। बल्कि प्रशंसनीय कहलायगा।'

'घर-घरमें भगवान् जन्म लेवैं ऋषियोंकी कल्पना ऐसी थी। भगवान् वशिष्ठ, भगवान् मनुका जन्म इसी प्रकारसे हुआ था। वैसे मनुष्योंसे देश भर जाय इसके लिये *Eugenic adjustment* किया गया था।'

'देशका जखम कहाँपर है—जलन कहाँ हो रही है इस बात-को मैं समझ चुका हूँ। इसके निमित्त शिक्षा, समाज-सुधार प्रभृति बिभिन्न प्रकारका आन्दोलन कर रहा हूँ। यथार्थ प्रति-विधान जैसे हो मैं वही कर रहा हूँ। मूवमेन्ट करनेकी मुझमें किसी प्रकारकी खुजलाहट नहीं है। देशका कल्याण-साधन कैसे होगा ? सब प्रकारकी बाधा-विपत्तिको अग्राह्य करके भी मैं वही कर रहा हूँ।'

आप कहते हैं कि 'कामुकतावश *inclined* होकर जो विवाह करना चाहता है वह विवाहके एकदम ही अनुपयुक्त होता है और उसमें जबतक यह कामुक संवेग रहे उसको विवाह करना उचित नहीं।'

'पुरुष यदि उपयुक्त हो, इष्टनिष्ठामें अटूट और आप्राण हो—*incessant* विद्युत रेखाकी भाँति जिसका जीवन प्रवाहित होता हो विवाह करना उसीका समीचीन होता है—समीचीन ही नहीं अत्यावश्यक है। और स्त्रीके पीछे *inclined* रहनेवाला पुरुष, जिसकी गर्दनको स्त्री निष्ठा का भूत दबाये हो उसको औरतोंकी दुनियाकी ओर देखना भी उचित नहीं। अपने *sexual satisfaction* के पीछे जाति और धर्मको जहन्नुममें डालना क्या उचित है ?'

"इस प्रकारके *normally superior* पुरुषकी यदि बहु-स्त्रियाँ हों तो उनके *superior admiring impulse* द्वारा जो *superior child* उत्पन्न होंगे इसके परिणामस्वरूप देश जिस *superior move* के साथ आगेकी ओर बढ़ेगा इस विषयमें मैं पूर्णत: *oplimist* हूँ।"

कारण, "*Heredity bears the being of forefathers alive in the affspring.*"

और स्त्री होनेके पात्र वही है जो, "*She who is not dis-*

gusted with, nor possesses any aversion against one's faults or disqualifications, but elates applying services, and in admiration for his superiority is charmed with him in all respects is fit to be his wife.'

कारण, '*Mother nurtures the seed, father blooms in child.'*

इसलिए–"*Ovum the soil should be biophysically adapted and nurturing to the seed and that is the process to fertilise for a good progeny.'*

जहाँपर इसके विपरीत प्रतिलोम विवाह होता है वहाँपर '*When a woman of higher heredity succumbs to an inferior, it rouses a drowning–down panic in the soul of her ignorance, because the inferior breeds at the cost of the deteriorating superior.'*

मजबूत और प्रतिभावान राष्ट्र की कामना यदि हो तो—

"Never wipe off the genuine pedigreed shrubs otherwise you lose once for all the genuine genes of the varietal groupings that specialise."

'Bio-educated traits are the degree diplomated by nature.'

'Contented, virtuous hypergamous monogamy with an auto-interested serving zeal that makes each other cleave in a psycho-physical wedding is the monumental, virgin ascetic endowment of society that begets godly tradi-

tions and makes many up; whereas hypergamous polygny with contented auto-serviceable adherence is encouraging as it begets a variety of traits of superior calibre.'

आदर्शका अर्थ है Living ideal—embodied ideal—Embodied ideal न हो तो संघातमें नहीं पड़ना पड़ता। संघात या conflict नहीं तो कर्मज्ञानका स्फुरण नहीं होता। ठक्कर देनेवालेको ठाकुर कहते हैं। आप जो पूरब जाना चाहेंगे तो वह पश्चिम जानेको कहेंगे! प्रकृतिके गमनपथमें द्वन्द्व खड़ा कर देंगे! उनके प्रति अनुराग और भक्ति हो तो आप वृत्तिके रूपको पकड़नेमें समर्थ होंगे। इस प्रकार धीरे-धीरे अपने आपको नियन्त्रण करनेमें समर्थ हो जायेंगे। इसी तरह धीरे-धीरे adjusted वृत्ति हो जाती है। उद्धत शिवाजी गुरु रामदासके प्रेममें पागल होकर मुगल साम्राज्यका विनाश कर सका था।

प्रत्येक जीवनमें एक उद्दीपन-केन्द्र रहता है—एक glowing point होता है। उसके प्रति खिंचाव जितना तीव्र रहता है, उसका शब्द, आचरण और बुद्धि द्वारा उतना ही प्रकाश होता है। चाहिये आदर्शके प्रति तीव्र आकर्षण—keen urge। तीव्र आकर्षणसे एकाग्रता और एकमुखीनता आती है। एकाग्रता और एकमुखीनतासे व्यक्तित्व निर्माण होता है। वह व्यक्तित्व महा-व्यक्तित्वमें परिवर्त्तित होता है—personality demo-personality में बदल जाता है। वही धीरे-धीरे विराट व्यक्तित्व बनकर खड़ा होता है। विराट व्यक्तित्ववाला महामानव परिपूर्ण करनेकी विधिको जाननेवाला होता है और अधिकृत रूपसे सर्व परिपूर्णी कार्योंको करता रहता है, पूरा करनेमें समर्थ होता है। यह थी आर्य-धर्मकी मानव-निर्माण-विधि।

'दुनियामें विभिन्न प्रकारके मूवमेन्ट या आन्दोलन हो रहे हैं,

और हम लोग उसीके पीछे पागल बनकर अपना सर्वस्व नष्ट करते जा रहे हैं। हमारे पिता, पितामहोंने जिस आन्दोलनको चलाया था, उस मूवमेण्ट—उस आन्दोलनको चलाकर क्यों नहीं परीक्षा करते ? बाहरकी कहानी गप मालूम देती है, घरकी कहानी कहानी होती है, गप नहीं।'

क्या हम नवसृष्टिका सृजन नहीं कर सकते ? क्या हमारे भीतर नवनिर्माण करनेका अदम्य उत्साह और प्रचण्ड वेग नहीं प्राप्त होगा ? आर्यधर्म क्या निर्भय न होगा ? क्या हम अपनी आँखोंके सामने उसे संसारसे मिट जाते देखेंगे ? क्या संसारकी प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति योंही नष्ट हो जायगी ?

ऐसा ही प्रश्न एकसौ पच्चीस वर्ष पहले हार्डनने जर्मन राष्ट्र-से पूछा था, राष्ट्र, देश और राज्य वृद्ध बनकर मर जाते हैं या नव-यौवन प्राप्त कर सकते हैं ? यदि कर सकते हैं तो किस प्रकार ?" पचीस वर्षके भीतर बलशाली और मेधाकी राष्ट्रके रूपमें जर्मनीने उसका उत्तर दिया था।

ठीक वैसेही प्रश्नका उत्थापन देशबन्धु चित्तरञ्जन दासने ठाकुरसे भी किया था। आपने उत्तरमें कहा—

"Marriage में ही गड़बड़ी हो रही है—एककी स्त्रीको अपर ले रहा है। देशकी तमाम activity इसी कारण बन्द हो गई है। Marriage reform होनेके बाद ही industry आ सकती है।"

विवाहमें जब स्त्री वृत्तानुसारिणी और पुरुषकी सहधर्मिणी रहती है—पतिके जीवन और वृद्धिके लिये शुश्रूषा और सेवा करना जब उसके आनन्द, तृप्ति और पुष्टिका कारण बन जाता है तब industry आदि विभिन्न प्रकारके कार्य सुनिश्चित रूपसे अपने आप होते हैं।

'इसलिये मिलन-प्रवणता वा स्त्री-पुरुष मिलनके inner hank-

ering को इस प्रकार manage करना चाहिये जिससे superior, efficient individual embodiment का उत्पन्न होना normal हो जाय।

'समाजमें जो विवाह प्रणाली प्रचलित है आज वह जितनी जल्द rectified होगी, देशका atmosphere उतना ही जल्द परिशुद्ध होगा। उसके साथ-साथ उतना ही becile personality भी grow करते जायेंगे।

प्राण-प्राणमें प्रेरणा जगानेके लिये—आदर्श प्राणता भरनेके लिए इसका discussion और culture होना चाहिये।… पुरुष जिसमें काम प्रवण होकर inclined न होने पावें इसपर दृष्टि रखनी चाहिये। स्त्रियाँ जिनमें वर्ण, वंश, विद्याके सम्बन्धमें worshipable heredity को देख-सुन-बूझ-समझकर मनोनीत करें इस बातकी घर-घरमें आलोचना होनी चाहिये। With a fanatic rigidity का ऐसा संस्कार उनमें उत्पन्न करना होगा जिसमें higher worshipable के अतिरिक्त कभी lower के प्रति झुक ही न सकें।

इस कामका प्रारम्भ करें स्त्रियोंका consent लेनेसे। बीस वर्षके बाद कर्मियोंसे देश भर जायगा।

नारी कापुरुष सन्तान नहीं चाहतीं। वीर प्रसविनी होने, श्रेष्ठ सन्तानका मातृत्व लाभ करनेकी आकुति होती है उनकी।

अपनेसे श्रेष्ठ वंश, वर्ण, विद्या आदि सब विषयोंमें बड़ेके साथ यदि कन्याका विवाह न हुआ हो किंवा पुरुषका निम्न वर्णके साथ विवाह न हुआ हो तो सिर्फ दाम्पत्य ही क्षतिग्रस्त नहीं होता वरंच आयोग्य, अपदार्थ, क्लीब सन्तान भी उत्पन्न होती है। इससे समाजकी भयानक क्षति होती है। ऐसे स्थानपर विवाह हो भी गया हो तो क्या करना चाहिये?

"भूले अश्रेये कन्या दिले
हरण करे श्रेये दिवि
आर्य स्मृतिर एइतो नीति
ऋषिर कथा जेने निवि।

अर्थात् वहाँसे हटाकर अच्छे पात्रके हाथोंमें देना चाहिये। ऋषि और शास्त्रोंकी यही शिक्षा है। इस क्रान्तिकारी वाणीको सुनाते हैं आप।

किन्तु जो अपहृता या धर्षिता हों? हिन्दू समाजकी निन्दा करते हुए आप कहते हैं—

"यदि कोई स्त्री अपहृता होकर कामचरितार्थका इन्धन न बनी हो, उसको धर्षिता (सतीत्वहीन) कहकर स्वीकार न करना औचित्यका अपमान करना है। कामचरितार्थ होनेका प्रमाण यदि न मिले तब तो अच्छा ही है। यदि पाया भी जाय तो उसकी बात ही प्रमाण मानी जानी चाहिये। ऐसी अपहृताको धर्षिता कहकर बदनाम करना समाजके लिये पाप, कलंक और क्षतिके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। यदि यह भी सन्देह हो कि उसने कुछ गर्हित काम किया है तौभी वह रजस्वला होनेके उपरान्त परिशुद्ध हो जाती है यह स्मृतिका उपदेश है।" भगवान् अत्रिका कथन है—

न त्याज्या पुषिता नारीं
न कामऽस्या विधीयते
ऋतुकाले उपासीत
पुष्पकालेन शुद्ध्यति।

कामोन्मादवश कोई व्यभिचारिणी बन जाय और पीछे उसे अनुताप हो, वह कुलमें फिर आना चाहे तब उसका क्या होगा?

"कुले नारी भ्रष्टा हले
कुलेइ काउके करले वरण

प्रायश्चित्ते सुधरे निये
ताके किन्तु करिसइ वहन"

कुलकी नारी यदि भ्रष्टा हो जाय तो उसको प्रायश्चित्त करके कुलमें ही रखकर किसीके साथ विवाह करके भरण-पोषण करते रहना चाहिये। वह यदि कुल त्याग करके बाहर निकल जानेके बाद फिरना चाहे तौभी उसका दर्वाजा बन्द नहीं।

वर्णघातिनी हयेओ यदि
अनुतापे दग्धे पुड़े
मर्म्माहता जीर्ण्णा नारी
अतीत स्मृति व्यथाय घुरे
वृत्तिक्षते सिउरे उठे
कुलेइ फिरे आसते चाय
तारेओ किन्तु ग्रहण करते
विधान मत पाराइ जाय।

छोटे वर्ण और जातिके पीछे वर्णघातिनी बनकर भी यदि अनुतापसे जलती मर्म्माहत बनी अतीत स्मृतिके दुःखमें पड़ी हो, प्रवृत्तिमें जो क्षत हुआ है उससे काँपती हो और कुलमें फिरना चाहती हो तो विधि-अनुसार प्रायश्चित्त कराकर उसको ग्रहण कर लेना चाहिये।

नारी नरकका मूल कहकर, मायाविनी नामकरण करके जिनकी आजतक अवमानना होती रही है, यज्ञ-याज्ञ करनेके अधिकारसे जो च्युत बनाई गई हैं उनके मातृत्वकी महिमा बताकर ठाकुरने उन्हें सहधर्मिणी और सहकर्मिणीके सिंहासनपर बैठाया है।

आगके साथ खेलना विपत्तिका कारण होता ही है। किन्तु आगको काबमें रखनेका जो कौशल जानते हैं वहीं चतुर सिद्ध-

हस्त उसका यथावत प्रयोग करते हैं। जंगल और एकान्तमें रहने-से ब्रह्मचर्य्यकी परीक्षा नहीं होती, ब्रह्मचर्य्यकी परीक्षा होती है जहाँ आग हो। जो उस आगको अधिकारमें रखनेका तुक जानता है उसे डर कैसा? उल्टा वही बतला सकते हैं कि आगको किस तौरपर प्रयोजनानुसार उपयोगी बनाया जा सकता है।

कालनागिनीको दमन करके संयत रखनेका कौशल कालीय दमन ही जानते हैं। फणिनीको गलेका आभूषण बनाकर भूत महेश्वर ही विचरण करते हैं।

नारी-स्वाधीनताका उन्होंने पथ उन्मुक्त किया है। किन्तु नारी वैशिष्ट्यको विसर्जित करके किंवा पुरुषके साथ प्रतियोगिता करके वह स्वाधीनता नहीं प्राप्त होती। वह होती है अपने वैशिष्ट्य और धातुके परिपूर्ण करनेमें, पुरुषकी सहयोगिता में।

'नारी और पुरुषका वैशिष्ट्य अलग-अलग है। शरीर ही का नहीं कोषमें भी पार्थक्य है। नारी पुरुष नहीं बन सकती, पुरुष नारीका कार्य नहीं कर सकता। दोनोंकी शिक्षा और पोषण उनके अपने-अपने वैशिष्ट्य और धातुके अनुसार होना चाहिये। एक दिन हमारी स्त्रियोंके लिये सतीत्व बहुमूल्य सम्पद था। घर-घरमें 'सावित्री-व्रत' किया जाता था, आज वह सतीत्व भाव मरता जा रहा है। औफिससे लौटने पर पाया जाता है कि श्रीमतीजी किसीके साथ टहलने गयी हैं। आजकी स्त्रियाँ स्वामीको अलग रखकर स्वाधीनताका बोध करती हैं। यह बात उनके लिये कितनी अपमानकर—कितनी insulting है समझ नहीं पातीं। उनके दिमागमें यह नहीं घुसता कि स्वामीको लेकर ही उनकी स्वाधी-नता है।

सौ वर्ष प्रथम बंगाल बिहारमें मुसलमानोंकी संख्या कुल बहत्तर हजार ही थी। आज वे लाखों हो गये हैं। और हिन्दू बन गये हैं अल्पसंख्यक। हिन्दू स्त्रियोंको अपना उत्पादनक्षेत्र बना रखा

है। Breeding ground बनी हैं हमारी स्त्रियाँ। यदि हमारे यहाँ अनुलोम असवर्णका प्रचलन रहता, तो फल उल्टा होता। हमारी जन-संख्या—numerical strength इतनी कम न होती। समाज एक गठ्ठामें बँधा रहता। इसीके साथ-साथ अनुलोमसे अच्छे आदमियोंका जन्म भी होता।

'शुद्ध और पवित्र बनाकर स्खलिता नारीको अंगीकार नहीं करते यह भी हमारा दोष है। जातिसे बहिष्कृत करना रिवाज हो गया है।'

'अनुलोम धर्मप्रद और विज्ञानसम्मत विवाह है। ऐसे विवाहसे निकृष्टोंकी संख्यामें कमी तो आती ही है, साथ ही ऐसे आदमियोंकी उत्पत्ति होती है जो अनुन्नतको उन्नत बनानेवाले होते हैं। पशु और पौधेपर इसका प्रयोग होता है। आज, कुत्ते और घोड़ेकी geneology and pedigree की जाँच-पड़ताल की जाता है? उनके रूप-गुणको उन्नत बनानेका वैज्ञानिक प्रयोग होता है। किन्तु सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है, उसको श्रेष्ठ कैसे बनाया जाय इसके प्रति कुछ भी ध्यान नहीं।'

'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि'—अनुलोमका समर्थन सर्वत्र है। पेड़ बीजसे होता है, मिट्टीसे नहीं। बीजानुसार मिट्टीको तैयार कर लेना पड़ता है। कटहलके बीजसे आम नहीं फलता। इसलिये जो भी उन्नत बीज देशमें अबतक बचे हैं उनका सदुपयोग कीजिये। नारद और विदुरके समान तेज सन्तान होते हैं अनुलोम द्वारा। साफ बात यह कि जातिको हरदम ताजा रक्त—newer blood मिलता रहना चाहिये। अन्यथा आदमी शारीरिक और मानसिक दृष्टिकोणसे बौना, बोदा और मूढ़ हो जाता है।'

सप्तत्रिंशत् अध्याय

शिक्षाके नामपर जो विडम्बना की जाती है ठाकुर उसके स्वयं भुक्त-भोगी हैं। आश्रम-निर्माणके साथ-साथ बच्चोंके पठन-पाठन-का प्रश्न उपस्थित हुआ। किन्तु शिक्षाकी व्यवस्था कैसी हो?

विद्यालय तो कोई जेलखाना नहीं जहाँपर छड़ीका शासन चलता रहे। इसलिये पढ़ाई ऐसी होनी चाहिये जो लड़कोंके लिये boaring या बोझिल न हो। खेल-कूदकी नाईं क्षण-क्षण बच्चोंमें जाननेकी उत्सुकता और उत्तेजनाका कारण बने शिक्षा। बच्चे खेलना, नाचना और दौड़ना चाहते हैं। उनकी इस स्वाभाविक माँगसे खींचकर पुस्तककी चक्की और बेंतके अनुशासनमें दबाते रहें तो उनका विकास व्याहत होता है। स्कूलकी चहारदिवारी और शासनकी बेड़ीमें बाँधकर रखनेका फल है कि दण्ड शिक्षकका आयुध और शिक्षापद्धतिका अनुशासन प्रतीक बन गया है। आज शिक्षा बेंतके बलपर लड़कोंके दिमागमें ठूँसी जा रही है। किताब-का बोझ तो इतना बढ़ गया है कि लड़के ही नहीं अभिभावक भी पिसे जा रहे हैं।

जो चीज जबर्दस्ती लादी जाती है उसके प्रति अरुचि होती है। अरुचि होनेपर क्या विद्या आती है? शिक्षक जब पढ़ानेका जोर करते हैं तब अरुचि अश्रद्धामें परिवर्त्तित होती है। शिक्षाके प्रति अरुचि और शिक्षकके प्रति अश्रद्धा! यही आजके विद्यालय-का अवदान है। उधर भगवान् कृष्णने कहा है—'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं।' जब शिक्षकके प्रति श्रद्धा ही नहीं तो ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? शिक्षक और पुस्तक लेखकोंका इतना बड़ा रेजिमेण्ट जो सरकार पोषण कर रही है और इतने स्कूल और कौलेजोंमें जो विद्या पढ़ाई जाती है वह क्या विद्या नहीं?

स्कूल-कमिटी, स्कूल इन्स्पेक्टर और युनिवर्सिटीके सर्कुलर

और नियमके अनुसार पढ़ाई होती है। मास्टर यदि बेंतका सहारा न लें तो स्कूलका रिजल्ट खराब हो। रिजल्ट खराब होनेसे पर्सेण्टज गिर जाय। ऐसा होनेपर जवाब देहीमें पड़ता है। रोजी जानेकी नौबत आ जाती है। इसलिये मास्टर बेंतका सहारा न लें तो क्या करें ? अब तो चोरी करके पास करने, प्रश्न आउट करनेमें भी मास्टरगण सहायता करते हैं।

इस अनुशासनका फल क्या हो रहा है ? अरुचिने अश्रद्धाका रूप धारण किया और बढ़ते-बढ़ते उद्दण्डता और उच्छृङ्खलतातक पहुँच गई है। शिक्षक, गार्ड और विश्वविद्यालयकी आँखोंमें धूल झोंककर पास करना विद्यार्थीका उद्देश्य बन गया है। शिक्षकको मूर्ख बनाना, नकल करना ही नहीं, उनको बेइज्जत करना भी विद्यार्थी जीवनका महान् उद्देश्य बन गया है। जो विद्यार्थी मास्टरके अनुशासनका अधिकसे अधिक असम्मान कर सकता है वह उतना ही बहादुर समझा जाता है। बेंत यदि अनुशासनका प्रतीक है तो उसकी परवा न करना छात्रकी मर्यादा। इस मर्यादा-पर जहाँ आँच आयी कि श्रेणी-संग्राम आरम्भ हुआ। हड़तालकी नोटिस हुई। विद्यार्थी-संघके मन्त्रीके सन्मुख शिक्षक क्षमा माँगें तभी खैर है। अनुशासन और शृङ्खलाकी रक्षा करना यदि मास्टरों-का कर्त्तव्य है तो उसको भङ्ग करना छात्रोंने अपना कर्त्तव्य मान लिया है।

इसमें विद्यार्थियोंका कुछ लाभ होता है या नहीं ? यदि नहीं तब वे उच्छृङ्खल क्यों हो जाते हैं ? क्या कभी इसपर विचार किया है ?

ठाकुर कहते हैं, शिक्षकका दायित्व गवर्नरसे बहुत बड़ा है। वह जिस प्रकारसे छात्रका गठन और निर्माण करेंगे तदनुरूप उसमें दायित्व ग्रहण करनेकी शक्ति आयगी। प्रत्येक विद्यार्थीमें अपनी-अपनी विशेष शक्ति रहती है। विकासकी सम्भाव्यता उस शक्ति

या वैशिष्ट्यपर ही निर्भर करती है। उसको प्रस्फुटित करना, अन्तर्निहित उस विशेष सम्पद्‌को विकसित करना ही शिक्षकका काम है। इस वैशिष्ट्यको वह वंशानुक्रमिक धाराके रूपमें पाता है। उसी वैशिष्ट्यानुसार उसमें बढ़ने और विकसित होनेकी विशेष अभिरुचि और झुकाव रहता है।

शिक्षकका काम है उस सम्भाव्यताके मार्गको उन्मुक्त करना, विकसित करना और उसको विकासकी चरम सीमातक पहुँचा देना।

यह तभी हो सकता है जब विद्यार्थी और शिक्षकमें आपसी प्रेम हो। प्रेमके खिंचावमें पड़कर विद्यार्थीके हृदयमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। तब वह शिक्षककी बतलायी बातोंका सम्पूर्ण हृदयसे प्रतिपालन करता है। उसकी अभिरुचि शिक्षकके प्रति एकाग्र होती है।

इस निमित्त शिक्षकका आदर्श चरित्रवान् होना चाहिये, प्रेमिक होना चाहिये। छात्रके प्राणमें उत्सुकता उत्पन्न करनेकी शक्ति होनी चाहिये। यह तबतक नहीं हो सकता है जबतक शिक्षककी समस्त शक्ति केन्द्रित न हो, वे स्वयं आदर्श चरित्रवाले न हों।

इसलिये पाठशाला होनी चाहिये जीवन-निर्माणका आनन्द-गृह, उत्सव-निकेतन, गृहसे भी अधिक कोलाहलमय आकर्षणकेन्द्र। जहाँ विद्यार्थी अपने भीतर नवप्राण प्राप्त करता हो।

विश्वविद्यालय किसे कहते हैं? ठाकुरने कहा—'Where varieties arrive with a meaning at unity—it is university!'

विभिन्न प्रकारकी शिक्षा सुसंवटित होकर जहाँपर एकानुध्यायी बनती है—जहाँपर दर्शन, विज्ञान और कला तीनों मिल-

कर जीवनके परिपूरक बनते हैं विश्वविद्यालय वहींपर सार्थक होता है।

आज शिक्षा जीवनमें unity लानेके कार्यमें नहीं लग रही है। varieties विभिन्न प्रकारके diversities में जीवनको लिये जा रही है। विज्ञानका दर्शन और कलासे कोई सम्बन्ध नहीं और न दर्शन और कलाका विज्ञानसे सम्बन्ध है। फलस्वरूप जीवनके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है।

ठाकुर कहते हैं—

'लेखा पड़ार दर हलेइ शिक्षा तारे कयना।
अभ्यास व्यवहार सहज ज्ञान नाहले ज्ञान हयना।'

उस लिखने-पढ़नेको शिक्षा नहीं कहा जा सकता जिसका अभ्यास ऐसा न कर लिया जाय जिसके जरिये व्यवहारिक प्रयोग करनेमें समर्थ हो। व्यवहारिक प्रयोग करनेका ज्ञान जब सहज हो जाता है तब जीवनके परीक्षागोरमें आदमी सफलता प्राप्त करता है।

'Systematic organisation of habits and instincts with the purpose of becoming of life, by a graduated active manipulation of behavior may be called education.

इसीको तनिक और सहज भाषामें कहा—

'मनुष्यके जीवन और वृद्धिप्राप्तिको उत्तरोत्तर उन्नत करनेको ही शिक्षा कहते हैं।

दुनियामें शक्तिका आदर होता है। रूपमें आकर्षण होता है, किन्तु गुणकी पूजा होती है। राजाकी पूजा देशमें सीमाबद्ध रहती है, किन्तु विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। जो जितना गुणवान होता है उसका उतना ही मान होता है। कारण, वह अपने गुणसम्पद् द्वारा दूसरोंकी सेवा अधिक कर सकता है। किन्तु पुस्तकी ज्ञान

ढेरका ढेर हो और उसका व्यवहारिक ज्ञान न जाने तो किसीकी सेवा कैसे कर सकता है ? दूसरेको लाभ कैसे पहुँचा सकता है ? ऐसी विद्या literation & information कहलाती है, उसे शिक्षा, विद्या या education नहीं कहा जा सकता।

इसलिये आपका कथन है कि, "Literation makes the complexes facilitated whereas education enlightens the being, hence its index, habits and behavior, glows on in a sonorous rhyme.

व्यवहार आर अभ्यासेर
संगिति जार येमनइ
लेखा-पढ़ा जाइना जानुक
शिक्षा तार तेमनइ।

यहाँतक कह दिया कि

अभ्यास व्यवहार भाल यत
शिक्षाओ तार जानिस तत

अर्थात् अभ्यास और व्यवहारिक ज्ञान जितना होगा वह उतना ही शिक्षित है।

व्यवहारिक ज्ञान न हो तो सब सीखना व्यर्थ। बुद्धि नहीं खुलती, मुट्ठीभर अन्नके लिये मारा फिरता है। आज यही पढ़े-लिखोंकी फौज ही तो सरकारकी नींदका खलल बन गया है।

तब कैसी पढ़ाई होनी चाहिये ? सार्थक शिक्षा कैसे होगी ?

"व्यवहारिक और शिल्पप्रधान शिक्षा होनी चाहिये। कोई आर्ट सीखता हो या विज्ञान सीखे—उसको ऐसा व्यवहारिक ज्ञान कुछ न कुछ होना जरूरी है जिसके सहारे कालेजसे निकलने के बाद वह अपने पैरों खड़ा हो सके। पदार्थ और रसायनादि विद्याओंको व्यवहारिक प्रयोगमें लानेके लिये ऐसे सुश्रृंखल श्रमशिल्प विभागोंमें बाँट लेना चाहिये जहाँपर उसके तत्वकी

बातोंके बतलानेके साथ ही साथ हाथोंहाथ व्यवहारिक प्रयोग भी किया जाय। उस अवस्थामें बाहर निकलकर 'नौकर चाहिये-नौकर चाहिये' की जो चिल्लाहट करते हुए लोग 'इतो भ्रष्टस्ततो नष्टः' की तरह विनाशकी गोदमें जा रहे हैं, न जा सकेंगे। शिक्षित होना है तो व्यवहारिक ज्ञान सीख—हाथका प्रयोग कर। कर्मके आधारपर यदि अनुसन्धान-कार्य चलाओगे तो आज जो 'पंडित-मूर्ख' मारे फिर रहे हैं यह न होना पड़ेगा।"

विद्याका अर्थ उपाधि या डिप्लोमा हासिल करना नहीं, गुण-पर आधिपत्य करना है—व्यवहारिक ज्ञानकी जानकारी हासिल करना है। विशेष दक्ष होनेको गुण कहा जाता है। गुणके साथ यदि दक्षता नहो तो जीवनमें कभी सफलता नहीं आती। जो जितने विषयोंमें जितना दक्ष होता है, उसका जीवन उतना ही सार्थक होता है। उसकी उतनी ही पूछ होती है। वह जन-कल्याण और राष्ट्रीय किंवा मानवताके लिये उतना ही आवश्यक हो जाता है। इसीसे विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

इससे कहीं यह तो नहीं समझा जाता कि ठाकुर रोजी-रोटी या वृत्तिकी बात कह रहे हैं? हजारों हजार लड़के हैं, किसको कौन कला सिखलायी जाय? सबसे सब काम होता भी नहीं, रुचि भी सबकी अलग-अलग है। ऐसी जगहपर क्या किया जायगा?

रुचि और झुकाव किधर है उधर ध्यान देना ठीक होगा। जिस विषयमें अरुचि हो उसकी ओरसे आँख बन्द करनी होगी। अरुचि-की दिशामें कभी न लगना चाहिये। knack and aptitude रुचि और झुकाव ही उसके जीवनका काम बतलानेवाला कम्पास है।

आदमी आदमीमें जैसे बहु विषयोंमें मेल है वैसे ही कुछ पार्थक्य भी है। जिस जगहपर वह सबके साथ एक है, और जहाँपर पृथक् विशेष गुणका अधिकारी है उनपर ध्यान दें। उसकी असाधारण-

त्व समझ पड़ेगी। मनुष्यके भीतरी इस असाधारणत्वको वैशिष्ट्य कहा जाता है। यही वैशिष्ट्य मनुष्यका अपना सच्चा परिचय है। इस वैशिष्ट्यके विकासपर ही उसका जीवन-विकास निर्भर करता है। इसलिये इस वैशिष्ट्यको उन्नत करनेके लिये उसके झोंक और झुकावको परिपुष्ट करना चाहिये।

"वैशिष्ट समृद्ध याते उन्नत झोंके परिपुष्ट।
ताकेइ बले आदत शिक्षा ताविने त इवेइ दुष्ट॥

वैशिष्टका झोंक जितना ही परिपुष्ट होगा विद्यार्थी उतना ही समृद्ध होता जायगा। इसीको शिक्षा कहते हैं। शिक्षाका आदर्श यह होना चाहिये।

इसके प्रति लक्ष बिना जो शिक्षा दी जाती है, उसको शिक्षा ही नहीं कहते। वैसे शिक्षासे शिक्षार्थी क्लीब और ध्वजभङ्ग-सा बन जाता है।

"वैशिष्ट्य तार नाकाल करे हलि कतई विद्यावान।
सिखते गिये साजली खोजा जनम छापटी तोर करे म्लान।

वैशिष्ट्यहीन शिक्षासे आदमीकी अपनी विशेषता ही मर जाती है। वह खोजा बन जाता है। न वह पुरुष रहता और न स्त्री। जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। विद्वान् होते भी वह रहता है बज्र-मूर्ख।

इसीका तो परिणाम है कि सारा भारतवर्ष आज बेकारोंका देश हो गया है। पढ़े लिखे लोग, जीविका प्राप्त लोगोंके मुखकी ओर देखते हैं। वे किस कामके रह गये हैं? उनमें कहीं प्रतिभा-का लक्षण दीख पड़ता है? कोई आविष्कार ऐसा कर पाते हैं जो देशका मंगल करे? प्रतिभा और अनुसन्धितसा ही मर गई है यहाँकी।

इस झोंकको समझनेके साथ ही साथ उपार्ज्जन-क्षमता बढ़ाने-वाली शिक्षा भी देनी चाहिये।

झोंक ना बुझे शिक्षा दिले
पदे पदे कुफल फले

झोंक या अभिरुचिको यदि उन्नत करनेमें शिक्षाको न लगाया जाय तो फल अच्छा नहीं होता। उस अभिरुचिको पारिवारिक वृत्ति और संस्कृतिकी ओर घुमाना चाहिये।

वंशक्रमिक ये जीविका तारइ पूरण टाने
शिक्षा ज्ञानेर व्यापकता बृहत् वृद्धिआने।

विश्वविद्यालय तो ऐसी शिक्षा नहीं देती। वहाँ तो स्टैण्डर्ड पुस्तकका पठन-पाठन होता है। इसीका तो फल है कि आज बेकारी भी स्टैण्डर्ड रूपसे बढ़ती जा रही है। हाथसे काम करनेकी शक्ति नहीं, मस्तिष्कमें सोचनेका बल नहीं। उनके लिए सरकार व्यवस्था करे। सब सरकारके मुखकी अपेक्षामें बैठे हैं।

पारिवारिक वृत्ति-धाराके अनुसार शिक्षा देनेसे प्रतिभा बढ़ती है। प्रतिभाका स्फुरण होता है। उस प्रतिभाके बलपर वह देश या कलाको जितना उन्नत कर सकता है उतना दूसरे प्रकारसे नहीं कर सकता। यही देखिये। ताजमहलका गुम्बज फट जानेपर भारत सरकारको उसके बनानेवालोंकी खोज करनेमें कितना अर्थव्यय करना पड़ा। फिर भी किसीसे कुछ न हो सका। अन्तमें उसने गुम्बज बनानेवाले कारीगरोंके वंशजोंकी खोज आरम्भ की। ये जब गुम्बज बनाने बैठे तो भारत वर्षभरसे जितने कारीगर काम करनेके लिये बुलाये गये थे उन सबसे कोमलता, चित्रकारी, सूक्ष्म कार्यमें इनका हाथ बढ़िया निकला। अन्तमें ताज महल बनानेवालोंकी सन्तानको ही उसके मरम्मत करनेका भार मिला। सरकार यदि निर्माणकलाके वंशानुक्रमिक संस्कारको परिपुष्ट बनानेवाली शिक्षा इन्हें देती तो ताज-महलसे सारा भारतवर्ष भर जाता।

ठाकुरका कथन है कि 'मनुष्य heredity से instinct पाता

है—वंशानुक्रमिक क्रमसे सहज संस्कार प्राप्त होता है और environ ment उस सहज संस्कारको nurture करता है—पोषण प्रदान करता है। बच्चेके जन्म व्यापारमें जैसे माता-पिता दोनोंकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जीवनमें heredity और environment दोनों factors की आवश्यकता होती है। किन्तु परिवेशसे वह जो कुछ pick up करता है, वह करता है अपने instinct के मुताबिक। यह specific instinct हर आदमीका पुष्ट हो ऐसे परिवेशका निर्माण जितना अधिक हो उतना ही अच्छा है।'

यह तो हुई बच्चोंके विषय की बात। बच्चियोंकी पढ़ाई जो आजकल सह-शिक्षाके रूपमें हो रही है उसपर आपका क्या कथन है?

"सह-शिक्षामें relishing indulgence of inclination बढ़ जाता है। आमन्त्रणी - आकर्षणमें पड़कर दोनों अपना वैशिष्ट्य खो बैठते हैं और Mascu-effeminacy का उद्भट संस्करण बन जाते हैं। पुरुष हरदम नारी सम्बन्धी चिन्तामें रहनेके कारण घोर मोहमें पड़ जाता है। उस मोहमें हाव-भाव, बनाव-शृंगार, चिन्ता-आचरणमें नारी-सारूप्य-लाभ करनेमें मशगूल रहता है। उसी प्रकार लड़कियाँ भी masculine air, attitude and pose वाली मर्दानी औरत बन जाती है। परिणामतः सब factors or faculties deranged nature धारण करतें हैं। इससे chastity of complexes loosened हो पड़ती है—Eugenic products fall करते हैं—सारा generation generally weak and distorted हो जाता है। इसलिए mother की tutorial class के बाहर कभी co-education होना उचित नहीं। नारी-सम्बन्धी prolonged unnecessary abnormal futile sex imagination करते रहनेके कारण पुरुषमें psycho-logical impotency

दीख पड़ती है एवं masculine nature imbibe करनेके कारण नारी पुरुषकी तरह adoration चाहने लगती है। इस adoration के पीछे वह अपने आपको स्वतः inferior के प्रति inclined कर देती है। परिणामतः अगणित illegitimate issue देशमें भर जाते हैं। नारी-पुरुषके बीच honourable distance न हो तो दोनोंके दोनोंका healthy normal propensity of life die out करता है। life-less artificial debilitated sex life से vigorous life नहीं उत्पन्न होती—निर्जीव, रुग्ण, विकृत यौन जीवन हो तो वीर्यवान् सन्तान उत्पन्न नहीं होती। Nation fall करता है—राष्ट्र मर जाता है।"

तब क्या स्त्री-शिक्षा न दी जाय ?

दी जाय, जरुर दी जाय। बल्कि उच्चाति उच्च शिक्षा दी जाय इस बातके पक्षपाती हैं ठाकुर।

'पुरुष जैसे शिक्षित हों, उसी प्रकारसे स्त्रियाँ भी शिक्षित होंगी। जो कुछ पार्थक्य होगा वह होगा धातुका। दोनोंकी शिक्षा जितनी हो, उतना ही मंगल होगा।'

यह धातुका पार्थक्य क्या है ? स्त्रियाँ क्या चूल्हे-चक्की, सन्तान-उत्पादन और स्वामीकी बात सीखती रहेंगी ? राजनीति, विज्ञानादि विद्याओंको न सीखेंगी ?

प्रयोजनानुसार सब कुछ सीखेंगी। केवल इतना विचार रखना होगा कि जीवन और उसकी वृद्धिके प्राकृत विकासमें बाधा न पड़े। वह जिस धातुकी बनी है उस धातुमें विकार न आ जाय। धातुका अर्थ वह वैशिष्ट्य है जो प्रकृति माता देकर उनको भेजती है। इसलिए—

"स्त्रियोंकी वैशिष्ट्य रक्षा करते हुए उनकी उन्नतिके लिए जो उचित है वह सब करना चाहिए। आवश्यकतानुसार वह

सब कुछ कर सकती हैं। इस देशकी स्त्रियोंने युद्धतक किया था। इसका अर्थ यह नहीं कि मारकाट और सी० आइ० डी०का काम करना ही उनका वैशिष्ट्यय है।"

तब पढ़ाई कैसे होगी इनकी? इनका वैशिष्ट्य जबतक न जाना जाय तबतक तो कुछ नहीं हो सकता।

आपने कहा—

स्त्रियोंके वैशिष्ट्यमें—निष्ठा, धर्म, शुश्रूषा, सेवा, सहाय, संरक्षण, प्रेरणा और प्रजनन हैं। नारी-शिक्षामें ध्यान रखना चाहिये कि उनका यह वैशिष्ट्य—वर्द्धनशील, उन्नति-प्रवण और अव्याहत रहे।'

नारी-शिक्षामें क्या-क्या रहना चाहिये?

"वैशिष्ट्य बचाते हुए जहाँतक अधिक शिक्षा देनेमें अग्रसर किया जा सके करना चाहिये।

१—धर्म किसको कहते हैं?

२—आदर्श क्या है?

३—श्रेष्ठ किसको कहते हैं?

४—श्रेष्ठ कैसे पहचाना जा सकता है?

५—श्रेष्ठको कैसे वरण किया जाता है?

६—सतीत्व किसे कहते हैं?

७—सतीत्व आदमीको कैसा बनाता है?

८—सेवा क्या है?

९—श्रद्धा भक्ति किस चीजको कहते हैं?

१०—संवर्द्धन कैसे किया जाता है?

११—सुसन्तान कैसे प्राप्त होती है?

१२—पारिवारिक शान्तिसे उन्नति कैसे होती है?

१३—पतित्व बलके पहचानकी विधि क्या है?

१४—सन्तान-पालन विधि-क्या है?

१५—सन्तानका भविष्य जीवन उज्ज्वल बनानेके निमित्त कैसी शिक्षाकी आवश्यकता है ?

१६—सञ्चय करनेका नियम क्या है ?

१७—बिना कष्ट पहुँचाये दूसरेकी उन्नति कैसे की जाती है ?

इन सब बातोंको अभिनिवेश-पूर्वक उनके सामने रखने और चरित्रगत करानेकी व्यावस्था करनी चाहिये।"

शिक्षाका मूल उद्देश्य तो जीवनका पूर्ण विकास है। सभी अपने जीवन और विकासकी कामना रखते हैं। किन्तु जीवन या अस्तित्व और उसका विकास निर्भर करता है परिपार्श्विकके अवदानपर। यह अवदान कैसे पाया जा सकता है? जीवन और उसके विकासकी खुराक परिपार्श्विकसे हम कैसे पा सकते हैं? हम अपने समाजको जितना दे सकते हैं उतना ही पानेका परिमाण बढ़ता है। देनेकी क्षमता जब आती है तभी हममें सेवा करनेकी दक्षता भी आती है।

सेवा करनेकी दक्षतासे जो जितना अधिक ऐश्वर्यवान होता है उसका जीवन उतना ही महान् होता है। उसका चारित्रिक विकास उतना ही अधिक होता है। चारित्रिक विकासको ही जीवन-विकास कहा जाता है।

इस चारित्रिक विकासके निमित्त हमें आचरणशील आचार्यके निकट जाना पड़ता है। वही हमारी चारित्रिक गठनको ठोस करके भीतरी शक्तिको उद्भिन्न कर सकते हैं। इस आचार्यके प्रति अनुरक्त रहनेपर वे हमें दक्षता-प्राप्तिकी विधि सिखलाते हैं। ऋषिकुलमें जाकर ब्रह्मचारीका सम्बन्ध पिता-पुत्रके समान हो जाता था। अपने भोजनके साथ-साथ आचार्यका भी वह प्रबन्ध करता था। इस निविड़ अनुरक्तिसे जीवनकी समस्त शक्तियाँ प्रस्फुटित हो पड़ती थीं। आचार्य दक्षता-प्राप्तिकी विधि तभी सिखलानेमें समर्थ होते थे।

मातृगर्भसे भूमिष्ठ होनेके उपरान्त शिशु एकात्मताका अनुभव करता है। मातृस्तनसे अभिसिंचित हो जीवन धारण करता है, उससे पृथक् अपने आपको अनुभव करनेकी उसमें शक्ति नहीं रहती। माँकी वह मधुर मूर्त्ति आँखोंके सामने सर्वदा विराजती रहती है। माँका संग नहीं छोड़ना चाहता। इसमें विघ्न पड़नेपर नन्हें हाथोंको हिलाता हुआ विघ्न अपसारित करनेका प्रयत्न करता है और जब नहीं कर पाता तो क्रन्दन करना आरम्भ करता है।

माँके भीतर भी उसी प्रकारकी अनुरागात्मिका शक्ति विराजती रहती है। किन्तु वह ऊपर देखनेमें नहीं आती। यह देखनेमें आती है उस समय जब वह अपने शिशुको छातीसे चिपटा लेती है, सर सूँघने लगती है। उस समय माँके दोनों हाथोंमें, छातीमें, नासिका और ओष्ठाधरोंमें वह दीख पड़ती है।

शिशु और माँके इस गुप्त शक्तिमें बहुत बड़ा आकर्षण रहता है। माँको देखते ही जैसे बालककी आँखे मुखकी ओर अटँक जाती हैं उसका कारण यही है। उसी प्रकार माता बाहर अनेक कार्योंमें व्यस्त रहती है, पर उसका लक्ष घरमें सोनेवाले बालककी ओर रहता है। बालक रोने लगा तो अपने हाथके कार्योंको छोड़-छाड़कर तुरन्त उठ जाती है और बालकके पास पहुँच जाती है। उसका कारण वही आकर्षणशक्ति है जो बालकके भीतर दिव्य रूपमें विराजित रहती है।

तब बालकमें यह अद्भुत शक्ति कहाँसे आती है? माता और शिशु दोनोंको जो शक्ति एक दूसरेके प्रति आकर्षित करती रहती है वह कहाँसे आती है? यह आती है विश्वात्माके यहाँसे। बालकके जन्मके बहुप्रथम विश्वात्माके हृदयमें उसकी तैयारी होती है। माता-पिताके सम्बन्धसे बालकका जन्म होता है, यह बहुत ही स्थूल बात है। पर माता-पिताका सम्बन्ध लाख होता रहे, यदि

विश्वात्माकी योजना अनुकूल न हो तो बालकका जन्म ही नहीं होगा।

उसी शक्तिका नाम है प्रेम, अनुराग या सुरत-धारा। जबतक बालभाव रहता है तबतक यह अनुरागात्मिका शक्ति सहजावस्थामें रहती है। जन्मके साथ प्राप्त होनेके कारण इस सहज शक्तिमें बड़ी दिव्यता रहती है। किन्तु इस शक्तिमें किसीसे लिपटकर रहनेका भाव देखा जाता है। जबतक बालभाव रहता है अनुराग सहज और सरल अवस्थामें रहता है, बालका बोध बाहरी शक्तिके घात-प्रतिघातसे जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वह सहज अवस्थासे वंचित हो जाता है।

उस सहज बाल्यावस्थामें बालक स्वर्गीय उद्यानमें विचरण करते रहते हैं।

माँके एकानुरक्तिवश उसमें व्यभिचार नहीं आने पाता। बालक जबतक उस सहज बाल्यावस्थाका उपयोग करता है स्वर्गीय आनन्दका अनुभव करता है। उस अलौकिक सहजावस्थामें वह नंगा विचरण करता हुआ अलौकिक मधुका पान करता है। किन्तु जैसे ही पर-अपरका ज्ञान आरम्भ होता है वह स्वर्गीय उद्यान और अलौकिक रसपानसे वंचित हो जाता है।

संकल्प-विकल्प अवस्थाके उत्पन्न हो जानेके उपरान्त उसकी विश्वात्माप्रदत्त अनुरागात्मिका शक्ति वयः क्रमानुसार विभिन्न वस्तु और मनुष्योंके प्रति आकर्षित होती हुई बँटती जाती है। कभी किसी रंग-बिरंगे खिलौनेके प्रति आकर्षित होती है, तो कभी समवयस्क बालक-बालिकाओंके प्रति, कभी अपने सौन्दर्यके प्रति तो कभी किसी सुन्दरीके प्रति।

ज्ञान उन्मेषके साथ-साथ वह देखता है कि हम हैं और उसी के साथ-साथ कुछ अतिरिक्त चीजें भी हैं। बाहर-भीतरका यह आदान-प्रदान शैशव कालसे चलने लगता है। बाहरी जगत् उसके

अन्तरको आकृष्ट करता है। उस आकर्षणके बढ़नेके साथ-साथ वह सहजावस्थामें प्राप्त विश्वात्म-शक्तिसे सुदूर हटता जाता है। निष्क्रिय मस्तिष्ककी चेतना बहिर्जगत्से प्राप्त चेतनासे सक्रिय हो पड़ती है। आँख,कान, नाक आदि इन्द्रियों द्वारा रूप, रस, शब्द, स्पर्श आदि निष्क्रियतामें चेतना लाते हैं; बुद्धिका जागरण होता है। इन बहिरेन्द्रियोंसे मस्तिष्कका सम्बन्ध स्नायु द्वारा है। स्नायु और इन्द्रिय-शक्ति जिसकी जितनी शक्तिशाली होती है उतना बोधका जागरण होता है। मस्तिष्क कोष उतना ही क्रियाशील होता है। इसीके साथ अन्तर-बहिर्जगत्की ओर आकृष्ट होता है। जैसे-जैसे वस्तुके साथ स्पर्श बढ़ता है वैसे-वैसे अन्तरका प्रसारत्व बढ़ता जाता है। जड़प्रकृतिसे जो प्रेम करता है और उसकी चिन्तामें संलग्न रहता है, वही, उसके रहस्यको जान पाता है। और प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता है उसका। एकाग्र होने, समाहित होनेकी जिसमें जितनी शक्ति रहती है वह विषय या वस्तुके बारेमें उतना अधिक ज्ञान प्राप्त करता है।

आदमीके भीतर निमग्न होने, मनोयोग देने और एकाग्र होनेकी जो शक्ति है उसमें प्रभेद देखनेमें आता है। बुद्धि और चेतनाशक्ति सबमें समान नहीं पाई जाती। किसीमें स्वाभाविक बुद्धि है, कोई प्रतिभावान है तो कोई बुद्धिमान् है। ऐसी बुद्धिवाले भी हैं जिनमें साधारण बुद्धि भी नहीं रहती। बोदा, गोबर गणेश, जड़-बुद्धि-सम्पन्न आदमियोंका भी अभाव नहीं। किसी किसीकी बुद्धि-शक्ति स्तब्ध, अवदलित और असम्बद्ध भी पाई जाती है।

इससे ज्ञात होता है कि जीव-जगत्की नाई मनुष्य-बुद्धिमें भी पर्यायक्रम रहता है। उस पर्यायक्रमके अनुसार किसीका स्नायु दुर्बल हो तो वह कम देख सकता है। जिसके कानके स्नायु दुर्बल हों तो वह कम सुनता है। त्वक्में स्पर्शबोध न हो तो पैरके नीचे

चलनेवाले कीड़ेकी खबर भी नहीं रहती। और कोई चींटी या खटमल बिछावन पर एक भी चलता हो तो उठकर बैठ जाता है, उसे नींद ही नहीं आती। इस श्रवण, दर्शन या स्पर्शबोधका अभाव जिसमें कम रहता है उसमें चेतनाकी शक्ति कम रहती है। इस विभेदका कारण है—विकासकी प्राकृतिक गतिमें बाधा। इसका आरम्भ उस दिनसे होता है जिस दिनसे विश्वात्म-शक्तिसे निकलकर मनुष्यका अवतरण होता है।

इस बुद्धि-तारतम्यके बीच ऐसे भी मस्तिष्क देखे जाते हैं जो पूर्ण विकसित हों। परिपूर्ण विकसित होनेके कारणःवे निम्न विकसित प्राणियोंके प्रति ममता और स्नेहसे भर जाते हैं। उनका हृदय असीम प्रेम, असीम सहानुभूति और करुणासे भर जाता है। क्योंकि अविकसित मस्तिष्कके कारणोंको पूर्णतः समझते हैं। ऐसे अविकसित मनके गूढ़ रहस्यके जाननेवाले व्यक्तिके सम्मुख आदमीका सर स्वयमेव झुक जाता है। ऐसे ही व्यक्ति अवतार या आदर्श महापुरुषके नामसे जाने जाते हैं। ऐसे महापुरुषोंकी मनःशक्तिमें अखण्ड एकत्व-बोध रहता है। इस अखण्ड एकत्व-बोधको जिसने जितना अधिक उपलब्ध किया है वह उतने बड़े महामानव कहलाते हैं। साधारण मनुष्यके लिए वह होते हैं अखण्ड और असीम। कारण, उनकी धारणा करनेमें आदमी अपना निजत्व खो बैठता है।

ऐसे महान् आदर्श पुरुषके साथ प्रेम-सम्बन्ध होनेसे बुद्धि, स्नायु आदि समस्त शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं, दुर्बलता मिट जाती है, विच्छिन्न शक्तियाँ सुकेन्द्रित हो जाती हैं,उनमें पड़े ग्रन्थि बन्धन खुल जाते हैं। उनका प्रसार बढ़ जाता है। ऐसे आदर्श पुरुषके आकर्षणसे बिकारग्रस्त रोगी स्वास्थ्य होते हैं और स्वस्थ व्यक्ति प्रतिभावान हो जाते हैं। ऐसे पूर्ण विकसित स्वस्थ व्यक्ति से मधुर सम्बन्ध स्थापित करने, प्रेम और विश्वास-पूर्वक आत्म-

समर्पण करने, उनकी शरणमें जाकर अपनी गुप्त कहानी, मर्म्मकी व्यथा उन्मुक्त करनेपर उन्हें व्यक्तिकी अन्तर्निहित शक्तिको जगाने और विकसित करनेका अवसर मिलता है। व्यक्त करनेपर उन्मुक्त करनेका समय पाते हैं वे। तब अपने अनुसरणकारीको अपने सहज ज्ञान और सहज प्रेमसे आकर्षण करने लगते हैं। उसीके हाथसे उसकी आन्तरिक व्यथा और दुर्बलताओंको दूर करा देते हैं। सुषुप्त शक्ति अपने परमप्रिय आदर्शके चतुर्दिक हास्य-लास्य करती हुई एक अखण्ड एकत्वका बोध करने लगती है। जो-जो गूढ़ परिवर्त्तन होता है, वह सब होता है उस आदर्श के सहज विनोद, मीठी बातों और प्रेमपूर्ण व्यवहारके बीच। अवलीला क्रमसे माधुर्यकी सरस लीला-खेलमें आदमीका जीवन सार्थक बन जाता है। ऋषि-आदर्श या महापुरुषके साथ जीवनमें परिपूर्णता और विकास लानेके योग-सूत्र संस्थापनको ही दीक्षा कहा जाता है। इसको पराविद्याकी कुञ्जी भी समझनी चाहिये। दीक्षा लेनेके उपरान्त आदमीकी सत्ताका नवीन रूपसे नियंत्रण, सृजन और गठन भी होने लगता है।

ठाकुर कहते हैं—

He who infuses the thrill of animation, extention and augmentation—the hankering of life—with an easy flow that attracts the heart of deteriorating being, and can see the ways of fulfilment thereof is the Ideal—the way of the sufferers to life and light.

जीवन और प्रकाशके प्रदान करनेवाले आदर्श, महापुरुष या ideal के प्रति जैसे-जैसे अनुरक्ति होती जाती है वैसे-वैसे प्राप्ति भी बढ़ती जाती है—उन्नति भी होती जाती है।

Intensity of attachment and impulse reveals the gradation of acquisition.

ठाकुरने शिक्षाके विषयमें बतलाया है कि

"शिक्षाका प्रथम और प्रधान उपकरण है ऐसे आदर्शके प्रति प्रणत होना। प्रणत होना उत्तम प्रकारसे नत होना है।"

दूसरे शब्दमें 'तदविद्ध प्रणिपातेन' जो कहा गया है वही प्रणति है। इसको और भी साफ करते हुए ठाकुरने बतलाया है—

'आदर्शको स्वीकार करना, उनके इच्छानुसार चलना और सर्वप्रकारसे अच्छा लगनेके भाव हृदयमें जगाये रहने' को प्रणति कहते हैं। शिक्षकमें यदि इस प्रकारका प्रेम आदर्शके प्रति न हो तो—

शिक्षके नेइ इष्टे टान
के जागावे छात्रेर प्राण

वह छात्रके प्राणको कैसे जगायगा ? शिक्षक और विद्यार्थीमें प्रेमका भाव न रहे तो शिक्षा नीरस बन जाती है। आप कहते हैं—

बालक-बालिका दोनोंके लिये वर्त्तमान शिक्षापद्धति अजीव नीरस और परिश्रम साध्य बन गयी है। आनन्द न मिलनेके कारण छात्रमें सीखनेकी रुचि उत्पन्न नहीं होती। छात्र आनन्दके साथ शिक्षा ग्रहण कर सकें, प्रेम-कहानीकी तरह याद रखें ऐसा क्या कोई प्रबन्ध हो सकता है ?

प्रोफेसर शरतचन्द्र हल्दार, एम० ए०, प्रोफेसर कृष्णप्रसन्न भट्टाचार्य्य, एम० ए०, श्री योगेशचन्द्र चक्रवत्ती बी० ए०, प्रोफेसर अनिल सरकार, एम०एस-सी० आदि बहु शिक्षाविदोंसे आप यही प्रश्न करते आये, किन्तु किसीने ठीक-ठीक उत्तर न दिया।

अन्तमें उन्होंने टीनकी बाल्टीमें मिट्टी ढो-ढोकर तपोवन विद्यालयका कुटीर बनाना आरम्भ किया। कुटीर खुले मैदानमें बनी थी। जबतक कुटीरका निर्माण होता रहा शिक्षक-विद्यार्थी पेड़के नीचे बैठकर पठन-पाठन करते रहे।

शिक्षक और विद्यार्थियोंने सर्वप्रथम दीक्षा ग्रहण की। नवीन आर्य ऋषिके सम्पर्कमें आकर तपोवन-प्रणाली प्राचीन ऋषिकुल विद्याप्रणालीके अनुसार चलने लगी। एक ओर विद्यार्थियोंका चरित्रनिर्माण होने लगा तो दूसरी ओर तीन वर्षकी पढ़ाईमें कलकत्ता विश्वविद्यालयसे प्रवेशिका पास करने लगे।

उदाहरणके रूपमें इतिहास पढ़ानेकी वहाँकी पद्धति ली जा सकती है। विश्वविद्यालय परीक्षा सन्निकट थी, किन्तु इतिहासके अध्यापकके अभावमें इतिहासकी पढ़ाई न हो पाई। अब क्या हो? आचार्य ठाकुरके निकट पहुँचे। उन्होंने कहा—सारा इतिहास छन्दमें रचना हो। कवियों ने कवितामें रचना कर दी। विद्यार्थी खेल-कूदमें उसका पाठ करते गये। गानमें इतिहासका ज्ञान हो गया और हो गया ऐसा जो अमिट है।

तपोवनका जैसे-जैसे नाम बढ़ा, दूर-दूर से लड़के पहुँचने लगे। आवारा, बदमाश ही अधिक पहुँचते। जिनके सुधारके प्रति कुछ भी आशा न रहती वही भेजे जाते। सब कुछ प्रेमसे होता। स्नेहपूर्ण, ममत्वपूर्ण, प्रेमपूर्ण व्यवहारके आगे लड़के हार मानते। उनके मानसिक झुकावको देखकर ही कार्य होता। जिस विषयमें लड़केकी अभिरुचि रहती उसी विषयमें पढ़ाई प्रारम्भ होती और जीवनकी उपयोगितापर जाकर शेष! ट्रेनके विषयमें पुस्तकमें पढ़ना हो तो लड़के और आचार्य गाड़ी, एञ्जिन, स्टेशन फ्लॉग, सिग्नल आदि सब कुछ खिलौनेके रूपमें बनाकर तैयार करते। काम बँट जाता। स्टेशन मास्टरसे कुलीतक विद्यार्थी रहते। कुछ ही देरमें विद्यार्थियोंका दल खेलमें जो सीखता उसके उपरान्त जीवनमें रेल सम्बन्धी बात पढ़नेकी कभी आवश्यकता न होती। इस प्रकार आर्य आदर्श, आर्य पद्धति और ऋषिकुल विद्या-प्रणाली-की प्राचीन धारा उस पिछड़े ग्राममें नव संवेगके साथ प्रवाहित होने लगी।

व्यक्ति निर्माणके उपरान्त ही समष्टिका निर्माण सम्भव है। उसके उपरान्त ही समाजमें सुसंगठन और सुविन्यास लाया जा सकता है। जब सभी एक आदर्श केन्द्रमें ग्रन्थित रहते हैं तभी मिल्लत, सुसंगठनकी सुसंबद्धता आती है। और जब सबकी वर्णानुग वृत्ति या रोजीका सुनिश्चित प्रबन्ध रहता है तभी समाज सुन्दर रूपसे चलता है।

समाज सुधारकी कामना हो तो सर्वप्रथम आदर्शानुसरण और वर्णाश्रमका प्रतिपालन दृढ़तापूर्वक करना चाहिये।

"जिस आदमीको गुरु या आदर्श नहीं रहता—भगवान्ने जिसके भाग्यमें आदर्श या गुरु समझकर मानना न लिखा हो–वह जितना ही enlightened हो, यह बिल्कुल सत्य है कि उसका पतन उतना ही enlightendly होता है।"

उसके उपरान्त ही वर्णाश्रमका प्रश्न है। वर्णसे ठाकुर समझते हैं—"What invites specific talents and aptitudes as begotten gift, is the specification of 'Varna". वर्ण ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, भेद-घृणा उत्पन्न नहीं करता वरंच प्रतिभावान् विशेषज्ञोंको उत्पन्न करता है।

विशेषज्ञोंके विशेष गुण वंशानुक्रमिक विधिसे संस्कारके रूपमें शिशुमें आते हैं। कारण सन्तानके जरिये पितृगुण और प्रतिभा शतदल कमलकी नाईं खिल पड़ती है। 'father blooms in child'. इसलिए वर्णाश्रमको कभी न तोड़ना चाहिए। इसे तोड़नेसे राष्ट्रमें प्रतिभावान् विशेषज्ञोंकी कमी आ जाती है। राष्ट्रीय शक्ति साधारण कोटिकी बन जाती है। Never wipe off the genuine pedigreed shrubs, otherwise you lose once for all the genuine genes of the varietal groupings that specialise'.

विशेषत्व प्राप्तिकी यह शक्ति संस्कारके रूपमें सन्तानमें आती

है, उसके भीतर अपने जन्मगत वैशिष्ट्यकी ओर स्वाभाविक झोंकके आग्रहके अनुसार जब वह काममें लगता है, उसका कर्म-प्रबोधी स्नायु बहुत सक्रिय हो जाता है। मस्तिष्क तेज हो जाता है। उसकी उद्भाविनी शक्तिसे राष्ट्रका मुख समुज्वल होता है। जो जितना उन्नत प्रकारका मनुष्य होता है, वह उतनी ही अधिक जनता और मानवताकी सेवा करनेमें समर्थ होता है।

वंशानुक्रमिक धाराके रूपमें यह विशेष संस्कार आदमीको मिलता है। 'Heredity bears the being of fore fathers alive in the offspring'. इसी विशेषत्वको बचाना वर्णाश्रमका प्रधान कार्य है। '*To unfold the characteristic faculties that are latent within*–आदमीकी अन्तर्निहित विशेष शक्तियोंको जगाना और परिपुष्ट बनाकर विशेषज्ञ बना देना ही वर्णाश्रमका उद्देश्य है। ठाकुरने आर्यधर्मके समाजवादके विषयमें बतलाया है—

"*Organised equitable individual liberty with an apt economic provisional balance and biological evolution of culture that makes the being progressive to the unbounded eternal entity is the fundament of socialistic Indo-Aryanism.*"

जन्मगत स्वाभाविक झोंक प्रत्येक बच्चेमें रहता है, झोंकमें किसी विशिष्ट कार्यकी ओर उसका आग्रह देखनेमें आता है। आग्रहके अनुसार काम करनेकी सुविधा मिले तो मन लगाता है। एकाग्र मनोयोगपूर्वक काम करनेसे कर्मप्रबोधी स्नायु सक्रिय बन जाता है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म कार्य निर्माण होने लगता है। उत्पादन बढ़ जाता है। बच्चा धीरे-धीरे दक्ष और विशेषज्ञ बन जाता है। लोभ, ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्विताका भाव समाजमें नहीं रहता। दूसरेकी वृत्ति कोई छीन नहीं पाता।

समाज द्वारा परिपुष्टि पाकर जीवन कायम है। किन्तु समाज से हम परिपुष्टि उतनी ही पा सकते हैं जितनी हम उसकी सेवा करें। सेवाके परिमाणपर ही प्राप्ति निर्भर करती है। हम जितने सामाजिक सेवा करनेमें दक्ष होंगे उतनी ही वह हमारी सेवा और सम्मान करता है।

दक्षता प्राप्तिका बीज वंशानुक्रमिक रूपसे मिलता है। इस बीजमें क्या रहता है इसको बतलाते हुए ठाकुरने बतलाया है—

"*Specialise* करनेकी *specific talents and aptitude* रहती है।"

इस बीजगत ग्रहणशक्तिको उन्नत बनाना, दक्षतामें परिणत करना ही समाजका काम है। तभी राष्ट्रीय उत्पादन, राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्रीय शक्ति बढ़ती है।

ठाकुर नाना प्रकारके प्रतिष्ठानों, गवेषणागारों और कार्यालयोंकी स्थापना करते गये। पश्चिमीय सभ्यतासे उद्भ्रान्त व्यक्तियोंके सम्मुख देशसेवाका समस्त पथ उन्मुक्त कर दिया। स्कूल, कॉलेजसे लेकर धातृ-शिक्षा तकका प्रबन्ध किया। नवीनसे नवीन वैज्ञानिक यन्त्रोंसे विश्व-विज्ञान-केन्द्र सुसज्जित किया। किन्तु उसके लिये कार्य्य कर्त्ता तो चाहिये? वह कहाँसे आवे? देशके उर्वर मस्तिष्क नौकरी, राजनीति या सन्यासमें लगे थे। परिणामतः प्रतिष्ठानका कार्य आशानुरूप न चल सका, निस्तेज गतिसे चलता रहा।

जो आते, अर्थोपार्ज्जनका लक्ष्य लेकर आते। अर्थोपार्ज्जन और संकीर्ण स्वार्थपर कोई आदर्श प्रतिष्ठान चलता है? ठाकुरने बंगालके मलेरिया-पूर्ण ग्रामोंकी रक्षा करनेके उद्दश्यसे 'ट्यूबवेल, का कारखाना खोला। अपनी देख-रेखमें मशीनका सब पुर्जा बनवाने लगे। बंगालमें लोग सड़े गले पत्तोंसे परिपर्ण पोखरेका जल पीते थे। इसी अभावको दूर करनेके लिये यह आयोजन किया

गया था। साधक कर्मीगण प्रत्येक ग्राममें जाकर कल फिट करने लगे। उनके हृदयमें लोक-कल्याणकी लगन थी, गुरुकी इच्छा-पूर्त्ति की मनोभावना थी। यह काम इतना लाभकारी प्रमाणित हुआ कि बंगाल सरकार भी माँग करने लगी।

बढ़ते-बढ़ते इसका प्रसार मैमनसिंह और शेरपुरतक पहुँचा। तारकनाथ बन्दोपाध्याय इस सिलसिलेमें शेरपुरके बड़े जमींदार रायबहादुरके यहाँ गये थे। उधरसे लौटते समय वर्षाके कारण बस देरमें खुली। संध्या समय एक साथ घाटपर तीन बसें पहुँचीं। वह उस रातके अन्तिम खेवे की नाव थी। जल्दी-जल्दी जाकर नावपर बैठ गये। धीरे-धीरे मुसाफिरोंकी संख्या नब्बेतक पहुँच गयी। मल्लाह नाव डूबनेका भय दिखाता हुआ लोगोंको उतरनेको कहने लगा। ब्रह्म-पुत्र एक भयावह नदी है। किन्तु घाटके किनारे दो कोसके भीतर कहीं कोई ग्राम या झोंपड़ा न था। उतरे कौन? मुसासिर एक दूसरेका मुख देखते रहे। इस बीच बीस मिनटतक नाव खड़ी रही। उधर संध्याका आगमन भी हो गया।

अन्तमें मल्लाह तारक बाबूसे बोला, 'आप उतर जायँ।' उसका कहना था कि तमाम मुसाफिरोंने भी कहना आरम्भ किया। आप वहाँ नवागत थे। बोले, 'हमारा यहाँका स्थान परिचित नहीं। इस दियारेमें कहाँ जाऊँगा?' बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु मुसाफिरोंने उनको उठाकर किनारेपर फेंक दिया। नाव खुल गयी।

तारे निकल चुके थे। कहाँ जायँ, क्या करें? तारकनाथने अनुयोग आरम्भ किया—'हाँ ठाकुर, तुम्हारे कथनानुसार जन-कल्याण-कार्यमें आकर हमारी ऐसी दुर्गति हुई। जन-जन्तु और चोर-डाकूसे कौन रक्षा करेगा यहाँ?'

कुछ दूर जाते न जाते नाव भँवरमें पड़ गई। मुसाफिर आर्त्त

कण्ठसे चिल्लाने लगे। मल्लाहोंने कूदकर अपनी जान बचायी। इसके क्षण-भर बाद ही नाव डूब गयी। एक मुसाफिर भी न बच सका।

इस दृश्यको देखकर तारकनाथका समस्त रोम खड़ा हो गया। फट-फूटकर रोने लगे। 'गुरुदेव ! आप इतने दयालु हैं इसे मैं नहीं जानता था। अन्तर्यामिन्, आप इतनी दूरसे बैठे-बैठे अपने दीन शिष्योंकी रक्षा करते हैं ! दया करके नाविकोंके मुखपर बैठ-कर आपने मुझे नावसे न उतारा होता तो मैं तो बच ही न पाता। मुझे तो तैरने भी नहीं आता। प्रभो ! आपकी ऐसी कृपा और मैं पामर दो मिनट पहले आपपर दोषा-रोपण कर रहा था ! क्षमा करो दीननाथ।' इतना कहकर आप रुदन करने लगे। अस्तु

रेलवे, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी विभागोंसे आर्डर आते रहनेके कारण ट्यूबबेल विभागमें लाखोंकी बचत हुई। अर्थने लोभका रूप धारण किया। उस विभाग वालोंने कम्पनी बनानेका आयोजन किया। ठाकुरका निर्देश भूल गये। इसपर ठाकुरने उस विभागको ही बन्द कर दिया।

इसी प्रकार एक बार लालटेनका आविष्कार किया गया। यह लालटेन प्रकाश और भोजन बनानेका काम एक साथ करती। सब देखसुनकर एक मारवाड़ी सज्जनने तीन लाख रुपया देकर पेटेंट अधिकार खरीदना चाहा। यह सुनकर ठाकुरने उसका बनना ही बन्द कर दिया।

ठाकुरके आदर्शको ग्रहण किये बिना, उनके युगान्तकारी विराट आन्दोलनको समझे बिना, उनके आदर्शको ग्रहण किये बिना जो लोग अर्थोपार्जनके स्वार्थसे प्रतिष्ठान चलाने आये उन्हें विफल मनोरथ होकर लौट जाना पड़ा।

विद्वान्, विचारशील, आदर्शचरित्र, दृढ़ इच्छा सम्पन्न और

उत्तरदायित्व पूर्ण कार्यकर्त्ताओंका अभाव था। फिर भी ठाकुर बढ़ते गये। साधारण कार्यकर्त्ताओंको असाधारण काममें लगाया। देशके योग्य व्यक्ति या तो नौकरीमें थे या राजनीतिमें। विदेशमें बङ्गालके तरुणोंका टिकट कट चुका था। ऐसी अवस्थामें चुप बैठे रहें तो कैसे? नवीन मनुष्य निर्माण करनेके निमित्त क्या-क्या करणीय है इसपर वाणी देने लगे। शिक्षा, समाज, परिवार, स्वास्थ्य, शिल्प, विवाह-सुधार, आध्यात्मिक साधना मूलक मन्त्रोंकी घोषणा करते गये।

उनकी विशिष्ट भाव-धारा लिपिबद्ध होना आरम्भ हुआ। हरिदास गोस्वामी बी० ए०, चुनीलालराय चौधुरी, प्रबोधचन्द्र मित्र, रवीन्द्रनाथ राय, दीननाथ शर्म्मा, जे० स्पेन्सर, एम० ए०, सुशीलचन्द्र वसु बी० ए० प्रभृतिने अंगरेजी, हिन्दी, बंगला और आसामी भाषाकी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यमसे उनको प्रसारित करना आरम्भ किया।

वैदिक भारतकी होमवह्नि पुनः जल उठी।

इस युगके पुरुषोत्तमके निकट आत्म-समर्पण करनेवाले शत-शत ऋत्विक, अध्वर्यु और याजकोंने भारतके विभिन्न प्रान्तों और बहिर्भारतमें नवीन मंत्रसे सबको अभिदीप्त करनेके लिये पर्यटन करना आरम्भ किया। आर्य-प्रणालीके अनुसार दीक्षा प्रदान करते हुए ऋषिके साथ संस्पर्श सूत्र बन्धन आरम्भ हुआ। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, अनीश्वरवादी, ईश्वरवादी, सबके जीवन और विकासको धर्म मानकर चलनेका आवाहन होने लगा। सत्संग बिहारकी स्थापना आरम्भ हुई। सम्मिलित प्रार्थनाका मिलनतीर्थ निर्मित हुआ। बिना धर्म-परिवर्त्तनके ऋषिकुलमें प्रवेश करनेका द्वार उन्मुक्त हुआ। समस्त सृष्टिके मूल कारणको जाननेके लिये वंशानुक्रमिक धारासे विच्छिन्न करनेकी बात कोई ऋषि, अवतार या पैगम्बर नहीं बतला सकता, इस बातकी घोषणा होने लगी।

यह आन्दोलन किसी जन-नेताका सामयिक उत्तेजना उत्पादक आन्दोलन नहीं, यह कोई हिंसाभाव उत्पन्न करनेवाला आन्दोलन नहीं, साम्प्रदायिक किंवा जातिगत प्रतिनिधित्व करनेवाले स्वार्थियोंका आन्दोलन नहीं, प्रतिहिंसा भावापन्नोंका आन्दोलन नहीं, किंवा सस्ता पैसा उपार्जन करनेवाले फेरीवालोंका भी आन्दोलन नहीं है। आत्म-शुद्धि, आत्म-नियन्त्रण, आत्म-विश्लेषण और आत्माहुति द्वारा ही इस आन्दोलनकी उपलब्धि की जा सकती है।

पुंमैथुनादि विभिन्न प्रकारके काम भावोंसे भारतीय मस्तिष्क कोषकी सूक्ष्मतम शिरा उपशिराएँ विच्छिन्न हो गयी हैं। परिणामतः उर्वर मस्तिष्क और प्रतिभाका लोप देशसे होता जा रहा है। रोग-ग्रस्त माता-पिताकी जो सन्तानें हो रही हैं वह भी मस्तिष्क-शक्तिहीन होती जा रही हैं। इसके निमित्त परिवार-परिवारमें मस्तिष्क-शक्ति-वृद्धिका आन्दोलन कर्मीगण कर रहे हैं।

पापसे मुक्त होने, द्विजत्व लाभ करने, उपनीत होनेके निमित्त मासाधिक कालतक ऋषि द्वारा अनुशासित प्रायश्चित्त विधियों और उपवास द्वारा अपनेको व्रात्य-दोषसे मुक्त करते रहते हैं यहाँके शत-शत कर्मी।

उनकी सारे देशमें पुकार होती है। 'समाजके भीतर उच्च चिन्तनाका भाव भरो—*Progressive mood* लाओ, विवाहमें सुधार करो—*Marriage reform* करो, और सब प्रकारके उद्योग या *industry* को बढ़ाओ। तभी तुम्हारा, तुम्हारे परिवार या राष्ट्रका कल्याण होगा।

उच्च चिन्ताका अर्थ है श्रेष्ठ आदर्शके प्रति श्रद्धा और भक्ति—*love & admiration for higher ideal.* भगवान् बुद्धके प्रति एक अशोकमें *admiration* या श्रद्धा भर जानेसे भारतीय

संस्कृतिका एक दिन इतना विशाल साम्राज्य संस्थापित हुआ था जिसकी आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते। उसी प्रकार यदि आदर्श पुरुषके प्रति श्रद्धाभाव देशके एक-एक व्यक्तिमें भर जाय तो पुनः भारत संसारका महानतम गुरु बन जायगा।

इस उच्च भावनाको स्थायी बनानेके लिये तत्सम्बन्धी प्रकाशन आवश्यक है। इसके जो विरोधी प्रकाशन हों उनको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। स्कूल-कॉलेजोंको इसीके आधारपर चलाना चाहिये—*mould* करना चाहिये। यात्रा, नाटक-थियेटर, सिनेमा उपन्यास, रेडियो, भाषण, नवीन पाठ्य पुस्तकें इसके आधारपर तैयार होनी चाहिये। खुलासा यह कि सर्व प्रकारसे ऋषि पूजाका उच्चतम भाव सारे राष्ट्रमें भर देना चाहिये।

उनका सुधार-आन्दोलन आरम्भ हुआ है गम्भीर अध्यात्मिक शक्तिकी भित्तिपर। गम्भीर अतल-तलसे भित्ति बनाना उन्होंने आरम्भ किया है।

देशकी नाड़ीकी शुद्धि करनेमें लगे हैं वे। रक्तके कण-कणको परिशुद्ध करनेके बाद ही दृढ़ और श्रेष्ठ राष्ट्र बन सकता है।

साधनाके तल देशमें प्रवेश करके उन्होंने देखा है। इसीलिये आप कहते हैं कि महज काली, कृष्ण, रामका दर्शन किंवा अनाहत शब्दश्रवण या ज्योतिदर्शन देखकर मत रुको। मूलतक जाओ। जहाँसे सब कुछकी उत्पत्ति हुई है उस अमृतके तल देशमें अवगाहन करो।

उनकी दृष्टिमें जागतिक उन्नतिकी उपेक्षा आध्यात्मिक उन्नतिको पंगु और क्लीब बना देती है। इसलिये आध्यात्मिकताके साथ भौतिक उन्नतिका भी समान प्रयत्न होना चाहिये। आप कहते हैं—

"*Where spirituality lets not thrive materia-*

listic progressive go with co ordinated contrivance it is sterile, barren and futile."

"Spritualism is investigation and invention of the hows and whys by which matter extends and grows—to the acceleration of our Being and Becoming !"

आपने स्वयम् भी ऐसी ही साधना की थी। ज्योतिदर्शन, नाद-श्रवण, विष्णुदर्शन, श्रीकृष्णदर्शन, दक्षिणेश्वरी काली आदि देव-देवियोंका दर्शन किया है आपने। किन्तु आप उतनेमें सन्तुष्ट न हुए—आगे मूलकी ओर बढ़ते ही गये। इस बीच नव दूर्वादल-श्यामकी वंशी ध्वनिसे ध्यान करनेमें बार-बार विचलित होते रहे। फिर भी आप न रुके। वंशीधारीको हटाकर आगे बढ़ गये।

वंशीध्वनिसे कठिन अवसर आया उस दिन, जिस दिन नील प्रकाशयुक्त परमरम्य आनन्द स्तरको पार करते ऊर्ध्वकी ओर प्रवेश कर रहे थे। एक अपरूप लावण्यमयी सुन्दरी सम्मुख आकर हास्य-लास्य और कटाक्ष निक्षेप करती हुई बोली—'इस स्वर्ग-धाममें हम-तुम दस हजार वर्षतक आनन्द विहार कर सकते हैं। यहाँके समस्त ऐश्वर्य और सुखके साथ मैं अपने आपको तुम्हारे चरणोंमें चढ़ाती हूँ। मुझको स्वीकार करो।'

उसके रूप और वाणीका आकर्षण प्राणको उन्माद ग्रस्त बनाने लगा। मनको संयमित करनेके समस्त प्रयत्न व्यर्थ होने लगे। हठात् माँकी चीत्कार मुखसे निकल पड़ी। तीन दिनतक रतिने मार्गावरोध किया। किन्तु मातृ-भक्तिने साधना कालीन समस्त विघ्नोंको अपसारित कर दिया। माया पिशाचीके नवरंगिनी जालसे निकल गये। रतिके सर्वग्रासी इन्द्रजालको मथकर मनमथ मनमथम बन गये। मातृ-भक्तिके प्रसादसे पवित्र मनको अपने

हाथमें न कर सकी साधु-सिद्ध-ऋषि-मुनियोंको नचानेवाली मायाबिनी।

यही कारण है कि आप बच्चोंको मातृ-भक्त बनने-बनानेका इतना उपदेश देते हैं। 'मातृ-भक्ति अटूट यत, सेइ छेले होय कृति तत।' जो जितना अधिक मातृ-भक्त होता है वह उतना ही सफल जीवन प्राप्त करता है।

इसके लिये मातृ पूजा करनेका उन्होंने विधानतक दे रखा है। माताओंकी शिक्षामें शिशु-प्रेम आकर्षण करनेकी विधि बतलायी है आपने। राष्ट्रको उन्नत करनेकी मूलभित्ति मातृ-जातिको ही आप मानते हैं।

साधनाके बलपर भाग्यपर उन्होंने विजय पायी है। फिर भी उन्हें चैन नहीं। अभी इससे भी अधिक प्राप्ति चाहिये।

'भूमैव सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।'

अविराम तपस्या चलती रहती है उनकी। साधनाके विभिन्न स्तरोंको अतिक्रम करते हुए चरम धामपर पहुँचनेके उपरान्त देखा—सामने रक्त-मांस संकुल इष्टदेव सम्मुख विराजित हैं।

भागवत ऐश्वर्य और भागवत प्रगटित है उनके पुनीत शरीरमें।

कभी ललाट शीशेकी नाईं उज्ज्वल चमकने लगता है तो कभी उसमें आलोक विच्छुरित होने लगता है जिससे सम्मुखस्थ समस्त प्रान्त प्रकाशमय हो जाता है। कभी-कभी अन्धकार रात्रिमें भटके हुए व्यक्तिको ललाटके उस ज्योतिर्मय प्रकाशको देखते हुए आनेको भी पुकारते देखा गया है।

शिष्यवेष्टित रास्तेसे टहलते जा रहे हैं। ज्ञात होने लगता है, सामने एक ज्योतिपुञ्ज शरीर चल रहा है। अरुण रक्तिम दिव्य कलेवर बढ़ता जा रहा है। उनकी उस ज्योतिसे रास्ता, उसके

दोनों ओरकी वनभूमि प्रकाशमय बनी हुई है। उस ज्योतिर्मय शरीरका पैर पृथ्वीपर नहीं पड़ता, शून्यके ऊपर डेग पड़ता जा रहा है।

कुर्सीपर बैठे मेरठके वकील और उनकी धर्म-पत्नीके साथ झुककर बातें कर रहे थे। दीख पड़ा एक आलोकमण्डल तीनों आदमियोंको आच्छादित किये हुए हैं और उसमेंसे स्फुलिंग विच्छुरित हो रहा है। भक्तोंका सान्निध्य पाकर ऐसी दिव्य-ज्योति उनके शरीरसे विच्छुरित होते अधिकतर देखी जाती है।

कभी-कभी एक दिव्य सौरभ शरीरसे निकलने लगता है। गृहके चतुर्दिक सुगन्धके सौरभसे वायुमण्डल सुरभित हो जाता है। उनके पहने हुए कपड़े, स्नानके जलमें भी एक दिव्य-गन्धका अनुभव किया जाता है।

उनके निकट जानेवालोंको एक दिव्य-स्निग्धकारी वातावरण-का संस्पर्श अनुभव होता है। उस दिव्य-संस्पर्शसे मानसिक अवस्थामें कुछ न कुछ परिवर्त्तन निश्चय ही आता है।

उनके सामान्य इंगितसे मनोविकल रोगी स्वस्थ बन जाता है। किसी किसीकी जीवन धारामें उनकी दृष्टिसे महान परिवर्त्तन आ जाता है—आमूल परिवर्त्तन हो जाता है।

आश्रममें बैठे हैं। कहींसे हठात् तार आया—'मेरे बच्चेको बचाइये।' रोग क्या हुआ है इसका कोई वर्णन नहीं। किन्तु देखते-देखते ठाकुरका मुख काला हो गया, दस्तकी बीमारी आरम्भ हो गई। कई दिनतक कष्ट भोगते रहे। इसके कुछ दिन बाद संवाद आया—'लड़का कालराके हाँथों बच गया।' ऐसी घटना तो आये दिन लगी रहती है।

सद्यः पुत्रहारा जननी हृदय-वेदनाके भारको लेकर ठाकुरके निकट पहुँची। ठाकुर सब कुछ भूलकर उसको बाहुपाशमें लपेट-

कर बोले—'मैं तो हूँ, मैं क्या तेरा पुत्र नहीं माँ ?' शब्द तो हैं सामान्य, किन्तु उसके उच्चारणकी भङ्गिमामें क्या जादू रहता है यह वही जानता है जो उस शब्दको श्रवण करता है। उसको सुनकर और आपका सान्निध्य पाकर सन्तान-वियोगसे व्यथा-कातर मातृहृदय भर जाता है।

किन्तु रोगमुक्ति किंवा अर्थप्राप्तिकी आशासे कोई उनको इष्ट बनाले तो बहुत सम्भव है उसकी यह इच्छा पूरी ही न हो। जब जीवनमें उन्हींका स्थान मुख्य बन जाता है उस समय असम्भव भी सम्भव होता है, किन्तु जब कोई किसी अभीष्टको लेकर उनको अपना उपास्य बनाता है उस समय सम्भव है उसका अभीष्ट पूर्ण न हो।

पौरुष द्वारा भाग्य विपर्ययको जय करना पड़ेगा। किन्तु यह पौरुष आता है पुरुषोत्तमके साथ युक्त रहने और उनकी बतलायी विधिका अनुसरण करनेसे। अपनी प्रवृत्तिके अनुसार चलना अहंकार है। अहंकारमें पौरुष नहीं आता। आता है पौरुषका विनाश।

कहीं भयसे कोई धर्माचरण होता है? भयभीत होकर धर्म करना धर्म कैसा? धर्म तो आदमीको अभय बनाता है, निर्भय बनाता है।

इसलिये सर्वप्रथम अपनी दुर्बलताओंसे युद्ध करो। साहसी और वीर बनो। कारण दुर्बलता पापकी ज्वलन्त प्रतिमूर्त्ति है। भगाओ, शीघ्रातिशीघ्र इस रक्त शोषक हिंस्रिकाको निकाल बाहर करो।

और तुम साहसी हो, शक्तितनय हो, परम-पिताकी सन्तान हो इस बातको स्मरण रखो।

परमपिताकी सन्तानको भय कैसा?

'आश्रितका भाव नहीं, आसक्तिका भाव उसपर रखना अच्छा है।'

आसक्तिका अर्थ अनुराग है।

उनके प्रति अनुराग, प्रेम और भक्ति हो तो सब कुछ होता है। इस बातकी गणना नहीं हो सकती कि अज्ञात रूपसे कितने प्रकारकी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

एक दिन देव-दुर्लभ दर्शनकी बात चली। आपने कहा—'ये सब दर्शन-टर्शन वैसी कोई चीज नहीं। यह महज मन-मस्तिष्क में पड़ी मूर्त्तियोंकी छापका रूपग्रहण मात्र है। यह कभी-कभी रक्त-माँस रूपमें दीख पड़ता है। असल जानना है मूल-कारण और मूल-रहस्यको। जब भगवद् लाभ होता है तो उसीके साथ उनका रूपलाभ भी होता है। उसके उपरान्त वह प्रति पदक्षेपकी भंगिमा में फूटने लगता है। कथनी नहीं, करनी चाहिये। उसके पथपर चलते रहना चाहिये। वे हैं तो अवांगमनसो गोचरम्। किन्तु उनकी नूपुरध्वनि हमारे प्रति पदनिक्षेपपर अनुरणित होने लगती है। जो बात-व्यवहारमें न बतलाता हो, वह अनुभूति कैसी ?'

बार-बार वह इसीलिये सतर्क करते रहते हैं कि थोड़ी-सी अनाहत ध्वनि श्रवण और ज्योतिदर्शनमें साधक कहीं अहंकारी न बन जाय।

'चपरास न हो तो लोग बात न सुनेंगे।'

लोग भगवद् प्रसंग तभी न सुनेंगे जब आचरण करके आचार्य बन गया हो ?

'प्रचार करनेका अर्थ है अपने characters द्वारा दिखलाना। जो आचरण द्वारा दिखला सकता है, वही प्रचारक हो सकता है।

'Ideal character ही best form of preaching

है। अपने चरित्रपर सर्वदा दृष्टि रखनी चाहिये।'

'Character form हो जानेपर साधनामें द्रुत उन्नति की जाती है। चरित्र गठन सोनापर मीनाके समान काम करता है। प्रचार करना उसीको शोभा देता है जिसने अपना चरित्रगठन कर लिया हो। कारण जिस बातका वह प्रचार करता है वह उसके चरित्रमें प्रस्फुटित रहता है। सत्य जबतक चरित्रगत न हो दूसरेपर उसका प्रभाव नहीं पड़ता Ideal character को सामने देखकर आदमी कुछ न कुछ अनुकरण करता ही है।'

उन्होंने भाव-सिद्ध कार्यकर्त्ताओंको दीक्षा प्रदान करनेका अधिकार-पत्र दिया है—वही ऋत्विक कहलाते हैं।

इनके अतिरिक्त प्रतिऋत्विक और सह-प्रतिऋत्विक वृन्द भी हैं—ये ऋत्विक होनेके पथकी अनुचर्यामें रत हैं।

इन लोगोंको भी दीक्षा देनेका अधिकार है। इन लोगोंके सहयोगी है अध्वर्यु एवं याजक गण। इन सबको मिलाकर ऋत्विक संघ निर्मित हुआ है।

ठाकुरकी इच्छापूर्त्ति ही जीवनका उद्देश्य है। ठाकुरका जीवन ही इनकी वाणी है। सत्संग आन्दोलन उसीकी वास्तविक अभिव्यक्ति है। उनके जीवनकी प्रतिच्छायाको व्यक्त करना, उनके दिव्य-जीवनको सर्व प्रकारसे प्रकाशित करना और मूर्त्त करना ही ऋत्विक-संघका लक्ष्य और आदर्श है।

इस आन्दोलनके प्राणकेन्द्र सम्मुख खड़े हैं और प्रत्येक कार्यकर्त्ताको परिचालित करते रहते हैं।

इसके प्रसारमें कभी विराम नहीं। दिवारात्रि एक मुहूर्त्त भी निष्फल नहीं जाने पाता।

आज इस अमृत-मन्त्रका स्पन्दन सुदूर पातालपुरी अमेरिका-

में पहुँच चुका है। अफ्रीकामें नवीन जागरण उत्पन्न हुआ है। इसका तुमुल आलोड़न ब्रह्मदेशमें भी आया है। नवीन जीवन-स्पन्दन भारतीय ग्रामोंमें हो रहा है। प्राच्य और प्रतीच्य मिलन-की स्वर्ण-रज्जूमें विधृत हो रहा है। सारे विरोधोंकी मीमांसा, सब भावोंका मिलन इस महासमुद्रके चरणतलमें हो रहा है।

महाप्रलयके मध्य समस्त बातें प्रकृष्ट रूपमें विलीन होती जा रही है। सम्भवतः जन्मका शुभलग्न समागत है। युग युगान्तके अन्धकारको विदीर्ण करके महाभविष्यत्‌के अमित सम्भाव्यताकी सृष्टि हो रही है। उसके विधायक हैं श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र और नियामक है यह ऋत्विक-संघ।पुरुषोत्तमने पुनः धर्म-चक्र-को अपने हाथों पर उठाया है।

में पहुँच चुका है। अफ्रीकामें नवीन जागरण उत्पन्न हुआ है। इसका तुमुल आलोड़न ब्रह्मदेशमें भी आया है। नवीन जीवन-स्पन्दन भारतीय ग्रामोंमें हो रहा है। प्राच्य और प्रतीच्य मिलन-की स्वर्ण-रज्जूमें विधृत हो रहा है। सारे विरोधोंकी मीमांसा, सब भावोंका मिलन इस महासमुद्रके चरणतलमें हो रहा है।

महाप्रलयके मध्य समस्त बातें प्रकृष्ट रूपमें विलीन होती जा रही है। सम्भवतः जन्मका शुभलग्न समागत है। युग युगान्तके अन्धकारको विदीर्ण करके महाभविष्यत्के अमित सम्भाव्यताकी सृष्टि हो रही है। उसके विधायक हैं श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र और नियामक है यह ऋत्विक-संघ।पुरुषोत्तमने पुनः धर्म-चक्र-को अपने हाथों पर उठाया है।